आधुनिक शस्य विज्ञान

लेखक :

रामअवतार पोरवाल
M.Sc.Ag. B. Ed. (Agr.)
श्रीकर्ण नरेन्द्र राजकीय सीनियर उच्च मा० विद्यालय
जोबनेर (जयपुर)

एवम्

डॉ० प्रवीणसिंह राठौड़
श्रीकर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय
जोबनेर जयपुर

राजस्थान प्रकाशन
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर-2

आमुख

राष्ट्रीय शिक्षानीति के अन्तर्गत राज्य के सभी उच्च माध्यमिक विद्यालयों में इसी सत्र से कक्षा दस के बाद दो-वर्षीय अकादमिक (कृषि) पाठ्यक्रम प्रारम्भ किए गए हैं। माध्यमिक शिक्षाबोर्ड के नवीन पाठ्यक्रमानुसार उच्च माध्यमिक कक्षा के छात्रों के लिए "आधुनिक शस्य विज्ञान" की पुस्तक का प्रथम संस्करण प्रस्तुत किए जाने का प्रयास किया गया है जो शस्य विज्ञान के दोनों प्रश्न पत्रों के पाठ्यक्रम को पूरा करती है।

प्रस्तुत पुस्तक की रचना में तत्संबंधी हिन्दी एवं अंग्रेजी में लिखी गई अनेकों पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाओं की सहायता ली गई है। सम्बन्धित लेखकों तथा प्रकाशकों का मैं आभारी हूँ। वैज्ञानिक शब्दावली को हिन्दी शब्दों के साथ उनका अंग्रेजी रूप देकर भाषा को सरल बनाया गया है।

जिन महानुभावों साथी अध्यापक बन्धुओं तथा छात्रों से पुस्तक लिखने की प्रेरणा एवं सहयोग मिला है उनका मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। पुस्तक विवेचन के लिए मैं जोबनेर, कृषि महाविद्यालय के शस्य-विज्ञान विभाग के सहायक अध्यापक डॉ० प्रवीण सिंह राठौर का विशेष आभारी हूँ।

पुस्तक प्रकाशन के लिए मैं श्री राजेन्द्रकुमार जसोरिया का आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक के मुद्रण में विशेष रुचि ली है। पाठकों द्वारा दिये जाने वाले विषय सम्बन्धी उपयोगी सुझावों को अगले संस्करण में समावेश किया जावेगा।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि पुस्तक दोनों क्षेत्रों, कृषकों तथा छात्रों, में उपयोगी सिद्ध होगी।

लेखकगण

अनुक्रम

I. जलवायु
(CLIMATE)

1. जलवायु एवं प्रभावित करने वाले कारक
(Climate and Factores effecting to the Climate)

जलवायु के अध्ययन से पूर्व वातवरण का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

वातावरण (Atmosphere)—पृथ्वी के ठोस एवं द्रव भागों को घेरे हुए गैस का एक आवरण है जिसे वातावरण कहते हैं।

यह पृथ्वी से लगभग 600 कि. मी. ऊँचाई तक पाया जाता है जिसकी सघनता 16 कि. मी. तक अधिक है फिर अपेक्षाकृत विरल होता जाता है। यह सूर्य से आने वाली हानिकारक किरणों, उल्का पिण्डों से रक्षा, ताप अनुकूलन, श्वसन तथा ज्वलन क्रियाओं में सहायक होता है।

वातावरण और पृथ्वी का जहाँ तक सम्पर्क होता है वहीं तक प्राणी जगत पाया जाता है। इस वातावरण में थोड़ा-सा परिवर्तन होने पर उसका प्रभाव मानव, पेड़ पौधे और अन्य जीवधारियो पर पड़ता है।

जलवायु—यह 'जल' तथा 'वायु' दो शब्दो से मिलकर बना है। जल का अर्थ आर्द्रता, वर्षा से है और वायु का हवाओं की दिशा, गति वायुमण्डल की अन्य व्यवस्थाओं से है जिसके अन्तर्गत तापक्रम भी शामिल हैं। तापक्रम का सामान्य तात्पर्य सर्दी व गर्मी है। अतः किसी भी स्थान की जल और वायु की सामूहिक स्थिति जलवायु है।

वातावरण के अनुसार किसी भी स्थान की जलवायु का ज्ञान होना आवश्यक है। जलवायु के आधार पर पेड़-पौधों का वर्गीकरण किया जाता है। कृषि के लिये जितने भी कार्य किये जाते हैं उनका जलवायु और वातावरण से सीधा घनिष्ठ संबंध है। इसलिए किसी भी स्थान की जलवायु का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वायु, ताप, आर्द्रता तथा वायुमण्डल की सामान्य अवस्था आदि पर ध्यान देना आवश्यक है। जलवायु की परिभाषा निम्न प्रकार करते हैं—

'वर्ष के विभिन्न महीनो मे किसी स्थान के वायुमण्डल में परिवर्तन की अवस्था, ताप, वातावरण में नमी के परिणाम और वर्षा आदि के निश्चित प्रभाव को जलवायु कहते हैं।'

'जलवायु' अनेक वर्षों के ऋतु संबंधी घटनाओं का सार है।'

'किसी भी स्थान पर मौसम की सामूहिक दशा को उस स्थान की जलवायु कहते हैं।'

जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक—किसी भी स्थान की जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं—

(1) भू-मध्य रेखा से दूरी—जो स्थान भूमध्य रेखा के जितने समीप होते हैं वहां उतनी ही अधिक गर्मी पड़ती है क्योंकि वहां सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं। जैसे-जैसे यह दूरी बढ़ती जावेगी ताप अपेक्षाकृत कम होने के कारण ये स्थान ठण्डे होते जाते हैं।

(2) समुद्र तट से निकटता—समुद्रतट के निकटवर्ती स्थानों में जलवायु ठण्डी और न अधिक उष्ण होकर प्रायः एक सी रहती है क्योंकि जल भूमि की अपेक्षा देर से ठण्डा होता है।

(3) समुद्रतल से धरातल की ऊँचाई—जो स्थान समुद्रतल से जितना ऊंचा होता है वहाँ उतना ही तापक्रम कम हो जाता है। ऐसा अनुमान है कि 165 मीटर की ऊँचाई पर लगभग 1° सेग्रे तापक्रम कम हो जाता है। इसी से बीकानेर 238 मीटर ऊंचाई पर गर्म तथा उदयपुर 578 मीटर ऊंचाई पर होने से अपेक्षाकृत ठण्डा है।

(4) पहाड़ों की दिशा—पहाड़ सूर्य की किरणों तथा हवाओं को रोककर जलवायु पर प्रभाव डालता है। साइबेरिया की तेज ठण्डी हवाओं को हिमालय पर्वत रोकता है साथ ही पर्वतों से मानसूनी हवायें टकराकर ऊपर उठकर ठण्डी हो जाती हैं और वर्षा करती हैं।

(5) हवाओं की दिशा—उत्तर दिशा से आने वाली हवायें दक्षिण की ओर से चलने वाली हवाओं की अपेक्षा ठण्डी होती हैं। जब ये हवायें समुद्र से स्थल की ओर बहती हैं तो वर्षा करती हैं।

(6) भूमि-संरचना-बालू मिट्टी चिकनी मिट्टी की अपेक्षा जल्दी गर्म और ठण्डी हो जाती है अतः जिस स्थान की मिट्टी बलुई है, वहां दिन गर्म तथा रातें ठण्डी रहती हैं।

(7) भूमि का ढाल—उत्तरी गोलार्द्ध के दक्षिण की ओर वाला ढालू भाग अधिक गर्म होता है क्योंकि सूर्य की किरणें वहां लम्बे समय तक सीधी पड़ती हैं।

(8) धारायें समुद्री धाराओं के ठण्डी और गर्म होने से समीपवर्ती स्थान की जलवायु ठण्डी या गर्म हो जाती है।

(9) वनस्पति—ये भी जलवायु पर प्रभाव डालते हैं। पेड़-पौधे वायुमण्डल की नमी को संचित कर वर्षा कराने में सहायक होते हैं और जीवांश पदार्थ में वृद्धि करके भूमि की उर्वरता बढ़ाते हैं। जिन स्थानों पर पेड़-पौधे कम हैं वहां वर्षा भी कम होती है।

---

2. मौसम तथा मौसम के तत्व
(Weather and Its Elament)

सामान्यतया मौसम और ऋतु का एक ही अर्थ लगाया जाता है परन्तु ये दोनों शब्द अलग-अलग अर्थ रखते हैं। किसी भी विशेष समय में वायुमण्डल के ताप वायु की दिशा एवं गति, गर्मी और वर्षा आदि के प्रभाव को मौसम कहते हैं। यह दिन-प्रतिदिन की घटनाओं पर निर्भर रहता है। दिन में मौसम परिवर्तन हो सकता है। जैसे प्रातः आसमान साफ परन्तु दोपहर में तेज हवा और बादल छाकर वर्षा कर सकते हैं।

जब एक-सा ही मौसम अधिक समय तक बना रहता है तो इसे ऋतु कहते हैं। अतः ऋतु बहुत दिनों की मौसम सम्बन्धी घटनाओं का सार है।

कुछ दिनों की घटनाओं को मौसम कहा जाता है, जबकि मौसम स्थाई होने पर, ऋतु कहा जाता है।

मौसम के तत्व

(1) प्रकाश (2) तापमान (3) आर्द्रता (4) वायु

(1) प्रकाश (Sunlight)—पौधों की वृद्धि और विकास में प्रकाश का महत्वपूर्ण योगदान है। सूर्य से प्रकाश पृथ्वी पर किरण द्वारा आता है। इसमें 39% दृश्य प्रकाश है जो कि 750 से 400 मिलीमाइक्रान के बीच प्राप्त होता है; 60% अवरक्त (Infrared) तथा एक प्रतिशत पर बैंगनी (Ultraviolet) होता है। प्रकाश पौधों की वृद्धि तथा विकास में तीन प्रकार से सहायक होता है।

(1) संरचनात्मक विकास; (2) पादप-आहार निर्माण तथा (3) फूल एवं फलन के समय को प्रभावित करने में सहायक है।

प्रकाश की गुणता (Quality), तीव्रता (Intensity) तथा अवधि (Duration) का पौधों की वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है।

प्रकाश की गुणता—तरंग-दैर्ध्य (Wave length) के अनुसार प्रकाश को लाल, पीला तथा बैंगनी आदि प्रकारों में विभाजित करते हैं। लाल किरणों का पौधों की वृद्धि तथा विकास में महत्व है। कुछ बीजों के अंकुरण के लिये लाल किरणों से कुछ समय तक प्रभावित होना आवश्यक है अन्यथा उनका अंकुरण नहीं होगा। अंकुरण के बाद नये बीजांकुर को परिपांवित से स्वगांवित करने के लिए लाल

किरणों की पत्तियों में प्राक्लवक (Proplastids) को पर्णहरितलवक (Chloroplasts) में बदलने में सहायता करता है जिससे पौधों में प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया हो सके । प्रकाश-संश्लेषण लाल किरणों में सर्वाधिक, बैंगनी किरणों में इससे कम तथा नीली किरणों में सबसे कम होता है ।

प्रकाश की तीव्रता—प्रकाश की तीव्रता का पौधों की वृद्धि पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव पडता है । पत्ती के जीव द्रव्य की पारगम्यता तथा पदार्थों का एक भाग की कोशिका से दूसरी कोशिका में जाने पर प्रकाश की तीव्रता पर प्रभाव पड़ता है तथा प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया नियन्त्रित होती है ।

विभिन्न पौधों की प्रकाश-संश्लेषण के लिए प्रकाश तीव्रता की आवश्यकता होती है । इसके आधार पर पौधे दो प्रकार के होते हैं—

1. छाया में उगने वाले पौधे—ये पौधे सूर्य के प्रकाश की 1% से कम प्रकाश-तीव्रता में काफी प्रकाश संश्लेषण कर लेते हैं ।

2 धूप में उगने वाले पौधे–इनको पूर्ण सूर्य के प्रकाश की 6% प्रकाश तीव्रता की आवश्यकता होती है । कम तीव्रता में पौधों के पूर्ण रंध्र (Stomata) बन्द हो जाते हैं जिससे कार्बन्डाई आक्साइड के अन्दर प्रवेश न करने से प्रकाश-संश्लेषण की गति मन्द हो जाती है । बहुत अधिक प्रकाश-तीव्रता में वाष्पोत्सर्जन (Trans-Piration) दर बढ़ जाती है और प्रकाश संश्लेषण पर विरोधी प्रभाव पड़ता है जिससे CO_2 पत्तियों से बाहर आने लगती हैं ।

प्रकाश की अवधि—पौधों में फूल तथा फलन के समय पर प्रकाश अवधि का प्रभाव पड़ता है । इस दृष्टि से पौधों को तीन वर्गों में बाँटा गया है—

(अ) अल्प प्रकाशापेक्षी पौधे (Short day Plants)—इन पौधों को अपेक्षाकृत छोटे दिनों की आवश्यकता होती है जिनके लिये न्यूनतम क्रांतिककाल की आवश्यकता होती है । प्रकाश अवधि अधिक होने पर पुष्पन न होकर वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है । जैसे – मक्का, धान की कुछ किस्मे, सोयाबीन, मूंग, ज्वार, बाजरा, तम्बाकू, लोबिया आदि ।

(ब) दीर्घ प्रकाशापेक्षी पौधे (Long day Plants)–इन पौधों को पुष्पन के लिये अपेक्षाकृत लम्बे दिनों (12-14 घण्टे) की आवश्यकता होती है । इनको न्यूनतम क्रांतिककाल से अधिक समय की आवश्यकता होती है । प्रकाश अवधि इस काल से कम होने पर पुष्पन न होकर सिर्फ वानस्पति वृद्धि ही होगी । जैसे—गेहूँ, जौ, बरसीम, मटर, चना, मसूर आदि ।

(स) दिवस निष्प्रभावी पौधे (Neutral Plants)–इन पौधों की पुष्पन क्रिया पर प्रकाश अवधि का प्रभाव नहीं पड़ता है बल्कि पुष्पन अल्प और दीर्घ प्रदीप्तिकाल में दोनों में हो जाता है । जैसे—जैसे कपास, सूर्यमुखी, टमाटर, धान की कुछ किस्में जया, पद्मा, आई आर 8 आदि ।

प्रकाश का पौधों की संरचना पर काफी प्रभाव पड़ता है । अंधेरे में उगे पौधों के तने दुर्बल तथा पतले होते हैं । शाखाओं पर छोटे आकार की पर्णरहित पीली पत्तियाँ होती हैं जिससे इनका समुचित विकास नहीं हो पाता है ।

(2) तापमान (Temperature)—पौधों में होने वाली सभी शारीरिक क्रियात्मक प्रक्रियाओं के लिए उचित तापमान की आवश्यकता होती है । पौधों के अंकुरण से लेकर पकने तक की विभिन्न क्रियाओं पर विभिन्न तापमानों का प्रभाव पड़ता है । अधिकांश पौधे 15° सेग्रे. से 45° सेग्रे. के बीच तापमान पर वृद्धि करते हैं । इससे बहुत अधिक या कम तापमान पर पौधों की वृद्धि रुक जाती है ।

पौधों की विभिन्न क्रियाओं पर तापमान का प्रभाव

प्रकाश-संश्लेषण पर प्रभाव—एक निश्चित तापमान पर प्रकाश-संश्लेषण की गति बढ़ जाती है क्योंकि इस ताप पर एन्जाइम्स नष्ट होने लगते है । कम तापमान का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है ।

श्वसन क्रिया पर प्रभाव—तापमान के अधिक होने पर श्वसन क्रिया की गति अधिक तथा कम तापमान पर गति कम हो जाती है । 8° सेग्रे. से 45° सेग्रे. तक तापमान बढ़ाने पर श्वसन की गति धीरे-धीरे बढ़ जाती है । इससे अधिक तापमान पर एन्जाइम्स के नष्ट होने से गति कम हो जाती है । श्वसन क्रिया के तीव्र होने पर पौधों का आहार आक्सीकरण द्वारा जलकर नष्ट हो जाने से उपज में कमी आ जाती है । जैसे–आलू, शकरकन्द ।

वाष्पोत्सर्जन क्रिया पर प्रभाव—इस क्रिया पर तापमान का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है । एक निश्चित सीमा से अधिक तापमान होने पर वाष्पोत्सर्जन की गति बढ़ जाती है । पत्ती पर्ण मध्यांतक कोशिकाओं में जल भरे रहने से पत्ती की आर्द्रता में कमी नहीं होती है, जबकि वायुमण्डल की आर्द्रता कम हो जाती है और वायुमण्डल में वाष्प दाब कम हो जाता है तो वाष्पोत्सर्जन की दर बढ़ जाती है ।

अंकुरण पर प्रभाव—बीजों के अंकुरण से तापमान का सीधा सम्बन्ध है । भूमि में नमी तथा आक्सीजन होते हुये उपयुक्त तापमान न होने पर अंकुरण नहीं होता है । बीजों का अंकुरण एक निश्चित तापमान पर होता है । यह सीमा विभिन्न बीजों में भिन्न होती है ।

बसंतीकरण (Vernalization) पर प्रभाव—पौधों में पुष्पन से पूर्व वृद्धि-काल में एक निश्चित समय तक न्यून तापमान की आवश्यकता होती है । ठण्डे देशों में बसंतीकरण के द्वारा शीतकालीन गेहूँ के जीवन-चक्र को बसंतीकालीन गेहूँ के समान बना सकते हैं क्योंकि इसके बिना शीतकालीन गेहूँ को बसंत में बोने पर पुष्पन नहीं होगा और उपज प्राप्त नहीं होगी ।

कुछ फसलों के बीजों के अंकुरण तथा वृद्धि के लिये दिन तथा रात के तापमान में अन्तर होना आवश्यक है, साथ ही फलों के बनने पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। दिन का तापमान 26.5° सेग्रे. तथा रात्रि का तापमान 7° सेग्रे. होने पर टमाटर में अधिक फल लगते हैं तथा खाद्य पदार्थ अधिक मात्रा में एकत्रित होता है।

(3) आर्द्रता (Humidity)—पौधों की वृद्धि तथा विकास के लिये जल महत्वपूर्ण है। जल भूमि के खनिज तत्वों को घोलकर पौधों के एक-एक अंग से दूसरे अंग तथा एक कोशिका से दूसरी कोशिका में जाने का माध्यम है। पौधों की कोशिका को स्फीत रखकर प्रकाश-संश्लेषण क्रिया में सहायता करता है। पौधो की कोशिका द्रव्य का अधिकांश (80-90%) भाग जल का बना है। अतः जल पौधों का जीवन है।

वातावरण में जल वाष्प तापमान पर निर्भर करती है। तापमान अधिक होने पर आर्द्रता अधिक होगी। आर्द्रता में जल वाष्प, ओस, वर्षा के रूप में जल ओले, हिमपात आदि सभी शामिल हैं।

जल-वाष्प—जल साधनों के तलों से सदैव जल-वाष्प उड़ा करती है। इससे वायु में प्रत्येक ताप पर थोड़ी बहुत जल वाष्प सदा ही रहती है। साधारण ताप पर वायुमण्डल पर उपस्थित जल वाष्प की मात्रा वायु की संतृप्ति के लिये पर्याप्त नहीं होती है परन्तु वायु का तापमान कम होने पर एक स्थिति ऐसी भी आ जाती है जब यही वाष्प की मात्रा वायु को संतृप्त कर देती है। इससे और अधिक वायु ठण्डा करने पर जल-वाष्प बूंदों में बदल जाता है।

जल-वाष्प के विभिन्न अवस्थाओं में संघनित हो जाने पर बादल (Clouds), कोहरा (Fog), ओस (Dew); पाला (Frost), ओले (Hails) और वर्षा (Rains) आदि घटनायें उपस्थित हो जाती हैं।

बादल या मेघ (Clouds)—जहां पर वायु का ताप अधिक होता है और वहां वायु दाब कम हो जाता है तो वहां की वायु नीचे से ऊपर उठकर फैलती है। फैलने तथा ठण्डी वायु के सम्पर्क में आने से यह वायु भी ठण्डी हो जाती है। जब इसका ताप गिरकर ओसांक (Dew Point) तक आ जाता है तो उपस्थित वाष्प अत्यन्त जल बूंदों में जमने लगती है। जल की बूंदें सूक्ष्म एवं हल्की होने से वायु में संघी रहती है और वायु के साथ इधर-उधर उड़ती रहती हैं। इन बूंदों का आकार बड़ा होने पर ये दृश्यगत होने लगती हैं जिनको बादल कहते हैं।

वाष्प की मात्रा व आकार के आधार पर बादल चार प्रकार के होते हैं—

1. अलका मेघ (Cirrus)—ये बादल भूमि से 3 से 6 कि. मी. की ऊँचाई पर रहते हैं। ये बर्फ के कणों से बने होने से श्वेत रंग के होते हैं। ये प्रायः घोड़ी के पूछ के गुच्छे की भांति रेशेदार या चिड़ियो के पंख की भांति होते हैं।

2. पुंज मेघ (Cumulus)—इन बादलों का नीचे का तल तो सीधा पर चोटी गोल होती है। ये भूमि से 6 कि. मी. ऊँचाई पर इधर-उधर उड़ते दिखाई देते हैं।

3. जल मेघ (Nimbus)—इन बादलों का निचला भाग एक-सा होकर भूमि से नीले दिखाई देते हैं, इनमें वारिस होती है।

4. स्तार मेघ (Stratus)—ये काफी लम्बाई-चौड़ाई में नीचे तक फैले रहते हैं जिससे कोहरा-सा दिखाई देता है और आकाश में धुंधला-सा छा जाता है। ये भूमि से 3 कि. मी. ऊंचाई पर बनते हैं।

कोहरा या धूमिका (Fog)—वायु में नमी की मात्रा अधिक होने पर शाम के समय या रात में भूमि से कुछ ऊंचाई तक जल वाष्प छोटी-छोटी बूंदों के रूपों में जम जाती है और चारों ओर धुंधला-सा दिखाई देता है इसे कोहरा कहते हैं।

सर्दी में कभी-कभी वायुमण्डल में जल की छोटी-छोटी बूंदों के जमने से घना कोहरा छा जाता है जिससे पास की चीजें दिखाई नहीं देती है। सूर्य निकलने पर ये बूंदें वाष्प बनकर उड़ जाती हैं तो आकाश साफ हो जाता है।

ओस (Dew)—दिन में जब वाष्प बनकर उड़ता है जिससे वायु में जल वाष्प की मात्रा बढ़ जाती है। सूर्यास्त पर पृथ्वी तल से उष्मा का विकिरण होने से तापमान कम हो जाता है जिससे वायु भी ठण्डी होने लगती है और इतनी ठण्डी हो जाती है कि वह सब नमी को अपने अन्दर रोक नहीं सकती है वह जल के ओस कणो में बदलकर घास-पात और अन्य वस्तुओं पर गिर जाती है; यही जल की बूंदें कहलाती हैं।

ओस द्वारा भूमि को नमी मिलती है इसी से अक्टूबर माह में किसान दिन में खेतों को जोतकर प्रातः सूर्योदय से पूर्व खेतो में पाटा लगा देते है।

तुषार या पाला (Frost)—कभी-कभी सर्दी के दिनो में तापमान हिमांक (Freezing Point) के नीचे तक गिर जाने से वायु की नमी ओस में न बदलकर बर्फ के छोटे-छोटे कणों में बदल जाती है और जम जाती है जिसे पाला कहते है।

दिसम्बर-जनवरी में पाले की अधिक आशंका रहती है। जब दिन में खूब वायु चले और ठण्डी हो तो रात में वायु के बन्द होने पर तापमान हिमांक पर पहुंचने पर पाला पड़ता है।

पाले से अरहर, मटर, सरसों, आदि फसलों को भारी हानि पहुंचती है। इससे बचाव के लिये—1. पाले की आशंका होने पर फसलों की तुरन्त सिंचाई करें जिससे भूमि के निकट वायु में आर्द्रता बढ़ने से तापमान हिमांक तक नहीं पहुंचता

है। 2. रात के समय खेतों के पूर्वी और पश्चिमी मेंड़ों पर घास-पात जला कर धुंआ करने से तापमान हिमांक तक नहीं गिरता है और पाला न पड़कर ओस गिरती है।

ओला (Hails)—जब वर्षा की बूंदें अधिक ठण्डी होकर जम जाती हैं तो इसे ओला कहते हैं। ओलों के कारण फसलों, फल वृक्षों को अधिक हानि होती है। इस हानि को बचाना संभव नहीं है।

वर्षा (Rain)—ज्यों-ज्यों वाष्प से भरी वायु ऊंची उठती है वह ठण्डी होने लगती है तो इसकी जलधारण-क्षमता में निरन्तर कमी आ जाती है। अधिक ऊंची उठने पर वायु काफी ठण्डी हो जाती है और इसमें उपस्थित वाष्प जल की बड़ी-बड़ी बूंदों में बदल जाती है तो वायु इन बड़ी बूंदों को अपने अन्दर रोक नहीं पाती है जिससे ये भूमि पर गिरने लगती हैं, यही वर्षा है।

उत्तर में स्थित हिमालय पर्वत तथा दक्षिण की पश्चिमी और पूर्वी घाट की पर्वतमालायें समुद्र की ओर से तेज बहती नम हवाओं के मार्ग में आकर इनके ऊपर उठने को बाध्य कर देती हैं जिससे ये ठण्डी होकर बारिश करती हैं।

जून के प्रारम्भ से दक्षिणी-पश्चिमी मानसून सक्रिय होकर जुलाई मध्य तक पूरे देश में सितम्बर तक वर्षा करता रहता है। नवम्बर-दिसम्बर में उत्तरी पश्चिमी मानसून देश के दक्षिणी-पूर्वी भाग में वर्षा करता है।

देश के उत्तर में कश्मीर और दक्षिण में मद्रास को छोड़कर शेष भारत में दक्षिणी-पश्चिमी मानसून से वर्षा होती है। हिमालय क्षेत्र, आसाम की पहाड़ियों तथा पश्चिमी तट क्षेत्र पर काफी वर्षा होती है, जबकि उत्तरी-पश्चिमी भाग में वर्षा की मात्रा घटती जाती है। मात्रा और दिनों की दृष्टि से वर्षा अत्यन्त ही अनिश्चित है।

वर्षा की स्थिति—

1. अतिवृष्टि—फसलों को वर्षा की अधिकता के अनुसार हानि होती है। एक निश्चित मात्रा से अधिक वर्षा होने पर बाढ़ की स्थिति बन जाती है। भूमि की ऊपरी सतह के काफी मात्रा में बह जाने से फसलें, उपजाऊपन और पशु एवं धन-जन की काफी हानि होती है।

2. अनावृष्टि—वर्षा के कम या नहीं होने से खरीफ तथा रबी की दोनों फसलें नष्ट हो जाती हैं। भू-गर्भ जल न होने से फसलों की सिंचाई व्यवस्था भी नहीं हो पाती है जिससे नमी की कमी होने से फसलों की बोआई भी नहीं हो पाती है और अनावृष्टि के वर्षों में दुर्भिक्ष की स्थिति भी आ जाती है।

3. असमय वृष्टि—अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि की भाँति असमय वृष्टि भी हानिकर है। जैसे—

(1) खरीफ ऋतु में वर्षा देर से होने पर फसलों की बोआई समय से नहीं हो पाती है।

(2) कभी-कभी वर्षा के देर से प्रारम्भ होने पर लगातार होती रहती है जिससे खेत जुताई योग्य हुए तो फिर वर्षा हो जाती है, इस प्रकार पूरे ऋतु भर फसलें नहीं बोई जा पाती हैं और खेत खाली रह जाते हैं।

(3) कभी-कभी फसलों के ठीक समय बोने के बाद वर्षा प्रारम्भ हो जाती है तो निराई-गुड़ाई न होने से मुख्य फसल निर्बल, छोटी और पीली हो जाती है और खरपतवार इतने बड़े हो जाते हैं जिससे फसलों को पलटाई करके भूमि में दबा देना पड़ता है जिससे काफी हानि होती है।

(4) सितम्बर अन्त में या अक्टूबर प्रारम्भ मे बारिश होने पर बाजरे के पराग-कण धुल जाते हैं जिससे दाना नहीं बनता है।

(5) रबी की फसल की बोआई के लिए खेत तैयारी पर जोरों से वर्षा होने पर खेतों को दुबारा तैयार करना पड़ता है जिससे अतिरिक्त व्यय तथा फसलें देर से बोई जाती हैं।

(6) कभी-कभी रबी की फसल की बोआई के तुरन्त बाद बारिस हो जाने पर बीज का अंकुरण नही हो पाता है जिससे फसलों की बोआई दुबारा करनी पड़ती है।

4. वायु (Winds)—हमारे चारों ओर पृथ्वी तल से लगभग 600 किमी. की ऊँचाई तक वायु का आवरण है। इस प्रकार हम वायु के सागर में मछली की भाँति रहते हैं, इस वायु के सागर को वायुमण्डल कहते हैं।

वायुमण्डल में अनेक प्रकार की गैसें और जल-वाष्प की भिन्न-भिन्न मात्रा पाई जाती है। वायुमण्डल में लगभग 78% नाइट्रोजन, 21% आक्सीजन, 0·03% कार्बनडाई आक्साइड तथा 1% अन्य गैसें पाई जाती हैं। जल वाष्प की मात्रा, वातावरण, गर्मी और वायु-दाब के अनुसार बदलती रहती है। वायु-दाब अक्षांश, सूर्य की गर्मी, स्थान की ऊँचाई तथा वानस्पतिक दशा से प्रभावित होता है।

वायु-दाब (Atmospheric Pressure)

वायु का दाब शरीर के हर स्थान पर लगातार पड़ता रहता है जो 1033 ग्राम प्रति वर्ग से०मी० होता है। वायुदाब समुद्रतट से ऊँचाई पर निर्भर करता है। जो स्थान समुद्र तट से जितना ऊँचा होगा, वायु दाब उतना ही कम होगा। वायु दाब का कम या अधिक होना वायु के ताप पर निर्भर करता है। ताप के अधिक होने पर वायु दाब कम होता है।

वायु दाब का प्रभाव

मौसम-परिवर्तन—किसी भी ऋतु में बैरोमीटर के पारे के एकाएक गिरने या चढ़ने पर खराब मौसम प्रदर्शित होता है। वर्षा तथा सर्दी में दाब के एकाएक कम हो जाने पर शीघ्र वर्षा का सूचक है। ग्रीष्म ऋतु में दाब का एकाएक कम होना आंधी आने की स्थिति प्रकट करती है।

ऋतु परिवर्तन—सर्दी में गर्मी की अपेक्षा दाब अधिक और वर्षा में गर्मी से दाब कुछ कम होता है। जल-वाष्प वायु से हल्की होता है जिससे वायुमण्डल में जल वाष्प अधिक होने पर दाब कम होगा। बैरोमीटर का धीरे-धीरे चढ़ना वायु की शुष्कता को बतलाता है, साथ ही वर्षा रहित शुष्क मौसम को बताता है, जबकि बैरोमीटर में पारे की ऊँचाई कम होने पर गर्मी का आगमन और वर्षा की सम्भावना बताती है।

ऊँचाई—ऊँचाई के कारण वायु-दाब परिवर्तित हो जाता है। अतः स्थान की समुद्र तट से ऊँचाई या गहराई का अनुमान लगाया जा सकता है।

वायु की गति (Wind Velocity)

गर्मी के कारण वायु ऊपर फैलती है जिससे वायु की निचली तहों में दाब कम हो जाता है। उस समय दूसरे स्थानों से, जहाँ वायु का दाब अधिक रहता है, उन स्थानों की ओर वायु बहने लगती है।

पृथ्वी के धरातल पर सामान्य एवं तेज हवाओं का संचरण वायु के घटने-बढने के कारण होता है, जबकि वायु दाब में परिवर्तन का मुख्य कारण सूर्य से प्राप्त उष्मा है। इसी कारण सूर्य की गर्मी से विभिन्न भागों में विभिन्न परिमाण में उपलब्ध होने पर नियमित विविध हवायें चलती रहती हैं।

वायु दाब में अन्तर आने के कारण विशेष प्रकार की हवायें चलने लगती हैं जिससे इनकी सामान्य गति में अन्तर आ जाता है जिनकी गति 150 कि. मी. प्रति घण्टे से अधिक हो जाती है जो बड़ी भयानक व विनाशकारी होने से हानिकर होती है।

वायु-दिशा (Wind-Direction)

पृथ्वी के वायुमण्डल पर विस्तृत पैमाने पर बहने वाली विभिन्न हवाओं के संचरण का मुख्य कारण अधिक वायु दाब के भागों से कम वायु दाब वाले भागों की ओर वायु का प्रवाह है।

सूर्य की गर्मी के कारण पृथ्वी तल पर व्यापारिक तथा पछुआ हवायें चलती गर्मी के दिन में जल से थल की ओर 'जल समीर' तथा रात में 'थल समीर' ी हैं।

वायु की गति और दिशा का प्रभाव -

वायु की गति और दिशा का फसलों तथा कृषि संकार्यों पर प्रभाव पड़ता है—

1. जनवरी-फरवरी में तेज वायु के चलने पर गेहूँ, जौ आदि फसलें गिर जाती हैं तथा नमी शीघ्र वाष्प बनकर उड़ जाती है जिससे दाने में दूध न पड़कर सिकुड़ जाते हैं और उपज कम प्राप्त होती है क्योंकि सिंचाई करने से फसलें गिर जाती हैं।

2. मार्च, अप्रैल, मई महीनों में गर्म पछुआ हवाओं का चलना उपयोगी रहता है जो फसलों को पकाती हैं। खलियान में पड़ी लॉक की ओसाई के लिए गर्म पछुआ हवायें आवश्यक हैं तथा ये हवायें अनाज की नमी को कम कर देती हैं जिससे अनाज भण्डार में सुरक्षित रहता है।

3. मार्च-अप्रैल में पूर्वी हवायें हानिकारक होती हैं क्योंकि ये वर्षा लाती हैं और हवाओं को नम होने से फसलें देरी से पकती हैं और इस हवा में ओसाया अनाज भण्डार में रखने पर वर्षा ऋतु में खराब हो जाता है।

4. मई-जून में तेज गर्म आंधियाँ आने से खलियान में रखी लॉक उड़ जाती है तथा खेतों की ऊपरी उपजाऊ मिट्टी हवा में उड़ने से अनुर्वर हो जाती है। फलों के पेड़ों से फल बड़ी मात्रा में गिर जाते हैं तथा पेड़ टूट जाते हैं जिससे बाग-बगीचो को अधिक हानि होती है।

5. जुलाई-अगस्त-सितम्बर में मानसून हवाओं से वर्षा होती है जिसका भारतीय कृषि में विशेष योगदान है।

6. अक्टूबर-नवम्बर मे हवाओं का वेग सबसे कम रहता है।

7. दिसम्बर-जनवरी मे हवाओं के चलने से पाले की आशंका कम रहती है।

मौसम की दशाओं का फसलों पर प्रभाव

मौसम की विभिन्न दशाएँ विभिन्न फसलों को हानि पहुँचाती हैं—

1. दिसम्बर-जनवरी माह में फसलों पर पाले का भय रहता है जिसका अरहर, चना आदि फसलों पर अधिक प्रभाव होता है।

2. जनवरी-फरवरी माह में नम मौसम होने तथा बादल छाये रहने से गेहूँ, जौ, अलसी आदि फसलों पर गिरवी (Rust) रोग का आक्रमण हो जाता है जिससे उपज मे भारी कमी आ जाती है।

3. खड़ी फसल पर ओले पड़ने से फसल गिरकर गल जाती है। कटाई के समय ओलों से दाने भूमि में गिरकर नष्ट हो जाते हैं।

4. तेज हवाओं के चलने से फसलें भारी होकर गिर जाती हैं जिससे उपज में कमी आ जाती है।

5. फसल की कटाई के बाद खलियान में पड़ी लॉंक के समय बारिस होने से अनाज खराब होकर सड़ तक जाता है।

यदि फसलोत्पादन-काल में ये स्थितियाँ न आयें तो मौसम फसलों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। जैसे—

1. वर्षा के जून से प्रारम्भ थोड़े-थोड़े अन्तर पर अक्टूबर के प्रारम्भ तक होने पर फसलें अच्छी होती है। खरीफ की फसलें समय पर बोई जाकर अच्छी उपज तथा चारा देती हैं तथा रबी की फसलों के लिए खेत अच्छी तरह तैयार हो जाते हैं।

2. सितम्बर-अक्टूबर में हुई बारिस से रबी की फसलो की बोआई के लिए पर्याप्त नमी मिल जाती है।

3. सर्दी में (दिसम्बर-जनवरी) एक-दो बार महावट होने पर रबी की बढ़ती फसल को लाभ पहुँचता है, सिंचाई का श्रम बच जाता है तथा पाले का प्रकोप नहीं होता है।

4. जनवरी-फरवरी माह में आसमान साफ होने पर फसलो में गिरवी रोग-(Rust) नहीं लगता है।

5. मार्च-अप्रैल में फसलों को पकाने में पछुआ हवा तथा साफ मौसम सहायक होता है।

———

3. ऋतुयें
(Seasons)

देश में छः ऋतुयें होती हैं। उत्तरी भाग को छोड़कर शेष मैदानी भागों में ऋतुयें अधिक स्पष्ट होती हैं।

ऋतुओं की नामावली

संख्या	नाम ऋतु	हिन्दी माह	अंग्रेजी माह
1.	बसन्त ऋतु	चैत्र-बैशाख	मार्च-अप्रैल
2	ग्रीष्म ऋतु	ज्येष्ठ-अषाढ़	मई-जून
3.	वर्षा ऋतु	श्रवण-भाद्रपद	जुलाई-अगस्त
4	शरद् ऋतु	आश्विन-कार्तिक	सितम्बर-अक्टूबर
5.	हेमन्त ऋतु	मार्गशीष-पौष	नवम्बर-दिसम्बर
6.	शिशिर ऋतु	माघ-फाल्गुन	जनवरी-फरवरी

बसन्त ऋतु में जाड़ा कम होकर कुछ गर्मी पड़ने लगती है। रबी की फसलें पककर कटाई के लिए तैयार हो जाती हैं।

बसन्त ऋतु के बाद ग्रीष्म ऋतु आती है। गर्मी धीरे-धीरे बढ़कर चरम सीमा पर पहुँच जाती है, लू लगने लगती है। कटी फसलें खलियान में सूख जाती हैं इनकी मड़ाई करके अनाज अलग एकत्रित कर लिया जाता है जिसमें किसान गर्मी और लू की परवाह नही करते हैं।

गर्मी के समाप्त होते ही वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। इस ऋतु मे मौसम अनिश्चित-सा रहता है। कभी बादल, कभी वर्षा और कभी कड़ी धूप। खरीफ की फसलों की बोआई होकर इनकी निराई-गुड़ाई कार्य हो जाते हैं।

वर्षा बीतने पर शरद् ऋतु आती है। रबी की फसलो के बोने के लिए खेत तैयार करके फसलों की बोआई कर दी जाती है। हल्का जाड़ा प्रारम्भ हो जाता है।

हेमन्त में पतझड हो जाती है। सर्दी खूब पड़ने लगती है। एकाध महावट हो जाती है जो फसलों के लिए लाभदायक होती है।

अन्त में शिशिर ऋतु आती है जिसमें चिल्ला जाड़ा पड़ता है लेकिन दिन अच्छे होते हैं। सरसो फूल जाती है। बसन्त पंचमी और होली दो प्रसिद्ध त्योहार आते हैं।

देश के सभी भागो में उपर्युक्त ऋतुयें स्पष्ट दिखाई नही देती। सामान्यतया निम्न तीन ऋतुयें होती हैं—

1. ग्रीष्म ऋतु—मार्च से जून तक
2. वर्षा ऋतु—जुलाई से अक्टूबर तक
3. शीत ऋतु—नवम्बर से फरवरी तक

कृषि के आधार पर वर्ष को तीन ऋतुओं में बांटा जाता है—

(1) जायद ऋतु
(2) खरीफ ऋतु
(3) रबी ऋतु

(1) जायद ऋतु (Zaid Season)—इसे 'गर्मी की ऋतु' कहते हैं। जिसमे अधिकतर शुष्क मौसम रहता है। प्रारंभिक काल में वातावरण मे कुछ गर्मी व सर्दी रहती है तथा बाद में गर्म तथा शुष्क मौसम हो जाता है। दिन मे गर्म हवायें, लू, और आंधियां चलती हैं। ताप 30-35^0 सेग्रे तक हो जाता है।

सिंचाई की सुविधा होने पर ही इस काल मे फसलें बोई जाती हैं। फसलों का फरवरी से मार्च तक उगाया जाता है। बाजरा, ज्वार, मक्का, ग्वार, चंवला, मूंग आदि प्रमुख हैं। कुष्माण्ड कुल की सब्जियां बहुतायत से उगाते हैं।

(2) खरीफ ऋतु (Kharif Season)—इसे वर्षा की ऋतु कहते है जिसमें जून मध्य से लेकर सितम्बर तक वर्षा होती रहती है। अधिकतर शुरू में अधिक आर्द्रता तथा कम तापक्रम रहता है और बाद मे ताप अधिक होने से शुष्क वातावरण हो जाता है।

फसलों को दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के प्रारम्भ होने पर बो देते हैं तथा वर्षा ऋतु के समाप्त होने तक काट लेते हैं। धान, ज्वार, मक्का, बाजरा, अरण्डी अरहर, उड़द, मूंग, चंवला, ग्वार, तिल, कपास मूंगफली, सन, जूट के अतिरिक्त हरी घास चारे के लिए उगाते हैं। भिण्डी, तोरई, बैंगन, ककड़ी आदि शाकों को भी बोते हैं।

(3) रबी ऋतु (Rabi Season)—इसे 'शीत ऋतु' कहते हैं । जो नवम्बर-फरवरी तक रहता है । दिसम्बर-जनवरी सर्वाधिक ठंडे माह हैं । पूरी ऋतु में ताप समान नहीं रहता है । दिसम्बर-जनवरी में वर्षा महावट होने से सभी फसलों को लाभ मिलता है ।

फसलों की बोआई के समय वातावरण नम तथा हल्की सर्दी आवश्यक है । फसलों को अक्टूबर-नवम्बर में बोते हैं । वृद्धि के समय शुष्क वातावरण तथा छोटे-तेज दिन मिलते हैं । फसलों की कटाई के वक्त अपेक्षाकृत गर्म तथा शुष्क वातावरण चाहिए । फसलों को मार्च-अप्रेल में काट लिया जाता है । गेहूँ, जौ, जई, चना, मटर मसूर, सरसों, अलसी, आलू, कुसुम, मेंथी, बरसीम, रिजका कासनी आदि फसलों को उगाया जाता है ।

4. मानसून तथा इसका फसलों पर प्रभाव

(Mansoon and Effect on the Crops)

किसी भी स्थान की लम्बी अवधि के तापमान, वायुदाब पवनों और वर्षा आदि की सामूहिक दशा को जलवायु कहते हैं। जलवायु, भौतिक स्वरूप की विभिन्नता विषवत रेखा से दूरी, पर्वतों की स्थिति, हवाओं की दिशा, समुद्रतल से ऊँचाई आदि बातों से प्रभावित होती है।

भारत के उत्तर में विशाल ऊचा हिमालय पर्वत तथा दक्षिण समुद्रतटीय है जिससे मानसूनी पवनो से प्रभावित होता है। मानसूनी प्रभाव के कारण जलवायु में विभिन्नता पाई जाती है जिससे भारत की जलवायु को मानसूनी जलवायु कहते हैं।

'मानसून' शब्द अरबी भाषा के 'मौसिम' शब्द से बना है जिसका अर्थ है मौसम या ऋतु वस्तुत. मानसूनी हवा ही ऋतु संबंधी हवायें हैं क्योंकि ये साल के छः माह स्थल की ओर से तथा शेष छः माह जल की ओर से चलती हैं जिससे देश की जलवायु इन्ही हवाओ से निर्धारित होती है। भारतीय मौसम विभाग ने वर्ष को चार ऋतुओं में बाटा है—

(अ) उत्तर— पूर्वी या शीतकालीन मानसून
   1. शीतऋतु—जनवरी से फरवरी तक
   2. ग्रीष्म ऋतु—मार्च से मई तक

(ब) दक्षिणी-पूर्वी या ग्रीष्मकालीन मानसून
   3. वर्षा ऋतु—जून से सितम्बर तक
   4. शरद् ऋतु—अक्टूबर से दिसम्बर तक

(अ) उत्तर-पूर्वी या शीतकालीन मानसून

1. शीत ऋतु—देश मे इसका समय अक्टूबर-फरवरी तक रहता है क्योंकि उत्तरी गोलार्द्ध में सूर्य की किरणें तिरछी पड़ने से सर्दी रहती है। दिसम्बर-जनवरी सबसे अधिक ठंडे माह होते हैं। महाद्वीपीय पवनो के चलने से उत्तर भारत ठंडा 12° सेग्रे. से 21° सेग्रे. तापक्रम तथा दक्षिण भारत में 21-26° सेग्रे. ताप रहता है। पश्चिमी राजस्थान में रात का तापमान हिमांक से भी कम हो जाता है।

कम तापमान से पाकिस्तान के उत्तरी भाग और पंजाब में उच्च वायुदाब बनता है जबकि हिन्द महासागर व बंगाल की खाड़ी में वायुदाब कम रहता है जिससे हवायें उत्तर पश्चिम के अधिक दाब वाले क्षेत्र से हिन्द महासागर व बंगाल की खाड़ी में बने कम दाब क्षेत्र की ओर से चलने लगता है जिनको शीतकालीन पवनें कहते हैं। इनमें आर्द्रता नहीं होती है।

बंगाल की खाड़ी से उठी मानसून हवायें उत्तर से उठकर तमिलनाडु के पूर्वी घाट से टकराकर पर्याप्त वर्षा करती हैं। इस ऋतु में थोड़ी वर्षा पंजाब, राजस्थान व उत्तर प्रदेश में भूमध्य सागर की ओर उठे चक्रवात से होती है जो गेहूं की फसल के लिए लाभकर है।

2. ग्रीष्म ऋतु—इसका काल मार्च से जून तक है। उत्तर भारत में जून माह अधिक गर्म है क्योंकि इस माह में कर्क रेखा पर सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं। पूरी उत्तर भारत का मैदान गर्म हो उठता है। अधिकांश भाग व तापमान 30° सेंग्रे तक हो जाता है। राजस्थान के कुछ भागों का 45° सेग्रे. से अधिक हो जाता है। दिन में रेत के गर्म होने से गर्म तथा रातें इतनी ही जल्दी ठंडी होने से सुहावनी होती हैं।

दक्षिण भारत में सागरीय प्रभाव के कारण तापमान अपेक्षाकृत कम रहता है। इसी प्रकार उत्तर भारत के पर्वतीय भागों के ऊँचे होने से ताप कम रहता है। शिमला, दार्जिलिंग, मसूरी, नैनीताल, माउण्ट आबू का तापमान 21° सेग्रे अधिक नहीं होता।

इस ऋतु में धूल भरी गर्म व शुष्क हवायें चलती हैं जिनको 'लू' कहते हैं। ये आंधियां राजस्थान, पंजाब, हरियाणा में चलती हैं। कभी-कभी इन आंधियों के तूफानी वेग से चलने से साधारण वर्षा और यदा-कदा ओले गिर जाते हैं।

पश्चिमी तट अरब सागर और पूर्वी तट से दक्षिण की ओर से तेज आर्द्र हवायें चलती हैं जो इन प्रदेशों में 125 मिमी वर्षा हो जाती है। इस वर्षा को दक्षिण में 'आम की बौछार' तथा कहवा पैदा करने वाले क्षेत्र में फूलों की बौछार' कहलाती है।

(ब) दक्षिणी-पूर्वी या ग्रीष्म कालीन मानसून

3. वर्षा ऋतु—इसकी अवधि जून से सितम्बर तक होती है। वर्ष की सभी ऋतुओं में इसका सर्वाधिक महत्व है क्योंकि इस काल में पूरे देश में व्यापक वर्षा होती है।

उत्तर भारत में जून के माह में सूर्य की किरणें कर्क रेखा पर सीधी पड़ने से तापमान अधिक और वायुदाब कम हो जाता है जिससे दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक हवायें तेजी से उत्तरी पश्चिमी भारत के कम दाब के क्षेत्रों की ओर चलने लगती हैं। इनकी दिशा दक्षिणी पश्चिमी हो जाने से इनको इसी नाम से भी पुकारते हैं। समुद्र की ओर से आने के कारण ये आर्द्रता से पूर्ण होती हैं जो इसमे कुल वर्षा का 90% इन्हीं पवनों से मिलता है।

दक्षिणी प्रायद्वीप के हिन्दमहासागर की इन पवनीय मानसून को दो भागों में बांटते हैं—

(1) अरब सागर का मानसून
(2) बंगाल की खाड़ी का मानसून

अरब सागर का मानसून—यह बंगाल की खाड़ी के मानसून के लगभग 10 दिन बाद प्रारंभ होता है तथा अधिक शक्तिशाली है। जो पश्चिमी घाट पर 250–500 सेमी. से अधिक वर्षा करती हैं। पश्चिमी घाट को पार करके पूर्वी स्थित दक्षिणी पठार में पहुंचता है तो यह शून्य सा हो जाता है जिससे पश्चिमी घाट के पूर्वी ढालों और पठारों पर कम वर्षा होती है। पूर्व में मद्रास तक 38 सेमी. कम वर्षा होती है।

इस मानसून की दूसरी शाखा विन्ध्याचल व सतपुड़ा के मध्य से गुजरती हुई छोटा नागपुर के पठारी भाग में पहुंचकर 150 सेमी. तक वर्षा करती है।

इसी की तीसरी शाखा उत्तर की ओर काठियावाड़, गुजरात, राजस्थान, पंजाब होती हुई पश्चिमी हिमालय तक पहुंचकर हिमालय प्रदेश मे वर्षा करती है। गुजरात व राजस्थान में बड़ा पहाड़ न होने से इन पवनों को रोका नही जाता है। अरावली पर्वत श्रृंखला भी इन पवनों की दिशा के समानान्तर है। राज्य के पश्चिमी भाग में 25 सेमी. कम तथा दक्षिणी भाग में 125 सेमी. वर्षा होती है। पश्चिमी भाग में जो भी वर्षा होती है वह तेज मूसलाधार होती है।

बंगाल की खाड़ी का मानसून—इस मानसून से देश के अधिकांश भागों में वर्षा होती है। यह मानसून गंगा नदी के डेल्टा से होकर आसाम की पहाड़ियों से टकराकर भारी वर्षा करता है। चेरापूंजी स्थान पहाड़ी से घिरे होने से यहा 1300 सेमी. से अधिक वर्षा होती है।

यह मानसून दो उपधाराओं में बंट जाता है। इसकी प्रथम उप शाखा आसाम के पूर्व में जाकर ब्रह्मपुत्र की घाटी में 100-200 सेमी तक वर्षा करती है। दूसरी उप शाखा हिमालय के समानान्तर पश्चिम की ओर बढ़ती हुई बिहार, उ. प्र. वर्षा करती हुई पश्चिमी राजस्थान में पहुंचाती है। पश्चिम की ओर बढ़ते-बढ़ते इसमें

नमी की मात्रा में कमी आने से वर्षा की मात्रा कम हो जाती है। इसी से कलकत्ता में 170 सेमी. पटना में 120 सेमी. इलाहाबाद में 85 सेमी. आगारा सेमी. 70 सेमी दिल्ली में 65 सेमी. तथा बीकानेर में 28 सेमी. वर्षा होती है। हिमालय के ढालों, तथा तराई क्षेत्र में मैदानी भाग से अधिक वर्षा होती है। पश्चिमी पंजाब एवं राजस्थान तक पहुंचने पर इन हवाओं में नमी की कमी से अपेक्षाकृत काफी कम वर्षा होती है।

4. शरद ऋतु—मानसून का प्रत्यावर्तनकाल मध्य सितम्बर से प्रारम्भ होता है। इस ऋतु में आकाश स्वच्छ रहता है।

सूर्य के दक्षिणायन होते जाने से उत्तरी गोलार्द्ध में ताप गिरने लगता है। सुदूर उत्तरी भागों में रात का तापमान 0° से ग्रे. तक पहुंच जाता है और कहीं-कहीं 10° सें ग्रे. से भी कम हो जाता है। ठंडा मौसम हो जाता हैं। शुष्क तथा ठंडी हवायें चलती हैं।

बंगाल की खाड़ी में दाब कम होने तथा उत्तर पश्चिम में बढ़ने से अरब-सागर तथा बंगाल की खाडी की ओर हवाएं लोटकर तट के समीप पहुंचती हैं, जो बंगाल के तटीय भागों और तमिलनाडु में वर्षा करती हैं। तामिलनाडु के समीप 65-75 से. मी. वर्षा होती है परन्तु आंतरिक भागों में कम होती है। वायु के साथ चक्रवातों की दिशा इस तटीय क्षेत्र की ओर आने से समुद्र में बड़ी तूफानी तरंगें उठती हैं जिससे तटवर्ती भाग को काफी हानि होती है।

वर्षा के आधार पर भारत का वर्गीकरण—देश के विभिन्न भागों में वर्षा की विषमता पाई जाती है। चेरापूंजी में 1300 सेमी. तथा थार के मरुस्थल में 5 सेमी. वर्षा के आधार पर भारत को चार भागों में बांटते हैं —

(1) अधिक वर्षा वाले क्षेत्र - देश के वे क्षेत्र जहां वर्षा 200 सेमी. से अधिक होती है। इसके अन्तर्गत पश्चिमी तटीय मैदान, उ. प्र. विहार, का तटीय भाग, पश्चिमी बंगाल, आसाम, मेघालय क्षेत्र हैं।

(2) साधारण वर्षा वाले क्षेत्र—ऐसे क्षेत्रों में 100–200 सेमी. तक वर्षा होती है। इसके अन्तर्गत पश्चिमी घाट के पूर्वी भाग, पश्चिमी बंगाल के दक्षिणी-पश्चिमी भाग, उड़ीसा, बिहार के आंतरिक भाग-दक्षिणी-पूर्वी उत्तर प्रदेश, हरियाणा, और हिमाचल प्रदेश की संकीर्ण पेटी का भाग है।

(3) न्यून वर्षा वाले क्षेत्र—इस क्षेत्र में औसत वर्षा 50–100 सेमी. होती है। दक्षिण का पठार, मध्यप्रदेश, उत्तरी पश्चिमी आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, पूर्वी राजस्थान, दक्षिणी पंजाब, हरियाणा और दक्षिणी उत्तर प्रदेश है। वर्षा की मात्रा अपर्याप्त एवं अनिश्चित रहती है।

(4) अपर्याप्त वर्षा वाले क्षेत्र—इस क्षेत्र में 50 से मी. से कम वर्षा वाले क्षेत्र हैं। पश्चिमी राजस्थान, पश्चिमी पंजाब, तमिलनाडु का रायल सीमा क्षेत्र, कच्छ एवं लद्दाख आदि आते हैं।

मानसून का प्रभाव—

समय पर मानसून आने से निम्न लाभ होते हैं—

(1) भू-परिष्करण कार्यों में सुविधा—वर्षा के बाद खेत को कृषि यन्त्रों से कार्य करके फसलों की बोआई के लिए तैयार करते हैं जिससे फसलों की बोआई समय से हो जाती है।

सितम्बर अन्त तथा मध्य अक्टूबर में हुई वर्षा से रबी में अगेती बोई फसलों की तैयारी में सुविधा मिलती है।

(2) जीवांश पदार्थ में वृद्धि—वर्षा का जल जैविक पदार्थों को सड़ा-गला कर पौधों के लिए उपयोगी करते हैं। प्रथम वर्षा जल में घुली वायुमंडल की विभिन्न गैसें भूमि में शोषित होकर तत्वों को प्रदान करती हैं।

भूमि पर उगे खरपतवार, घास फूस सड़ गल कर जीवांश बन जाते हैं।

(3) *फसलों की समय पर बोआई*—*जून मध्य में वर्षा प्रारंभ होने पर* खरीफ की फसलों को समय पर बो सकते हैं।

सितम्बर-अक्टूबर में वर्षा होने पर खरीफ में बोई आलू-मूंगफली की फसल की खुदाई में सुविधा मिलती है तथा रबी की कम मांग वाली फसलें सरसों, चना आदि को समय पर बो सकते हैं।

(4) फसलों की अच्छी वृद्धि—समय पर हुई वर्षा फसलों पर कई प्रभाव डालती है

(i) बीजों के अंकुरण के लिए उपयुक्त नमी मिलती हैं जिससे शीघ्र व अच्छा बीज उगता है।

(ii) पौधों के भोज्य पदार्थ घुलकर पौधों की वृद्धि करते हैं तथा अन्य प्रकाश संश्लेषण, उत्सर्जन, वाष्पीकरण श्वसन कियाऐं सुचारु रूप से होती हैं।

(iii) फूलों से परागकण पर्याप्त मात्रा से निकलकर परागण अच्छा होता है जिससे फलन बड़े तथा अधिक संख्या में बनते हैं।

(iv) फल तथा दानों का निर्माण अच्छा होता है जिससे अधिक उपज मिलती है।

(5) सिंचाई व्यवस्था में सुविधा—मानसून के जल्दी आने से किसानों को खेत तैयारी से पूर्व सिंचाई नहीं करनी पड़ती है। खरीफ में वर्षा के समय पर से सिंचाई नहीं करने से अन्य व्यय नहीं होता है तथा अच्छा लाभ मिलता है।

पर्याप्त जल भण्डार होने से सिंचाई के लिए वर्ष भर उचित जल मिल जाता है, जिससे सघन कृषि योजना अपनाई जा सकती है।

(6) भू-गर्भ जल भण्डार में वृद्धि—मानसून की बारिस अच्छी होने से भू-गर्भ जल में वृद्धि होती है जिससे फसलों तथा मानव के लिए जल समय से मिलता रहता है।

(7) वन सम्पदा में वृद्धि—वर्षा से प्राकृतिक वनों तथा वनस्पतियों को लाभ होता है जिससे पशुओं को चारा मिलता है। वृक्षों से अनेक पदार्थ मिलते हैं जो आर्थिक लाभ प्रदान करते हैं।

(8) जीवाणु की सक्रियता—भूमि में मृदा जल से उसमें उपस्थित जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है। इनकी क्रियाशीलता से वायुमंडल की नत्रजन का संस्थापन तथा जैविक पदार्थों का सड़ना-गलना तीव्रता से होता है जो भूमि की उर्वरता में वृद्धि के साथ उपज को बढ़ाते है।

मानसून का समय पर काफी समय तक बने रहने से फसलों को काफी लाभ होता है। परन्तु इसकी कमी एवं अधिकता फसलों के साथ मृदा, जन, पशुधन को काफी हानि पहुंचाते हैं जिसका मानव जीवन पर भयंकर प्रभाव पड़ता है।

5. जलवायु का कृषि फसलों पर प्रभाव

(Effects of Climate on the Crops)

कृषि में मौसम के अनुसार विभिन्न फसलें उगाई जाती हैं जिनके लिए एक निश्चित प्रकार की जलवायु की आवश्यकता होती है। जलवायु को मौसम के विभिन्न कारक प्रभावित करते हैं जिससे इन्हीं का पौधों के अंकुरण से लेकर वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं पर प्रभाव पड़ता है।

मौसम की अनुकूलता तथा प्रतिकूलता दोनों ही वृद्धि के साथ उपज को प्रभावित करते हैं।

अनुकूल मौसम का प्रभाव

बोने के समय—बोआई से कुछ समय पूर्व वर्षा होने पर खेत में पर्याप्त नमी आने से पलेवा नहीं करना होता है तथा खेत तैयारी अच्छी होती है। बीजों के बोने के बाद साफ मौसम, वायु में नमी तथा सामान्य ताप रहने से अंकुरण अच्छा होता है।

वृद्धि काल—पौधे साफ आकाश, तेज धूप तथा हल्की वर्षा में अपना भोजन पर्याप्त मात्रा में निर्माण करते हैं। मंद वायु भी वृद्धि में सहायक होती है। गन्ने की वृद्धि के प्रारम्भ में गर्म मौसम तथा पकते समय ठंडा अच्छा है।

फूल तथा खिलने का समय—फूलों के खिलने के वक्त साफ एवं शान्त मौसम अच्छा है जिससे अच्छे परागण होने से फलन अच्छा होता है। स्वस्थ तथा उचित आकार के फल वृद्धि के समय मन्द वायु चले। कपास की बुनाई के समय ठंडी रातें और दिन गर्म होने पर गूलर अच्छे खिलते हैं।

फसल पकने का समय—फलियों में दाना बनते समय पर्याप्त नमी आवश्यक है। इस समय निर्मल आकाश, तेज धूप तथा शुष्क वायु हो। सम मौसम अच्छा है।

फसल पकने के बाद खलिहान में मड़ाई-ओसाई के समय शुष्क मौसम आवश्यक है जिससे उपज भण्डार में सुरक्षित रूप से पहुंच सके तथा अनाज काफी समय भण्डारित किया जा सके।

प्रतिकूल मौसम—जिस प्रकार खाद व मौसम होने से पौधे अच्छी वृद्धि [illegible] उनसे अधिक उपज प्राप्त होती है परन्तु प्रतिकूल मौसम की स्थितियाँ फसल को पूरी तरह नष्ट कर देती हैं।

सूखा पड़ना—पौधों को जल की प्रतिदिन आवश्यकता होती है [illegible] न होने से सूखे की स्थिति आजाती है जिससे पौधे मुर्झा जाते हैं और उनकी वृद्धि रुक जाती है। अधिक समय तक सूखा पड़ने से फसलें पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं और अकाल की स्थिति पैदा हो जाती है।

असमय वर्षा होना—फसलों की बोआई के तुरन्त बाद वर्षा होने से बीजों के ऊपर पपड़ी बन जाने से अंकुरण नहीं होता है तथा बीज गलने के साथ दुबारा बोआई करनी होती है।

फूल खिलते तथा फसल पकते समय वर्षा होने से परागकण घुल जाते हैं और फलन नहीं होता है। काफी समय तक बादल रहने से फसलों पर विशेष कीटों रोगों का प्रकोप होता है। फसलों के गिरने से वे गल जाती हैं। कपास की गुणता खराब हो जाती है।

फसलों की कटाई के बाद खलिहान में रखे जाने पर वर्षा इसे पूरी तरह गला देती है तथा वे अंकुरित भी हो जाती है जिससे काफी अधिक हानि होती है।

पाला पड़ना—शीतकाल में पाला पड़ने से पौधों के तन्तु नष्ट हो जाते हैं तथा इनकी विभिन्न क्रियायें नहीं होती हैं। फसल पूरी तरह मुरझा कर सूख जाती है।

अत्यधिक गर्मी पड़ना—पौधे अधिक गर्मी सहन नहीं कर पाते हैं। अप्रैल से जून तक का गर्म-शुष्क मौसम पौधों को प्रभावित करता है। उनकी जल की मांग बढ़ जाती है। पूर्ति न होने से पौधे झुलस कर नष्ट हो जाते हैं।

आंधी-तेज हवा का चलना—फसल तैयारी के समय तेज हवाएँ चलने से वे गिर जाती हैं तथा नमी के वाष्पीकरण से दाना पतला रह जाता है और उपज कम मिलती है। खलिहान में तैयार लांक पूरी उड़ तक जाती है। वर्षा के साथ तेज आंधी भी अधिक हानिकर है। रबी की मड़ाई के वक्त पुरवा हवा चलना, ओसाई के समय मन्द हवा, बीज भण्डारण के समय नमी की अधिकता का बुरा प्रभाव होता है।

ओलों का पड़ना—रबी के मौसम में ओले पड़ने से फसलें पूरी तरह नष्ट हो जाती हैं और कुछ भी उपज नहीं मिलती है। प्रकृति में यह स्थिति सबसे भयंकर है जिसके आगे उसका वश नहीं चलता है और बेचारा देखता ही रह जाता है।

रक्षा के उपाय—मौसम को अनुकूल बनाना मानव के लिए असंभव-सा है। फिर भी कुछ उपाय अपना कर फसलों की कुछ रक्षा कर सकता है।

सिंचाई करना—मिट्टी की अपेक्षा जल का ताप अधिक होता है तथा देर से ठंडा होता है और ठंडा होने पर देर से गर्म हो पाता है। इसी विशेषता के कारण पाला पड़ने की आशंका होने पर खेत की सिंचाई लाभकर है जिससे मृदा का ताप अधिक नहीं गिर पाता है और फसलों को विशेष हानि नहीं होती है। सूखे की स्थिति में सिंचाई की व्यवस्था होने से फसलों की वृद्धि ठीक होती है तथा गर्मी से पौधों का बचाव होता है। वर्षा के जल को भण्डारित कर इसे सूखे के समय सिंचाई में उपयोग कर सकते हैं।

खेत के चारों ओर घास, कूड़ा-करकट जलाना—भूमि दिन में गर्मी ग्रहण करके रात्रि में नष्ट होती है। गर्मी के इस प्रकार नष्ट होने से ताप गिरता है। नमी तुषार (पाला) के रूप मे जमती है। खेत विकिरण द्वारा होने वाली हानि को रोकने पर ताप कम गिरता है और पाला नहीं पड़ता है।

इसी उद्देश्य से खेत के चारों ओर कूड़ा-करकट जला दिया जाता है, जिससे भूमि में ताप बढ़ने के साथ धुआं चारों ओर छा जाता है जिससे यह विकरण द्वारा होने वाली हानि को ऊपर वायुमण्डल में नही जाने देती है और भूमि का ताप न गिरने से पाला नही पड़ता है।

तेज हवाओं से बचाव—क्षेत्र में सदैव निश्चित एक ही दिशा में वायु चलने पर इनके मार्ग में वृक्षों को सघन पंक्ति में लगा देते हैं। गांव के चारो ओर बाग लगाना लाभदायक है।

उचित जल निकास प्रबन्ध—असमय वर्षा होने पर खेतों मे जल के निकास हेतु उचित नालियां बना ली जावें। कम वर्षा होने पर कुओं का प्रबन्ध करें जिससे सिंचाई की जा सके।

ओले से बचाव—यह प्राकृतिक प्रकोप है, जिससे रक्षा करना कठिन प्राय. है फिर भी फसलो की सिंचाई करते हैं।

मौसम वेधशालाओं से प्रसारित प्रतिकूल मौसम की जानकारी के अनुसार व्यवस्था करना अच्छा है।

फसलों की उपयुक्त समय पर बोआई—फसलों को मौसम मे उपयुक्त किस्मों का चयन कर सही समय पर बोने पर इनकी कटाई ठीक समय पर होती है। देरी करने पर अंकुरण अपेक्षाकृत कम होता है तथा उपज कम मिलती है।

फसलों की सुरक्षा—फसलों में कीट रोग तथा अन्य स्थितियां पैदा होने पर उनकी उचित उपाय अपनाकर रक्षा करें। फसलों के पकते समय जंगली पशु-पक्षियों से भी बचाव करें। खलिहान तथा भण्डार-गृहों में अनाज को चूहों तथा अन्य से बचाव का प्रबंध करना अच्छा है।

कृषि प्रकृति के आधीन है। परिस्थितियों के अनुसार उपाय अपनाकर फसलों की रक्षा करनी चाहिए फिर भी हर समय कृषक से सावधान रहना अत्यन्त आवश्यक है। आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा समाचार-पत्रों से प्रसारित मौसम की सूचना के अनुसार कृषि कार्य तथा उपायों को करना अच्छा है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जलवायु तथा मौसम से क्या तात्पर्य है, किसी स्थान की जलवायु को कौन से कारक प्रभावित करते हैं ?
2. मौसम के कौन-कौन से तत्व हैं, कृषि कार्यों का मौसम से क्या सम्बन्ध है ?
3. पाला किसे कहते हैं, फसलों का पाले से किस प्रकार से बचाव करेंगे ?
4. वर्षा तथा जलवायु का फसलों की उपज तथा गुणों पर प्रभाव पड़ता है, इस कथन की व्याख्या करिये।
5. कृषि कार्यों का मौसम से क्या सम्बन्ध है ? क्या वर्षा की मात्रा के साथ इसका वितरण भी कृषि को प्रभावित करता है, बताइये।
6. मौसम की निम्न स्थितियों का फसलों पर क्या प्रभाव होता है—
   (अ) सितम्बर प्रारम्भ में वर्षा समाप्ति का गेहूँ की फसल पर प्रभाव।
   (ब) 15 और 30 जुलाई तक वर्षा न होने का धान, मक्का, बाजरा की फसलों पर प्रभाव।
   (स) 15 अक्टूबर को वर्षा होने पर सरसों, चना, मटर फसलों पर प्रभाव।
   (द) मार्च के अन्त में भारी वर्षा होने तथा ओले पड़ने से खड़ी फसलों पर प्रभाव।
7. मानसून की स्थितियों का कृषि पर क्या प्रभाव होता है ? वर्णन करिए।

---

6. मौसम विज्ञान संबंधी यंत्र

(Climato lolgical-Instruments)

वेध-शालाओं मे निम्नलिखित बातें रिकार्ड की जाती है—

1. उच्चतम और न्यूनतम ताप
2. वायु-दाब
3. आर्द्रता
4. वायु की दिशा और गति
5. वर्षा
6. आकाश की दशा
7. सूर्योदय तथा सूर्यास्त

1. उच्चतम और न्यूनतम ताप (Maximum and Minimum Temperature)

ताप का भूमि की उर्वरा शक्ति से सीधा सम्बन्ध है। यह भूमि की भौतिक, रासायनिक और जैविक क्रियाओं पर प्रभाव डालता है। पेड़, पौधों के अलावा समस्त जीवधारियों पर ताप का प्रभाव पड़ता है। सूर्य ताप का प्रधान साधन है। ताप को नापने के लिए 'तापमापी' (Thermameter) काम में लाये जाते हैं। ये तापमापी ताप को तापक्रम के रूप में प्रदर्शित करते हैं जो फेरनहीट (Fehren beit) और सेण्टीग्रेट (Centigrate) मे नोट किये जाते हैं।

सिक्स तापमापी (Six'th Thermameter) – वायुमण्डल के ताप को नापने के लिये विशेष तापमापी 'सिक्स तापमापी' प्रयोग में लाया जाता है।

इस तापमापी में घुण्डी A और इससे जुड़ी हुई नली AB पूरी अल्कोहल से भरी होती है, B से C तक पारा भरा होता है। C के ऊपर कुछ अल्कोहल भरा होता है। पारे की सतह पर दोनों ओर लोहे के निर्देशक (Index) लगे होते हैं। यह ताप को सेग्रे. और फेरनहीट दोनों मे प्रकट करता है।

चित्र : सिक्स तापमापी

कार्य-विधि—जब वायु का ताप बढ़ता है तो घुण्डी A के अल्कोहल का आयतन बढ़ता है और पारे की सतह दूसरी नली मे C से ऊपर चढ़ने के साथ निर्देशांक ऊपर चढ़ जाता है जो दिन के 24 घण्टे के सर्वाधिक ताप को प्रकट करता है। जब वायु का ताप गिरता है तो
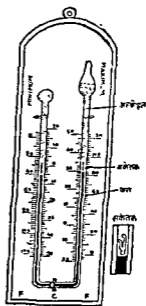
घुण्डी A के अल्कोहल सिकुड़ने पर पारा नली में नीचे गिरता है और B से ऊपर को ओर AB नली में चढ़ जाता है तो पारा निर्देशक को नली में B से ऊपर चढ़ा देता है यही 24 घण्टे का न्यूनतम ताप होता है ।

24 घन्टे में ताप एक बार देखते हैं । सर्वाधिक ताप दोपहर 2 बजे तथा न्यूनतम ताप 4 बजे होता है । अगले दिन के लिए निर्देशको को चुम्बकीय सहायता से पारे की सतह तक पहुंचा देते हैं ।

2 वायु दाब–वायु-दाब को नापने के लिये 'वायु-दाबमापी' (Barometer) प्रयोग में लाये जाते हैं । दो प्रकार के वायु दाबमापी प्रयोग में लाये जाते हैं—
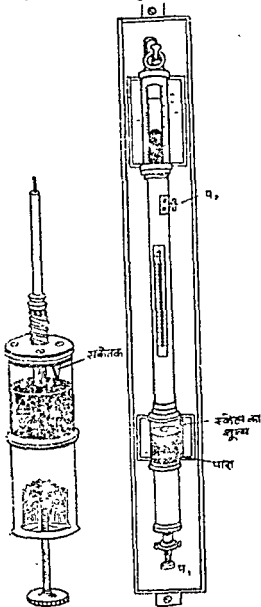
चित्र : फार्टीन वायु-दाब मापी

फार्टीन वायु दाबमापी—यह एक मीटर लम्बी और एक सेमी अर्द्ध-व्यास वाली कांच की नली का बना होता है जिसका ऊपरी सिरा बन्द और निचला मुंह खुला होता है। यह नली शीशे की एक प्याली में रखी होती है जिसमें शुद्ध पारा भरा होता है। नली में पारा इस प्रकार भरते हैं जिससे वायु न रहे। प्याली का ऊपरी सिरा बन्द होता है परन्तु प्याली के नीचे विशेष प्रकार का चमड़ा (चैमोइस लैदर) लगा होता है।

प्याली के ऊपरी ढकने पर एक सूई लगी होती है। तली वाले चमड़े को एक पेंच द्वारा ऊपर-नीचे करके सूई को पारे के तल से छूती हुई रखते हैं। इस सूई की नोक को पैमाने के शून्य पर रखते हैं।

यह पूरा यंत्र एक कांच की अलमारी में बन्द रहता है। एक तापमापी भी लटका रहता है।

कार्य-विधि—यह दीवाल में ऊर्ध्वाधर स्थिति में लगा रहता है। पेच के द्वारा पात्र के आयतन को समायोजित करते हैं। बाहर बाजू में लगे पेच वर्नीयर पैमाने को शून्य पर स्थिर करते हैं कि उसकी नीचे की किनार पारे की ऊपरी सतह से मिल जावे। वर्नीयर के शून्यांक के पाठ्यांक पढ़े, यही पारे की ऊंचाई होगी।

वायुदाबमापी मे पारे की ऊंचाई का घटना वर्षा का सूचक, बढ़ती, ऊंचाई, शुष्क मौसम तथा पारे की ऊंचाई के यकायक गिर जाने को आंधी आने की सूचना को प्रकट करता है।

इसकी अधिक लम्बाई यन्त्र को ले जाने मे कष्टप्रद रहती है जिससे इसे वेध शाला में ही उपयोग लाया जाता है।

अमीर का वायुदाब मापी (Aneroid Barometer)—

इनमें किसी भी द्रव के काम न लाये जाने से इसे, निद्रव वायु दाबमापी भी कहते है।

यह धातु के गोल डिब्बे का बना होता है जिसके अन्दर की सारी वायु निकाल दी जाती है। इसका ढकना विशेष रूप से लुहरियादार एवं लचकदार पतली पतंदार धातु का बना होता है। अन्दर कई उत्तोलक (Levers) होते हैं। एक संकेतक लगा होता है जो विशिष्ट वृत्ताकार पैमाने का अंशांकन फोर्टीन वायु दाबमापी की सहायता से किया जाता है। इस पर मौसम को आंधी; शुष्क; वर्षा आदि स्थिति के निशान लगे होते हैं।
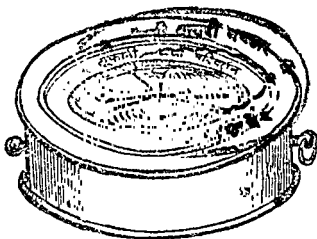
कार्यविधि—वायुदाब के घटने-बढ़ने से ढक्कन पर कम या अधिक दाब पड़ता है। इस दाब की गति उत्तोलकों की सहायता से बढ़कर संकेतक को गति प्रदान करती है। स्थिर संकेतक की स्थिति को पढ़कर दाब तथा स्थिति का अनुमान लगा लिया जाता है।

3. आर्द्रता (Humidity)—वायु में नमी की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। किसी समय एक निश्चित ताप पर नमी की निश्चित मात्रा रह सकती है। यह मात्रा ताप के घटने-बढ़ने के साथ घट और बढ़ जाती है। इसके लिये शुष्क एवं तर घुण्डी वाला तापमापी प्रयोग में आता है।

शुष्क एवं तर घुण्डी वाला तापमापी (Dry and wet Bulb Thermameter)—

इस यन्त्र में दो साधारण तापमापी एक तख्ती पर बराबर-बराबर लगे होते हैं जिनमें पारा भरा होता है। एक तापमापी की घण्डी खुली रहती है तथा दूसरी की घुण्डी मलमल के कपड़े से ढकी रहती है। जिसका एक सिरा पानी की प्याली में डूबा रहता है।

दोनों तापमापी अलग-अलग ताप बताते हैं क्योंकि दोनों में सदा ही अन्तर रहता है। वायु-मण्डल के अधिक शुष्क रहने पर तापमापी द्वारा प्रदर्शित ताप में उतना ही अन्तर होगा जबकि नम वायुमण्डल में यह अन्तर कम होगा।

कार्यविधि—तापमापी के तर बल्ब की सतह पर वाष्प बनती रहती है। वायु के शुष्क होने पर चित्र शुष्क एवं तरघुण्डी तापमापी
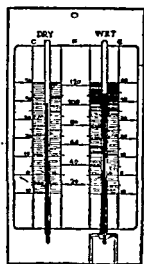
वाष्प उतनी ही जल्दी बनती है। अतः वाष्प बनने की दर के अनुसार दोनों तापमापी में अन्तर हो जाता है। प्रायः तर बल्ब के तापमापी का ताप कम होता है। यदि दोनों तापमापी के ताप में अन्तर कम होगा तो इसका अर्थ है कि तर बल्ब में वाष्प धीरे-धीरे बन रही है और वायु जल वाष्प से संतृप्त है तो वाष्प नहीं बनेगी और दोनों तापमापी एक ही ताप बतायेंगे। सूत्र या तालिका द्वारा मौसम की शुष्क एवं आर्द्रता ज्ञात करते हैं।

4. वायु की गति—गति मापने के लिए, वायु गति मापक या एनीमोमीटर प्रयोग में लाया जाता है।
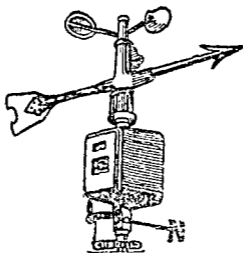
चित्र : एनेमीटर

इसमें 2.70 सेमी लम्बे धातु के खभे पर 16-16 सेमी व्यास की 4 कटोरियां लगी होती हैं जो वायु की गति से 1/3 घूमती है। वायु की गति 16 किमी होने पर ये कटोरियां एक घन्टे में 500 चक्कर लगाती है। यन्त्र में लगी घड़ी से वायु की गति किमी प्रति घन्टे मालूम होती है।

गर्मी के मौसम में वायु की गति अधिक रहती है क्योंकि तेज हवा व लू चलती है, जबकि अन्य मौसम में वायु धीमी 13 से 16 किमी की गति से चलती है।

5. वायु की दिशा—वायु की दिशा जानने के लिये 'वायु दिक्दर्शक' (Weather Cookor Wind Vane) प्रयोग में लाया जाता है।

इस यन्त्र में लोहे के एक तीर को सीधी धुरी पर इस प्रकार लगाते हैं कि तीर पृथ्वी के समानान्तर रहकर धुरी पर वायु की गति से स्वतन्त्रतापूर्वक घूमकर उस दिशा को प्रकट करे जिधर से वायु बहती है। तीर के पीछे दो पत्तियां (Fang) लगी होती है, जो वायु द्वारा घूमती रहती है।
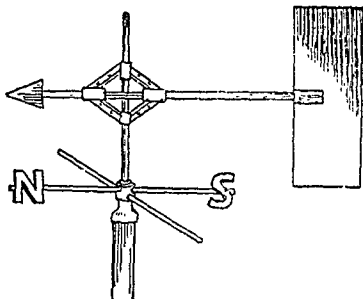
चित्र : वायु दिशा सूचक

6. आकाश की दशा—साफ आकाश और तेज धूप फसलों तथा कृषि क्रियाओं के लिये अच्छा रहता है, जबकि बादलों के घिरे रहने पर धूप कम रहती है और वर्षा की आशंका रहती है।

7. वर्षा (Rain)—किसी निश्चित समय की वर्षा को मापने के लिये, वर्षामापी (Rain Gange) प्रयोग में लाते हैं।
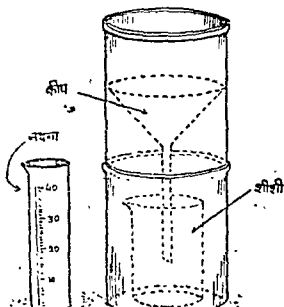
यह वायु का गोलाकार सिलिन्डर होता है जिसमें एक कीप लगी रहती है। कीप का व्यास सिलिन्डर के व्यास के समान होता है। सिलिन्डर में रखी बोतल या जार में वर्षा की बूंदें कीप से गिरकर इकट्ठी होती रहती हैं। निश्चित समय की बारिश के पानी को नपना ग्लास द्वारा नापकर उसकी माप को नोट कर लिया जाता है जो सेमी, इन्च, में होती है। इस यन्त्र को खुले स्थान पर रखा जाता है।

7. सूर्योदय तथा सूर्यास्त (*Sunrise and Sunset*)—प्रतिदिन सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय का ज्ञान आवश्यक है। इसका पृथ्वी की गति से सम्बन्ध होता है।

ऋतु विज्ञान वेधशाला का निर्माण

इसके लिए 12 मीटर लम्बा तथा 9 मीटर चौड़ा अपेक्षाकृत खुला और ऊँचा खेत का स्थान चुन लेते हैं जिसके चारों ओर कोई ऊंची इमारत या पेड़ न हो जो यन्त्रों पर धूप, वायु तथा वर्षा में बाधा न पहुंचावे। टुकड़े को समतल करके इसके चारों ओर लोहे के खंभे लगाकर कांटेदार तार द्वारा सीमित व सुरक्षित कर देते हैं। एक द्वार जिस पर लोहे का फाटक लगा हो इस भूमि पर रेखांकन के अनुसार निम्न यन्त्रों को लगा देते हैं—

(1) उच्चतम न्यूनतम तापमापी (2) शुष्क तथा आर्द्रतामापी (3) वर्षामापी (4) वायु वेगमापी (5) वायु दाबमापी (6) वायु दिक्‌दर्शक (7) कढ़ाप्पमान। निम्न बातों का ध्यान रखते हैं—

(1) वर्षामापी—इसके लिये 45 सेमी लम्बा तथा इतना ही चौड़ा, 60 सेमी ऊंचा चबूतरा बनाते हैं। जिसमें वर्षामापी को सीमेण्ट से इस प्रकार चिन देते हैं कि वर्षामापी का किनारा समतल हो।

(2) तापमापी—तापमापियों को लकड़ी के एक ऐसे डिब्बे में फिट कर के बन्द करते हैं कि वायु का आवागमन बना रहे। इस डिब्बे को 1·2 मीटर ऊंचे स्टैण्ड पर स्थापित करते हैं।

(3) वायु गतिमापी—इसे 10 मीटर लम्बे लकड़ी के खंभे पर लगाया जाता है। इसी के ऊपर वायु दिक्‌दर्शक भी लगाया जाता है।

(4) वायु दाबमापी—इसे भूमि से लगभग एक मीटर की ऊंचाई पर लगाते हैं।

मौसम का पूर्वानुमान (*Weather Forecasiting*)

विभिन्न फसलों की बोआई से लेकर इसके भण्डारण तक की विभिन्न क्रियाओं के लिये मौसम पर निर्भर रहना पड़ता है। इसके वैज्ञानिक ढंग से निराकरण के लिये पूना में भारतीय ऋतु अनुसंधान वेधशाला की स्थापना की गई और देश को पांच क्षेत्रों में बांटा गया जिनके प्रधान कार्यालय दिल्ली,

नागपुर, बम्बई, मद्रास एवं कलकत्ता हैं। देश में कुल 1142 वेधशालायें तथा 2500 वर्षामापी केन्द्रों के अतिरिक्त भूकम्पीय विभाग सहयोग के अन्तर्गत 22 केन्द्र हैं। जहाँ पर वायुमण्डल के दाब, तापमान, आर्द्रता, वर्षा और बादलों सम्बन्धी सूचनाएं एकत्रित करते हैं जिनके आधार पर क्षेत्रीय कार्यालय मद्रास, बम्बई, नागपुर, दिल्ली, जयपुर आदि केन्द्र भविष्यवाणी करते हैं। इन सूचनाओं को क्षेत्रीय भाषा में रेडियो के देहाती तथा कृषक प्रोग्रामों में प्रति दिन प्रसारित किया जाता है। दिन प्रतिदिन हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषायी दैनिक पत्रों में मौसम सूचना प्रसारित की जाती हैं जो शिक्षित कृषकों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं परन्तु कृषकों के अशिक्षित होने, दूर-दराज क्षेत्रों में सूचनायें न पहुँचने, वेधशालाओं की कमी तथा जलवायु की विविधता के कारण किसान इनका पूरा लाभ नहीं उठा पाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मौसम के पूर्वानुमान का कृषकों को क्या लाभ है ?
2. वेधशाला में मौसम के अध्ययन के लिए लगाये विभिन्न यन्त्रों के नाम तथा इनके उपयोग विधि को बताइये।
3. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो—
   (i) वर्षा-मापी
   (ii) वायु दिक्‌सूचक
   (iii) अनीर वायु-दाबमापी

7. कृषि के आधार पर भारत एवं राजस्थान की जलवायु
(Agro Climatic Zones of India and Rajasthan)

भारत की जलवायु—इस विशाल देश की प्राकृतिक दशा बनावट, जलवायु, वनस्पति, खान-पान, रीति-रिवाज आदि में विभिन्नताएँ हैं। पूरे देश की जलवायु एवं ऋतुओं में एक ही कम दिखाई देने का कारण भारत की जलवायु को मानसूनी जलवायु कहा जाता है।

देश में कहीं उष्ण और कहीं शीतल, कहीं सम तथा कही विषम कही आर्द्र और कही शुष्क जलवायु पाई जाती है। देश में चेरापूँजी जैसे सर्वाधिक वर्षा वाले भाग और अत्यन्त कम वर्षा वाले शुष्क मरुस्थली भाग पाये जाते हैं। इन्ही आधार पर देश को पांच जलवायु प्रदेशों मे वर्गीकृत किया जाता है—

(1) शीतोष्ण हिमालय प्रदेश
(2) शुष्क उत्तरी प्रदेश
(3) पूर्वी धान प्रदेश
(4) मालाबार का नारियल प्रदेश
(5) दक्षिणी मिलेट्स प्रदेश

(1) शीतोष्ण हिमालय प्रदेश (Temperate Himalayan Zone)

इसे दो भागों में बांटा जाता है—

(अ) पूर्वी हिमालय प्रदेश (Eastern Himalayan Zone)—यह खासी की पहाड़ियों से लेकर ऊपरी आसाम तथा सिक्किम तक फैला हुआ है जहां 200 सेमी. से अधिक वर्षा होती है तथा वर्ष के अधिकांश समय में वर्षा होती रहती है। इन प्रदेशों में साल, चीड़, देवदार आदि के सघन वन पाए जाते हैं। कुछ क्षेत्रों में धान की फसल बोई जाती है।

(ब) पश्चिमी हिमालय प्रदेश (Western Himalyan Zone)—इस प्रदेश में कुमायूं, गढ़वाल, शिमला की पहाड़ियों के अतिरिक्त कुलू, कांगड़ा, जम्मू-काश्मीर आदि क्षेत्र हैं जो पूर्वी प्रदेश की अपेक्षा शुष्क है। इसके उत्तरी भाग में

अधिक वर्षा 100–200 सेमी तथा ठंड होती है। इस क्षेत्र में विविध फल सेब, नाशपाती, चेटी, आलू बुखारा, आदि के अतिरिक्त आलू, मक्का तथा धान की फसलें उगाई जाती हैं।

(2) शुष्क उत्तरी गेहूं प्रदेश—(Dry Northern Wheat Zone)—

इस भूखण्ड में उत्तर भारत के पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान राज्यों तक फैला पर्वतीय नदियों की लाई आलूवियल मिट्टी का विस्तृत मैदान है जहां 20–100 सेमी. तक वर्षा होती है। पर्वतीय तराई तथा बालू भागों में मैदानी भागों से अधिक वर्षा होती है। पश्चिमी पंजाब और राजस्थान तक पहुंचते-पहुंचते वर्षा कम हो जाती है। यहां गेहूं, जौ, मक्का, कपास, चना आदि फसलें उगाई जाती है।

(3) पूर्वी चावल प्रदेश (Eastern Rice Zone)—यह प्रदेश आसाम, पश्चिमी, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, पूर्वी मध्यप्रदेश, पूर्वी उ० प्र० तक फैला है। जहां अलुवियल मिट्टी पाई जाती है। वर्ष भर में 100 सेमी. से भी अधिक वर्षा होती है। यहां धान, जूट, गन्ना आदि फसलें उगाई जाती हैं।

(4) मालाबार का नारियल प्रदेश (Malabar Coconut Zone)—यह केरल तथा देश के पश्चिमी समुद्री तट तक फैला हुआ है। जहां 250–400 सेमी. सेमी. अधिक वर्षा होती है। यहां लेटीराइट भूमि मिलती है जहां रबड़, काफी, नारियल, काली मिर्च, केसर आदि बहुतायत से उगाए जाते हैं। चावल यहां के लोगों का प्रमुख भोजन है।

(5) पश्चिमी मिलेट्स प्रदेश (Southern Millets Zone)—यह प्रदेश उत्तर प्रदेश का दक्षिणी झाँसी खण्ड, म० प्र० पश्चिमी आंध्र प्रदेश, मद्रास तक फैला है। इस क्षेत्र में कपास की काली मिट्टी और लेटीराइट भूमि पाई जाती है। यहां 50–100 सेमी. वर्षा होती हैं। ज्वार, बाजरा, कपास, मूंगफली आदि फसलें पैदा की जाती हैं।

राजस्थान की जलवायु (Climate of Rajasthan)

राजस्थान की जलवायु के बारे में अध्ययन के लिए इसकी स्थिति का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

1. राजस्थान उत्तरी अक्षांशों के 3 से 30 अंश के मध्य स्थित है। इन्हीं अक्षांशों में उत्तर प्रदेश एवं पश्चिमी बंगाल स्थित है परन्तु स्थानीय कारणों से यहां की जलवायु भिन्न है।

2. राजस्थान अरब सागर से लगभग 400 कि० मी० तथा दक्षिणी भाग

3. राज्य का अधिकांश भाग समुद्रतट से 370 मीटर से कम ऊंचा है जब कि अरावली प्रदेश के कुछ भागों की ऊंचाई 172 मीटर है।

4. कर्क रेखा राज्य के दक्षिण की ओर से होकर गुजरती है।

5. अरावली पर्वतमाला राज्य के उत्तर-पूर्व से प्रारम्भ होकर दक्षिण पश्चिम तक फैली हुई है जिसकी लम्बाई 550 किमी है जो राज्य को स्पष्ट पूर्व और पश्चिम दो भागों में विभाजित करती है।

6. अरावली पर्वतमाला से पश्चिम की ओर चलने पर रेत का विशाल मैदान है जो राज्य की 60% भूमि पर फैला है। इस रेतीले भाग में कहीं-कहीं ऊंची पहाड़ियां और रेत के टीले मिलते हैं।

7. क्षेत्रफल की दृष्टि से यह देश का दूसरा बड़ा राज्य है, जिसकी उत्तर से दक्षिण की लम्बाई 821 किमी तथा पूर्व से पश्चिम तक चौड़ाई 863 किमी है। कुछ क्षेत्रफल 3.42 लाख वर्ग किमी है जो देश के क्षेत्रफल का लगभग 10./ भाग है।

राजस्थान को मरुस्थल प्रदेश के नाम से भी पुकारते हैं। इसमें वर्षा काफी कम होती है। सारे प्रदेश की वर्षा का औसत 25 से 30 सेमी. से भी कम है जो पश्चिमी तथा उत्तरी भागों में 10 सेमी. के आस पास पहुंचता है। वर्ष भर पानी देने वाली नदी चम्बल को छोड़कर कोई नही है जिससे वृक्षों में बबूल, कीकर तथा खेजड़ी आदि पाए जाते हैं।

वर्षा की कमी के दो और कारण हैं—

1. गर्म मरुस्थल प्रदेश गर्मियों मे व्यापारिक पेटियो में होते है।

2. अधिकतर शीतकाल में शान्त पेटियों मे मिलते हैं जहां पर हवायें ऊपर से नीचे की ओर उतरती हैं जिससे इनके और गर्म होने से वर्षा नही करती है।

इस प्रकार राज्य की जलवायु गर्म एवं शुष्क है जहा दैनिक तापान्तर काफी अधिक होता है। जलवायु की दृष्टि से राज्य को चार भागो में विभाजित किया जा सकता है—

(1) उत्तरी पश्चिमी भाग—यह भाग शुष्क तथा मरुस्थल है जिसमें जैसलमेर, बाड़मेर, पाली, जोधपुर, बीकानेर, नागौर, चुरु, सीकर, झुन्झूनू तथा सिरोही और जयपुर का कुछ भाग शामिल है। इस प्रदेश में राज्य का 57·8% भाग आता है जिसकी जनसंख्या 30% है। पश्चिम की ओर बारिस 10-50 सेमी होती है। दिन में यह भाग काफी गर्म रहता है और तेज रेतीली आंधी-तूफान आते हैं रातें काफी ठंडी हो जाती हैं। न्यूनतम ताप 20° से. ग्रे. व उच्चतम 46° से ग्रे. तथा आपेक्षिक आर्द्रता 48–64·6% रहती है।

घग्घर नदी प्रमुख है जो वर्ष भर सूखी रहती है। कैर, कीकर, सेंगरी, खेजड़ा, बबूल, रामबांस और कंटीली झाड़ियां होती हैं। बाजरा, मोठ मुख्य फसलें है।

(2) मध्य का पर्वतीय भाग—यह पहाड़ी प्रदेश राज्य के 9·3% भाग में फैला है। राजस्थान के सिरोही, उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, पाली, अजमेर, जयपुर, अलवर जिले इस भाग में है। इसमें अजमेर से आबू तक पूरी अरावली पर्वतमाला फैली है जिसकी चौड़ाई 50 कि. मी. तथा औसत ऊंचाई 1000 मीटर तक है। अरावली पर्वतमाला राज्य को दो भागों में विभाजित करती है।

इस भाग में 50–100 सेमी वर्षा होती है। न्यूनतम ताप 2° से. ग्रे. अधिकतम 42° से ग्रे. तथा आपेक्षिक आर्द्रता 54·9% रहती है। वनस्पतियां सघन है, पर्वतीय भाग खैर, ओक, सागोन, साल, बांस, ढाक, महुआ, वृक्षों से युक्त है जिनसे गोंद, खस, छालें, लाख, शहद, इमारती लकड़ी मिलती है। विविध प्रकार की फसलें पैदा होती हैं।

(3) उत्तर पूर्वी मैदानी भाग—यह विस्तृत मैदानी भाग अरावली शृंखला के पूर्व से गंगा-यमुना के मैदान तक फैला है जिसमें अलवर, भरतपुर, जयपुर, सवाई माधोपुर, टोंक, सीकर, झुन्झुनू तथा भीलवाड़ा जिले हैं। यह क्षेत्र सम्पूर्ण राज्य के क्षेत्रफल का 23·3% है, जिसमें 43% जनसंख्या रहती है। सीकर, झुन्झुनू की अपेक्षा अन्य जिलों में अधिक जनसंख्या है क्योंकि यह समतल तथा उपजाऊ मैदान है जहां 50-75 सेमी. वर्षा होती है। गर्मी तथा सर्दी में उगता है। न्यूनतम ताप 1° से ग्रे. अधिकतम 42° से ग्रे. तथा आपेक्षिक आर्द्रता 61·8% है। इस भाग का मुख्य व्यवसाय कृषि है। गेहूं, कपास, मक्का, मूंगफली, दालें, तिलहनें आदि फसलें पैदा की जाती हैं।

(4) दक्षिणी-पूर्वी पठारी भाग—यह प्रदेश अरावली शृंखला के दक्षिण-पूर्व में स्थित है जिसका विस्तार बूंदी, कोटा, झालावाड़, चित्तौड़गढ़ तक है जो राज्य के क्षेत्र का 9·6% तथा 13% जनसंख्या निवास करती है। चित्तौड़ में यह मालवा का पठार तथा शेष हाड़ौती का पठार कहलाता है। इसका ढाल उत्तर की ओर है। चम्बल, बनास, बालगंगा, काली, सिंध, पार्वती आदि नदियो ने इसे कई भागों में बांट दिया है। इन छोटे पठारी भागों के बीच नदियों की चौड़ी व समतल घाटियां है जो अधिक उपजाऊ हैं।

इस क्षेत्र में 70-100 सेमी. वर्षा होती है। वर्षा दक्षिण पूर्व में उत्तर-पश्चिम की ओर कम होती जाती है। न्यूनतम ताप 4° से ग्रे. अधिकतम 46° से ग्रे. तथा आपेक्षिक आर्द्रता 54·6% है। इस भाग में वनस्पति सघन है। कपास, ज्वार, मक्का, धान, गन्ना, चना, गेहूँ, अलसी आदि फसलें उगाई जाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत को जलवायु के आधार पर कितने भागों में वर्गीकृत करते हैं ? प्रत्येक भाग की विशेषताओं को लिखिए ?
2. राज्य को जलवायु के आधार पर वर्गीकरण करते हुए इनकी विशेषतायें लिखिए ?
3. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—
   (i) पूर्वी चावल प्रदेश
   (ii) दक्षिणी पूर्वी पठारी भाग
   (iii) अरावली पर्वतमाला का जलवायु में योगदान ।

8. मृदा एवं मृदा-प्रबन्ध
(Soils & Soil Management)

चट्टान
(Rock)

चट्टान—पृथ्वी का यह भाग जिस पर जीवधारी निवास करते हैं, भू-पटल कहलाता है। यह विभिन्न प्रकार की चट्टानों से बना हुआ है। ऐसा अनुमान है कि पृथ्वी का लगभग 48 किमी. गहराई का अधिकांश भाग चट्टानों से बना है। चट्टान या शिला उस ठोस पदार्थ को कहते हैं जिसमें एक या एक से अधिक खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। जिनकी रासायनिक संरचना, भिन्न होती है। इनकी बनावट ढीले मलवा (Debris) से लेकर कठोर तक हो जाती है।

चट्टानों को खनिज पदार्थों तक उत्पत्ति के आधार पर तीन श्रेणियों में बाँटते हैं—

1. आग्नेय या मैग्मज चट्टानें (Igneous Rocks)—

ये अपेक्षाकृत सबसे प्राचीन चट्टानें हैं जो पृथ्वी के धीरे-धीरे ठंडे होने पर द्रव पदार्थ जमकर चट्टानें बन गईं। ये दो रूपों में मिलती है—

(अ) पृथ्वी के अन्दर की चट्टानें—ये पृथ्वी के अन्दर के द्रव पदार्थ के जमने पर बनी जिनके रवे कुछ बड़े होते हैं।

(ब) पृथ्वी के ऊपर की चट्टानें—ज्वालामुखी के कारण द्रव पदार्थ ऊपर आकर जमने पर छोटे-छोटे रवों या काँच-पुंजीय चट्टानों के रूप धारण कर लेते हैं। जैसे—बेसाल्ट चट्टानें। आग्नेय चट्टानें अस्तरित होती हैं जिनमें खनिज यौगिक प्राकृतिक क्रियाओं से प्रभावित होकर मुख्यतया ऐलुमिना, मैग्नीशिया, चूना, पोटाश और सोडा के सिलिकेट्स के रूप में मिलते हैं।

इन चट्टानों में सिलिका अधिक अंश में मिलता है जिसके आधार पर इनको दो रूपों में विभाजित करते हैं—ग्रेनाइट, बेसाल्ट। गुणों के आधार पर इनको अम्लीय तथा क्षारीय भी कहते हैं।

(क) ग्रेनाइट या अम्लीय (Granite)—ये रवेदार और दानेदार होती हैं जो फेल्सपार, क्वार्ट्ज और अभ्रक का मिश्रण है जिसमें सिलिका 65-85% पाया जाता

है। इनका रंग श्वेत, गुलाबी और हल्का कालापन लिए होता है जो गुणों म अम्लीय हैं।

भौतिक क्रियाओं में फेलसपार पर प्रभाव पड़ने से यह विघटित होकर केओलिन (Kaolin) में बदल जाता है तथा अभ्रक मुलायम होकर पीला पड़ जाता है।

रासायनिक क्रियाओं–जलयोजन, आक्सीकरण तथा कार्बनीकरण से ग्रेनाइट बजरी, बालू, सिल्ट और चिकनी मिट्टी में बदल जाते हैं।

(ख) बेसाल्ट या क्षारीय (*Basalt*)—*ये सच्चे काले शीशे से लेकर* खुरदरे पदार्थ के रूप में मिलती हैं जो पूर्णतया ज्वालामुखी से उत्पन्न हुई हैं जिनमें सिलिका 53% से कम होता है। इनमें एपेटाइट, अभ्रक, हार्न ब्लेण्ड खनिज होते हैं। क्षार की अधिकता के कारण इनमें सड़ाव शीघ्रता से होता है।

2. तलछट या अवसादीय चट्टानें (*Sedimeutary Rocks*)—

ये चट्टानें धरातल पर अधिकता से पाई जाती हैं जो आग्नेय चट्टानों के विसंडित होने पर इनके कण, चूरा पानी के अन्दर पर्तों के रूप में एकत्रित होने से बनी हैं। गंगा-जमुना इसी चट्टान का उदाहरण है।

इन चट्टानों मे कैल्सियम, सोडियम, पोटेशियम और मैग्नीशियम के लवण होते हैं जो पानी के साथ घुलने के बाद विभिन्न पौधों और जीवाणु के उपयोग में आते हैं तथा पर्त के रूप में संचित होकर चट्टानों का निर्माण करते रहते हैं।

तलछट चट्टानों का तीन वर्गों में बांटा जाता है—

(अ) भौतिक क्रियाओं द्वारा निर्मित तलछट चट्टान।

(ब) रासायनिक क्रियाओं द्वारा निर्मित तलछट चट्टान।

(स) पेड़ या पशुओ के अवशेष से बनी तलछट चट्टान।

(अ) भौतिक क्रियाओं द्वारा निर्मित चट्टान—ये चट्टानें भौतिक शक्तियों के प्रभाव के कारण बनी हैं। नदियों का जल सदा ही चट्टानों के टुकड़ो को तोड़ कर बारीक करता रहता है जो मैदानों में बिछने और अत्यधिक दाब से चट्टानो मे बदल जाते हैं। उदाहरण-बालू की चट्टान।

1. बलुआ पत्थर (*Sand Stone*)—*सामूहिक रूप में बालू के कणों के* रूप हैं, जिसमे क्वार्ट्ज मुख्य रूप में होता है। बालू के कणों पर एक प्रकार के सीमेण्ट [illegible] सह होती है जो कणों को बांधे रखती है। [illegible] पदार्थ चिकनी मिट्टी, [illegible] लोहे के पर [illegible] हैं जिसका रंग लोहे के आक्सीकरण या जल योजन के कारण लाल, भूरा या हल्का हरा होता है ये व्यापारिक महत्व के हैं।

बलुआ पत्थर में मुख्य रूप से सिलिका के कण के साथ फेल्सपार, अभ्रक तथा अन्य खनिज होते हैं।

पटिया पत्थर (Flag Stone)—पतली तह वाली चट्टान है जो परतों में आसानी से अलग की जाती हैं।

अभ्रकयुक्त बलुआ पत्थर—इसमें अभ्रक अधिकता से मिलता है। तोड़ने पर चमकीली पत्तियों की तरह तहें निकलती है।

स्वतंत्र पत्थर (Free Stone)—ये बेडौल आकार के होते हैं।

सिलिका युक्त बलुआ पत्थर—यह कठोर चट्टानें हैं जो क्वार्ट्ज होने से दृढ़ होती हैं। भवनों के निर्माण में प्रयोग होती है। भौतिक तथा रासायनिक परिवर्तन अपेक्षाकृत कम होता है।

2. चूना पत्थर—यह ठोस रवे के रूप में कैल्सियम कार्बोनेट शुद्ध रूप में मिलता है। जो हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में घुलनशील है। इसमें कभी-कभी मैग्नीशियम कार्बोनेट, लोहे की भस्म (Fe_2O_3) तथा चिकनी मिट्टी मिली होती है। यह नीले-भूरे, सफेद या कुछ पीले-भूरे रंग का होता है।

3. शैल (Shale)—यह पतली परतदार चिकनी मिट्टी की चट्टान हैं जो भारी दाब के कारण सूखने पर शैल के रूप में आ जाती हैं। चूना युक्त सीमेण्ट के मिलने पर चूने का पत्थर, लोहे के कार्बोनेट मिलने पर लौह पत्थर, कार्बन युक्त पत्थर मिलने कोयले तथा कड़े होने पर स्लेट में बदल जाता है।

(ब) रासायनिक क्रियाओं द्वारा निर्मित चट्टान—जल के साथ रासायनिक पदार्थ घुलकर खनिजों को घुला देता है जो वाष्पीकरण के बाद जमने पर चट्टानें जीवाश कैल्सियम युक्त रवेदार चट्टानें होती हैं।

उदाहरण—चूना पत्थर, जिप्सम, सेंधा नमक।

चूना पत्थर—यह भौतिक क्रियाओं के अलावा रासायनिक क्रियाओं से भी बनता है। पेड़-पशुओं के अवशेषों से यह बनता है। समुद्री जन्तुओं में सीप, घोंघे आदि के दृढ़ खोल भारी दाब के कारण चूने पत्थर में परिवर्तित हो जाते हैं। खड़िया (chalk) की रचना एक विशेष घोंघे के खोल के चूर्ण से हुई है जो मुलायम और सफेद चट्टान है।

जिप्सम—यह ठोस, रवेदार सफेद, भूरे या लाल रंग की खनिज युक्त चट्टान हैं, जो चूने का सल्फेट ($CaSO_4$) हैं, जिसे नाखून से खुरच सकते हैं। इस पर अम्ल का प्रभाव न होने से अलग से पहिचान सकते हैं। यह सेंधा नमक की परत में मिलता है। समुद्री जल के वाष्पीकृत होने पर नमक की मोटी तह के साथ पतली तह में जम जाता है क्योंकि यह नमक से पहले तल में बैठ जाता है।

सेंधा नमक (Rock Salt)—यह रंगहीन या लालरंग का लाल चिकनी मिट्टी और जिप्सम के साथ मिलता है जो 2 से. मी. से लेकर सहस्रों मीटर ऊंची तह में मिलता है। इसे चट्टान के अलावा समुद्री जल से भी तैयार किया जाता है।

पेड़ और पशुओं के अवशेषों से निर्मित चट्टान—मृत पौधे और जन्तु भी चट्टानों का निर्माण करते हैं। पेड़ों आदि के भूमि में चले जाने पर अत्यधिक दबाव से बनती हैं जो कई रूप में मिलती हैं।

उदाहरण—चूना पत्थर, कोयला, पीट, ग्वानो चट्टान।

चूना पत्थर—सीप, शंख, घोंघा आदि के चूर्ण अवशेष परिवर्तित होकर कैल्सियम कार्बोनेट के चूने का पत्थर बन जाते हैं।

कोयला—वनस्पतियों के खनिज भूमि में दबने पर काले रंग के ठोस, चूरा होने वाला पत्थर बनता है जो चिकनी मिट्टी की तह के ऊपर मिलता है और बलुआ पत्थर, शैल आदि से ढका रहता है। यह कठोर, मुलायम, कुकिंग कोयले के कई रूपों में मिलता है।

ग्वानो (Guano)—यह समुद्री ग्वानो चिड़िया की बीट से बनी हल्के भूरे रंग का चूर्ण है जिसमें चूने का फास्फेट तथा अमोनिया के लवण होते हैं। यह दक्षिणी अमरीका व अफ्रीका के शुष्क प्रदेशों में अधिकता से मिलता है।

पीट (Peat)—यह वनस्पतियों के सडने-दबने से बनी लाल, भूरे या काले रंग की रेशेदार चट्टान है जो दल-दली क्षेत्रों में अधिकता से पाई जाती है। इसके ऊपरी ढीले भाग में पौधों की जड़ें तथा निचला भाग चिकनी मिट्टी की तरह ठोस और काला होता है।

3. कायान्तरिक चट्टानें (Metamosphic Rocks)—अधिक गर्मी एवं दाब के कारण आग्नेय तथा तलछट चट्टानों की बदली दशा का कायान्तरिक चट्टान हैं। ये अपने-स्थान पर बिना जल की सहायता से गर्मी, दाब एवं रासायनिक क्रियाओं से बनी हैं। वे दक्षिण भारत के पठार मे मिलती है।

उदाहरण—संगमरमर के पत्थर, स्लेट, हीरा, क्वार्ट्जाइट, शिष्ट, नाइस आदि।

शिष्ट (Schist)—ये सिलीकेट से बनी रवेदार चट्टाने हैं जो आग्नेय एवं तलछट चट्टानों से बनी हैं। इनमें फेलसपर के ऊपर क्वार्ट्ज, क्वार्ट्ज के अभ्रक या हार्न ब्लेण्ड की परत जम जाती है। ये दो प्रकार की है—

(i) फाइलाइट शिष्ट (Phyllite Schist)—यह चिकनी मिट्टी के स्लेट से बनी है जिसका रंग अभ्रक के कारण चमकीला हो जाता है।

(ii) क्वार्ट्ज शिस्ट (Quartz Schist)—दानेदार क्वार्ट्स में अभ्रक की पतली तहें बनने पर, इस प्रकार की चट्टानें बनती हैं।

क्वार्ट्साइट (Quartzite)—बालू पत्थर सिलिका की उपस्थिति में अधिक दाब और उच्च आयतन पर क्वार्ट्जाइट में बदल जाता है जो सफेद पीली या लाल होती है।

संगमरमर (Marvel)—यह धवल, लाल, नीला, हरा, काला आदि कई रंगों का होता है। इसका निर्माण रवेदार कैलसाइट के कणो से गर्मी तथा दाब के कारण हुआ है जो चिकने होकर संगमरमर के रूप में हो गया। एक आकार के कणों से बनते हैं। शुद्ध चूने से बना संगमरमर बर्फ के समान सफेद होता है। संसार प्रसिद्ध इमारत ताजमहल इसी पत्थर से बनी है।

स्लेट—शैल (कड़ी चिकनी मिट्टी) पर जब गर्मी और दाब का प्रबल प्रभाव पड़ा तो यह स्लेट के रूप में आ जाती है जो हल्का नीला-भूरे (Bluish Grey) रंग की है।

नीस—ये आग्नेय और पर्तदार चट्टानों से बनी हैं जिसमें फेल्सपार अधिक होता है।

चट्टानों से प्राप्त खनिज पदार्थ

चट्टानों का निर्माण विभिन्न जटिल खनिजों के संयोजन से हुआ है। ये खनिज पदार्थ चट्टानों से विभिन्न क्रियाओं के फलस्वरूप अलग होकर भूमि में मिलकर मृदा का अंश बन जाते हैं।

खनिज पदार्थ ही चट्टानों या मृदा के मुख्य अवयव हैं। किसी भूमि मे उपस्थित खनिज पदार्थ उस भूमि के पितृ चट्टानों पर निर्भर करती हैं। मृदा में अनेकों खनिज पाये जाते हैं जिनके गुण भिन्न-भिन्न है परन्तु मृदा निर्माण में कुछ खनिज प्रयुक्त होते हैं।

भू-पटल पर निम्न खनिज पाये जाते है—

फेल्सपार—48%

क्वार्ट्ज—36%

अभ्रक—10%

जिप्सम, मैग्नीशियम लाइम स्टोन—2%

अलिबाइन, हार्नब्लैण्ड, चिकनी मिट्टी, अन्य खनिज 4%.

खनिज पदार्थों को दो वर्गों में विभाजित करते हैं—

(1) प्राथमिक खनिज (2) द्वितीयक खनिज

(1) प्राथमिक या मौलिक खनिज (Primary Minerals)—इन खनिजों का निर्माण पितृ चट्टानों से हुआ है और ये वही गुण रखते हैं जो पैतृक चट्टानों के हैं। उदाहरण–फेल्सपार, आर्थोक्लेज, क्वार्ट्ज, बायोटाइट, आगाइट, हार्नब्लेण्ड, कैलासाइट, डोलोमाइट आदि।

(2) द्वितीयक या गौण खनिज—(Secondary Minerals)—ये खनिज प्रारम्भिक खनिजों से भौतिक और रासायनिक क्रियाओं के कारण बनते हैं। उदाहरण जिप्सम, हेमाटाइट, लीमोनाइट सैकण्डरी फास्फेट आदि।

प्रारंभिक खनिज—पृथ्वी खनिजों का भण्डार है जिनके गुण अलग-अलग है। मृदा निर्माण में विशेषतया लोहा, कैल्सियम, पोटेशियम, सोडियम के जटिल सिलिकेट होते हैं।

एफ० डब्ल्यू० क्लेग्रोर के अध्ययन के अनुसार भूमि पर फेल्सपार 57·8%, हार्नब्लेण्ड प्रालीवाइन 0·16%, क्वार्टज 12-7%. अभ्रक 3·6%. होता है।

क्वार्ट्ज–(SiO_2)यह सिलिका का रवेदार रूप है जिसमें कैल्सियम कार्बोनेट चिकनी मिट्टी और फेरिक आक्साइड होता है। यह सर्वाधिक कठोर और कठिनता से टूटने वाला पदार्थ है जो जल में अल्पघुलनशील परन्तु अम्लीय जल में घुल जाता है। सभी मिट्टियों में 85-95%. तक मिलता है। नदियों के किनारे बालू के कणों में क्वार्टज के कण अधिकता से पाये जाते हैं।

फेल्सपार (Felspar)—यह खनिजो का महत्वपूर्ण वर्ग है, इनको निम्न वर्गों में बांटते हैं—

आर्थोक्लेज या पोटाश फेल्सपार ($K_2O,Al_2O_3,6SiO_2$)—आग्नेय चट्टानों के टूटने व सड़ने से पोटाश और केओलीन पैदा होती है जो पोटाश के भण्डार हैं। यह विभिन्न क्रियाओं से अपेक्षाकृत शनैः शनैः घुलने से पौधों के काम आता है।

एनारथाइट या लाइम फेल्सपार (CaO, Al_2O_3, SiO_2)—इनमें चूने की मात्रा अधिक होती है तथा कैल्सियम के अल्यूमीनियम सिलिकेट होते हैं। यह अल्ट्राबेसिक और क्षारीय चट्टानों में मुख्यतया पाया जाता है।

एल्बाइट या सोडा फेल्सपार (Na_2O, Al_2O_3, $6SiO_2$)—इसमें सोडियम के एल्यूमिनियम सिलिकेट होते हैं।

इनमें चूने तथा पोटाश अधिक मात्रा में होने से पौधो के लिए लाभप्रद है जिससे कृषि में अधिक महत्व है।

अभ्रक (Mica)—यह गूढ़ रचना वाले हाइड्रेटेड सिलिकेट हैं जिनमें ऐलुमिना के अलावा सोडियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम और लोहा, निकल हैं। ये काली तथा सफेद रूप में मिलती हैं जिनसे पौधों से काफी मात्रा में पोटाश प्राप्त होता है।

एपेटाइट या कैल्सियम फास्फेट (CaO(PO$_4$) 6×2—यह रवे के रूप में कैल्शियम फास्फेट होता है जो खनिज चट्टानों मे मिलता है। भूमि में होने पर फास्फोरस अधिकता से उपलब्ध रहता है। इनको सीधे खाद के रूप या सुपर फास्फेट बनाकर प्रयोग करते हैं।

हार्नब्लेण्ट और ऑगाइट (Horn blends and Aug ite) $Ca_2Al_2Mg_2$ Fe3 $Si_6 O_{22}$ $(OH)_2$—इनमें में खनिज कैल्शियम, लोहा, मैग्नीशियम की अधिकता होती है। क्योंकि इनमें इनके अलूमिनियम सिलिकेट होते हैं।

प्रारंभिक खनिजो में इनके अतिरिक्त कैल्साइट, डोमाटाइट, मस्कोवाइट, बायोटाइट, माइक्रोलाइट, आर्थोक्लेज आदि उपस्थित होते हैं जो विभिन्न यौगिकों के समूह हैं।

द्वितीयक या गौण खनिज (Secondary Minerals)—ये प्रारम्भिक खनिजो से भौतिक एव रासायनिक गुण प्रभावित होते हैं।

इन तत्वों में कुछ पूर्णत स्वतन्त्र होते है जैसे—कार्बन, ऑक्सीजन परन्तु कुछ यौगिक आक्साइड जल से मिल अम्ल बनाते हैं जो धातुओं के आक्साइड से क्रिया करके विभिन्न लवणो के रूप मे बदल जाते हैं। निम्न प्रमुख खनिज हैं—

कैल्साइट	$CaCO_3$	हेमेटाइट	Fe_2O_3
मैग्नीसाइट	$MgCO_3$	जिल्वेसाइट	$Al_2O_3 \cdot 3H_2O$
डोलोमाइट	$CaMg\ (CO_3)_2$	लिमोनाइट	$FeO\ (OH)_2\ H_2O$
सिडेराइट	$FeCO_3$	केओलिनाइट	$Al_2\ (OH)_2Si_2\ O_5$
जिप्सम $CaSO_4 2H_2O$		इलाइट	$KAl_2(OH)(AlSi_3)\ O_{10}$
एपेटाइट $Ca_5\ (FeIOH)\ (PO_4)_3$		मोंटोमोरिलोनाइट	$Al_2\ (OH)_2\ Si_4\ O_{10}$

इन खनिजों पर लगातार विभिन्न कारक प्रभाव डालते रहते हैं जिससे ये मृदा मे विभिन्न तत्वों को प्रदान करते हैं। आक्सीजन, सिलिकान, ऐलुमिनियम, लोहा, कैल्सियम, मैग्नीशियम, पोटेशियम, सोडियम कार्बन, हाइड्रोजन, फास्फोरस, मैंगनीज, गंधक, क्लोरीन, नाइट्रोजन आदि तत्वों में विभिन्न अनुपात में प्रमुखता से पाये जाते हैं। ये पौधों की वृद्धि तथा विकास में सहायक होते है।

..णों –

मृदा में पाये जाने वाले तत्व

क्रम सं.	तत्व का नाम	प्रतीक	मृदा में प्रनुपात %	क्रम. सं.	तत्व का नाम	प्रतीक	मृदा में प्रनुपात C ./·
1.	ग्राक्सीजन	O	4?·29	10	कार्बन	Ca	0·22
2.	सिलिकान	Si	27 20	11	हाइड्रोजन	H	0 21
3.	ऐलिमिनयम	Al	7 81	12.	फास्फोरस	P	0·10
4.	लोहा	Fe	5·46	13	मैगनीज	Mn	0·08
5.	कैल्सियम	Ca	3·77	14.	गंधक	S	0·03
6.	मैग्नीशियम	Mg	2·68	15.	बेरियम	Ba	0·03
7.	पोटेशियम	K	2·40	16.	फ्लोरीन	F	0·02
8.	सोडियम	Na	2·36	17.	क्लोरीन	Cl	0·01
9.	टिटेनियम	Ti	0·33			योग	100·00

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. चट्टानें कितने प्रकार की होती हैं ? इनके निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन करिए ?
2. मृदा में खनिज चट्टानों से मूलरूप से प्राप्त होते है ? इस कथन की विवेचना कीजिए ?
3. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—
   (अ) क्वार्टजाइट
   (ब) पेड़ पौधों से निर्मित चट्टान
   (स) मौलिक खनिज

9. मृदा का निर्माण
(Soil Formation)

मृदा चट्टानों के टूटने-फूटने एवं जैविक पदार्थों के सड़ने-गलने से बनी है। पृथ्वी की सतह पर अनेकों शक्तियाँ कार्य कर रही हैं जिनके द्वारा प्रकृति अनेक वर्षों से मृदा निर्माण में कार्यरत है।

पृथ्वी पर मिलने वाले पदार्थ दो प्रकार के होते हैं—

(1) खनिज पदार्थ (2) जीवांश पदार्थ

खनिज पदार्थों के समूह को चट्टानें (Rocks) कहते हैं जिनके टूटकर बारीक होने तथा जीवांश पदार्थों के मिलने पर भूमि का निर्माण होता है।

विभिन्न चट्टानों की टूट-फूट (शैल अपक्षय) अनेक शक्तियों द्वारा होती है जिनके द्वारा प्रकृति अनेक वर्षों से मृदा-निर्माण में कार्यरत है। वह प्राकृतिक क्रिया जिनके फलस्वरूप चट्टानें टूटती हैं, अपक्षयण (Weathering) कहलाती है, इसमें विभिन्न शक्तियाँ (Agencies) काम कर रही हैं।

चट्टानों को तोड़-फोड़ कर मृदा में परिवर्तित करने में निम्नलिखित तीन शक्तियाँ सतत् प्रयत्नशील हैं—

(अ) भौतिक शक्तियाँ (ब) रासायनिक शक्तियाँ एवं (स) जैविक शक्तियाँ।

(अ) भौतिक शक्तियाँ (Physical Agencies) — भौतिक शक्तियाँ चट्टानों के विघटन और टूट-फूट पर सीधा प्रभाव डालती हैं। इनमें ताप और जल सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

1. जल —वर्षा का जल जब भूमि पर पड़ता है तो ऊपरी पर्त को बुरी तरह पीट डालता है जिससे ऊपर की चट्टानें टूट जाती हैं और यही इनको दूसरे स्थान पर बहा ले जाता है। जल तीन प्रकार से प्रभाव डालता है—

(क) बहता जल चट्टानों को काटता है—जब जल के साथ बहने वाले छोटे-छोटे पत्थरों के टुकड़े आपस में टकराते हैं तो वे टूटते हैं। जल के नीचे की चट्टानें इन टुकड़ों की रगड़ तथा जल के बहाव से टूटती-फूटती रहती हैं।

(ख) बहता जल चट्टानों तथा पत्थरों के टुकड़ों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर बहा ले जाता है—जल चट्टानों को तोड़ता ही नहीं है बल्कि टूटे हुये

टुकड़ों को बहा ले जाता है। जैसे-जैसे जल की गति कम होती है तो पहिले भारी फिर छोटे टुकड़े तथा बाद में बारीक बालू इकट्ठी हो जाती है।

(ग) बहता हुआ जल किनारों को एक ओर काटकर दूसरी ओर जमा कर देता है—इससे भूमि में कटाव होता है। तेज बहता जल भूमि पर चट्टानों के कणों को बहा ले जाता है तथा दूसरे किनारों पर इकट्ठा कर देता है।

2. बर्फ—यह सिद्ध है कि बर्फ का आयतन उस जल के आयतन से अधिक होता है जिससे बर्फ बनी है। आयतन की यह वृद्धि दस प्रतिशत होती है। वर्षा का जल पहाड़ों तथा भूमि की दरारों में भर जाता है जो ठण्डक पाकर जम जाता है। इसके जमकर फैलने के कारण चट्टानों की दरारें बढ़कर टूटती रहती हैं।

3. ग्लेशियर—सर्दी के मौसम में पर्वतों पर बर्फ जमती है जो गर्मी पाकर पिघलकर नीचे खिसकती है जिससे पहाड़ों पर बर्फ की नदियाँ बहने लगती है जिनके बोझ, रगड़ एवं बहाव के वेग से चट्टानें लुढ़क जाती हैं जिससे चट्टानें टूटती फूटती रहती हैं।

4. वायु—जल की अपेक्षा वायु का प्रभाव न्यून होता है। तेज हवायें चट्टानों आदि पर लगे वृक्षों आदि को उखाड़कर अपने स्थान से हटा देती हैं। वायु के साथ उड़ते कण चट्टानों के ऊपरी धरातल को रेगमाल की भांति खुरचती रहती है। शुष्क स्थानों तथा रेगिस्तानों में वायु का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। जहाँ टीले के टीले एक स्थान से उड़कर दूसरे स्थान पर पहुँच जाते हैं। इस प्रकार बड़े कण टूटकर बारीक हो जाते हैं।

5. तापमान—ऐसे स्थानों में जहाँ ताप के उतार-चढ़ाव में काफी अन्तर होता है वहाँ इसका प्रभाव सर्वाधिक पड़ता है। दिन में ताप अधिक होने से चट्टानों के खनिज पदार्थ बढ़ते हैं और रात को कम होने पर यही खनिज पदार्थ सिकुड जाते हैं। इस प्रकार बार-बार फैलने और सिकुड़ने से चट्टानें टूट-फूट जाती हैं। सभी खनिज पदार्थ गर्मी पाकर एक से नहीं बढ़ते हैं परन्तु प्रत्येक की वृद्धि में अन्तर होने के कारण चट्टानों के टूटने पर दरारें बन जाती है जिनमें पानी भरने और बर्फ जमने से चट्टानों की टूटने की क्रिया चलती रहती है।

6. ज्वालामुखी और भूचाल – भू-गर्भ के अन्दर इतना अधिक ताप है कि जल उबलने लगता है। इसी गर्मी के कारण पृथ्वी की सामान्य स्थिति में अन्तर होता है तो ज्वालामुखी के रूप में विस्फोटक होने पर बहुत सी चट्टानों को तोड़ डालता है और गर्म लावा इन विस्फोटों के साथ बाहर आकर भूमि निर्माण में सहायक होता है।

इसी प्रकार भूचाल आने पर पृथ्वी तल हिल जाता है जिससे बड़े-बड़े पर्वत, चट्टानों में अधिक टूट-फूट होती है।

(ब) रासायनिक शक्तियाँ (Chemical Agencies)—इनसे भूमि में बहुत से रासायनिक परिवर्तन होते हैं जिनका प्रभाव चट्टानों के खनिज तत्वों पर पड़ता है जिनकी ये बनी होती हैं। प्रमुख रासायनिक साधन निम्न हैं—

1. आक्सीकरण (Oxidation)—इसमें चट्टानों के विभिन्न खनिजों में आक्सीजन की बढ़ोत्तरी होती है। वायुमण्डल में 21%. आक्सीजन होती है। यह क्रिया नमी की स्थिति में अधिक तेजी से होती है। खनिजों के ऑक्साइड बनने (जंग लगने) से ये कमजोर हो जाती हैं जिससे वे टूट जाती हैं। इसका लोहा अच्छा उदाहरण है।

$2FeS_2 + 7O_2 + 4H_2O \rightarrow FeO + 4H_2SO_4$
(फेरससल्फाइड) (फेरस आक्साइड)

$4\ FeO + O_2 \rightarrow 2Fe_2\ O_3$ फैरिक ऑक्साइड (हिमाटाइट)
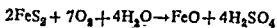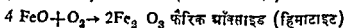
2. अपचयन (Reduction)—इस क्रिया में आक्सीजन हटती है। जल की बहुलता की स्थिति में जैसे-बाढ़ जल से संतृप्त भूमि क्षेत्र में आक्सीजन की काफी कमी हो जाती है जिससे तत्वों से आक्सीजन का ह्रास होकर ये चट्टानों को कमजोर बनाती है।

$2\ Fe_2O_3 \rightarrow O_2 + 4\ FeO$
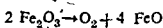
3. जल-योजन (Hydration)—मृदा खनिजों से जल के संयुक्त होने को जलयोजन कहते हैं। जलयोजन से खनिजो के आकार में वृद्धि होती है और वे टूट जाते हैं। जल मे रासायनिक यौगिकों के मिलने से चट्टानों पर परिवर्तन होता है। फेल्सपार, एम्फीबोल, अभ्रक, पाइरोक्सीन इनके विशेष उदाहरण हैं।

$2\ Fe_2O_3 + 3\ H_2O \rightarrow 2F_2O_3H_2O$

(हीमाटाइट लाल) (लिमोनाइट पीला)

$2FeO + 3H_2O + 2O_2 \rightarrow 2Fe_2O_3 + 3H_2O$
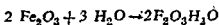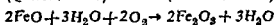
यह अभिक्रिया नम प्रदेशो में शुष्क प्रदेशों की अपेक्षा अधिक होती है। शुष्क परिस्थिति में जलयोजन का विपरीत प्रक्रम (निर्जलीकरण) भी हो सकता है।

4. जल-अपघटन (Hydrolysis)—रासायनिक अपघटन में जल की उपस्थिति महत्वपूर्ण है। शुद्ध जल में अपघटन शक्ति कार्बन डाई ऑक्साइड, अम्ल तथा क्षारों के कारण बढ़ जाती है।

जल अपघटन एक दोहरी प्रक्रिया है जिसमें प्रायः एक प्रकार का हाइड्रॉक्साइड होता है। इस प्रकार सिलिकेट खनिजों पर एक तनु अम्ल की क्रिया करते हैं।

$KAlSi_3O_8 + H_2O \rightarrow HAl\ Si_3O_3 + KOH$

ग्रार्थोक्लेज सिलिकेट ग्रम्ल
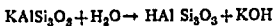
5. कार्बनीकरण (Carbonation)—वायुमण्डल में केवल 0·03% CO_2 होती है जबकि वर्षा के जल में 0·45% CO_2 होती है। यह जल से संयोजन करके कार्बनिकाम्ल बनाती है जो चट्टानों को घुलनशील बनाकर इनको कमजोर बनाता है। चट्टानों के ग्रपक्षय से प्राप्त क्षारों का CO_2 के संयोजन से कार्बोनेट्स तथा बाई कार्बोनेट्स बनने की क्रिया कार्बनीकरण कहलाती है।

$CaCO_3 + H_2CO_3 \rightarrow Ca\ (HCO_3)_2$
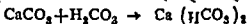
कैलसाइट कार्बनिकग्रम्ल कैलसियम बाई कार्बोनेट

(हल्का घुलनशील) (शीघ्र घुलनशील)

6. घोल (Solution)—जल एक सर्व विलायक है इसमें CO_2 तथा गंधक के ग्राक्सीकरण से प्राप्त गंधकाम्ल की उपस्थिति से जल की विलेयता ग्रत्यधिक बढ़ जाती है। सभी खनिजों पर इसकी विलेयता का प्रभाव पड़ता है। खनिजों के घुलने से ये नष्ट होते हैं।

(ख) जैविक शक्तियाँ (Biological Agencies)—

चट्टानों के तोडने में जैविक साधन-जीवाणु, वनस्पति, जीव-जन्तु, ग्रन्य जीवांश ग्रादि हैं।

1. जीवाणु (Bacteria)—ये जीवाणु सूक्ष्म जीव होते हैं जो सड़ाव की क्रिया करते हैं जिससे कार्बनिक ग्रम्ल बनते हैं ग्रौर चट्टानों की दरारों तथा चट्टानों पर सड़ने की क्रिया से ये कमजोर होकर टूटने लगती है।

2. वनस्पतियाँ (Vegetation)—पेड़-पौधों तथा वनस्पतियों की जड़ों से एक तेज द्रव निकलता है जो चट्टानों व भूमि को गलाकर इनमें जड़ों को प्रवेश कराते हैं। पेड़-पौधों के मरने से ये भूमि में सड़ने लगते हैं, ग्रौर सड़-गलकर भूमि में जीवांश बढ़ाते हैं जिससे चट्टानें कमजोर हो जाती हैं।

3. जीव जन्तु—चट्टानों को तोडने-फोड़ने में मनुष्य व पशु पीछे नहीं हैं। मनुष्य ने भूमि को खोदकर खेती की। मकान तथा ग्रन्य कार्यों जैसे—खान खोदना, पहाड़ों पर रास्ते व सुरंग बनाने के लिए नित्य प्रति चट्टानें तोड़ता रहता है। पशु, कीट समुदाय, गीदड़, केचुएँ, दीमक, चूहे ग्रादि भूमि को खोदकर चट्टानों को तोड़ते रहते हैं।

4. ग्रन्य-जीवांश—ग्रन्य जीवांशक तत्व जैसे मरे जन्तु, सड़ी वनस्पतियाँ, कूड़ा-करकट मृत मानव शरीर तथा कीट समुदाय के सड़ने-गलने से चट्टानें कमजोर बनती रहती हैं।

इन साधनों का कोई एकाकी रूप चट्टानों को नहीं तोड़ता है ग्रौर न ही

इनके प्रभावों को एक दूसरे से अलग किया जा सकता है। सभी साधन सामूहिक रूप में ही चट्टानों को तोड़ने का कार्य करते हैं।

चट्टानों की यह टूटने-फूटने की तथा छीजन की क्रिया अनवरत् चलती रहती है और निरंतर चट्टानें टूट-फूटकर मिट्टी मे परिणत होती रहती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. चट्टानों में मृदा निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन करिये।
2. मृदा निर्माण के पाँच कारक बताइए, इनका पारस्परिक क्या सम्बन्ध है ?
3. रासायनिक शक्तियाँ मिट्टी के निर्माण में किस प्रकार सहायक होती हैं ? आवश्यक समीकरण देते हुए वर्णन करिये ?

---

10. मृदा एवं पदार्थ

(Soil and Soil Matter)

मृदा—मृदा और भूमि समानार्थी शब्द हैं।

विभिन्न विद्वानों ने मृदा की परिभाषा विभिन्न प्रकार दी है। उनके विचारों का सारांश निम्न प्रकार से है –

कृषकों की दृष्टि से—भूमि माध्यम है जिसमें फसलें उग सकती हैं।

'भू-वैज्ञानिकों की दृष्टि से—'चट्टान ही मृदा है और मृदा ही चट्टान है।'

भू-पटल (पृथ्वी की पपड़ी) का वह भाग जो कि भूमि निर्माणकारी क्रियाओं के फलस्वरूप निर्मित होकर बना है।'

'पृथ्वी के धरातल पर कार्बनिक और खनिज पदार्थों से निर्मित एक प्राकृतिक पदार्थ जिसमें पौधे उगते हैं।'

'मृदा वह प्राकृतिक पदार्थ है जो खनिजों के टूटने-फूटने और कार्बनिक पदार्थों के सड़ने गलने से बना है और जो एक पतली तह में पृथ्वी को ढके हुए है तथा पौधों को जल और भोजन प्रदान करता है।'

मृदा की इन परिभाषाओं के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि पृथ्वी के धरातल की ऊपरी परत को, जिसमे फसलें उगाई जाती हैं, मृदा कहलाती है। यह चट्टानों के कणों का समूह है जो विविध भौतिक, रासायनिक तथा जैविक शक्तियों द्वारा प्रभावित होकर पृथ्वी के ठोस भाग को ढके हुए हैं।

मृदा के पदार्थ –मोटे तौर पर मृदा में चार पदार्थ पाये जाते हैं—

(1) खनिज पदार्थ (3) जल

(2) जैव पदार्थ (4) वायु

1. खनिज पदार्थ (Mineral Matter)—ये विभिन्न चट्टानों के टूटने-फूटने से बनते हैं। इनमें फेल्सपार 60%, अभ्रक 7%, क्वार्ट्ज 12%, हार्नब्लैण्ड 17% तथा सिलिकेट लगभग 4% होता है जो सम्पूर्ण खनिजों का 75% भाग होता है।

मृदा का ठोस अंश अधिकांश खनिजों से बना होता है। इन खनिजों में अनेकों तत्व होते हैं जो पितृ चट्टानों से प्राप्त होते हैं।
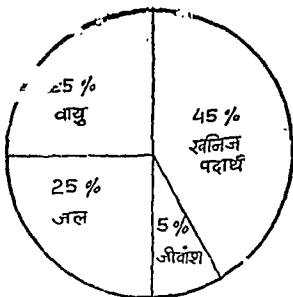
मृदा के पदार्थ

2. जीवांश (Organic Matter)—पौधों तथा जन्तुओं का अंश जो सड़-गलकर मृदा की उर्वरता बढाता है तथा पौधों को भोजन तत्व प्रदान करता है, जीवांश कहलाता है। इनका लगभग 5% भाग होता है।

हर मृदा में जीवांश की मात्रा समान नहीं होती है। पीट मृदा म जीवांश अधिक होता है, जबकि बलुई मृदा में इनकी मात्रा कम होती है।

3 जल (Water)—मृदा कणों के बीच रन्ध्राकाशों में जल प्रवेश करके वायु को हटाकर स्थान ग्रहण कर लेता है, यह मृदा के सम्पूर्ण आयतन का लगभग 25% होता है। इसमें विभिन्न खनिज तत्व तथा गैसें घुली होती है जो पौधों के भोजन के काम में आते हैं।

4. वायु (Air)—मृदा में वायु का अंश मृदा के सम्पूर्ण आयतन का लगभग 25% होता है। मृदा-कणों के मध्य जल या वायु भरी होती है। रन्ध्रों में नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बन डाइआक्साइड आदि गैसें होती हैं जिनको पौधे तथा मृदा में पाये जाने वाले जीवाणु उपयोग करते हैं जो पौधों की संरचना, विभिन्न क्रियाओं के अतिरिक्त मृदा-निर्माण मे सहायता करते है।

सभी मृदाओं में इन तत्वों का अनुपात का एक समान नही होता है। किसी मृदा में खनिज का अंश अधिक तो किसी में जीवांश अधिक होता है। वायु तथा जल की मात्रा में परिवर्तन शीघ्रता से होता है। जल संतृप्त मृदा में रन्ध्रों के जल से भरे रहने से वायु का अंश कम होता है, जबकि मृदा के सूखने पर जल की मात्रा कम तथा वायु अधिक हो जाती है।

भूमि-पार्श्व (Soil Profile)

भूमि के ऊपरी धरातल से लेकर नीचे तक स्थित अनुत्क्षरित पदार्थ (Unweathered material) तक भूमि की उर्ध्वकाट, भूमि-पार्श्व कहलाती है। अधिकांश भूमि के पार्श्व में निम्नलिखित दो या दो से अधिक पर्तें या स्तर पाये जाते हैं जो सभी भूमियों से नहीं मिलते हैं।

1. शीर्ष मृदा स्तर (Top Soil Zone)—यह मृदा का ऊपरी स्तर है जिसमें पेड़-पौधों की पत्तियाँ, तने तथा जड़ें एकत्रित रहती हैं। इस पर्त की मोटाई विभिन्न भूमियों में 2·5 सेमी से लेकर 50 सेमी तक होती है। कृषि के उत्पादन की दृष्टि से भूमि का शीर्ष स्तर अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इसी को हम सामान्यतया भूमि कहते हैं।
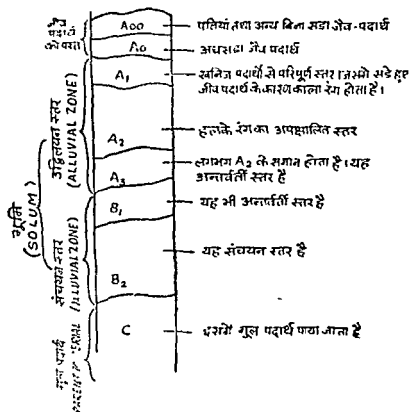
चित्र—भूमि पार्श्व

2. उपमृदा स्तर (Sub Soil Zone)—यह संचयन स्तर कहलाता है। इस स्तर में शीर्ष मृदा से अपक्षालित पदार्थ संचित होते हैं। प्रायः इसमें जीवांश पदार्थ का अभाव रहता है।

3. मूल पदार्थ स्तर (Parent Material Zone)—यह स्तर संचयन स्त के नीचे पाया जाता है। मृदा-निर्माण के मूल पदार्थ पाये जाते हैं। जीवांश पदा का पूर्णतया अभाव होने से कृषि में इसका कोई महत्व नहीं है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मृदा की परिभाषा दो तथा मृदा किन पदार्थों से बनी है ?
2. अधो-मृदा किस प्रकार शीर्ष मृदा से भिन्न है, क्यों ?
3. टिप्पणी लिखो—

   (अ) संचयन स्तर
   (ब) जैव पदार्थ

11. मृदा के भौतिक गुण
(Physical Propreties of Soil)

मृदा के भौतिक गुणों का वैज्ञानिक अध्ययन सर्वप्रथम जर्मन वैज्ञानिक शूल्लर ने सन् 1838 में किया था। किंग (1889-1895) तथा बुलनी और हिलगर्ड (1916) ने भौतिक गुणों के आधार पर मृदा शास्त्र का एक नया अध्याय आरम्भ किया।

मृदा के भौतिक गुणों का फसल उत्पादन क्षमता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। मृदा भौतिक शास्त्र के अनुसार मृदा के मुख्य गुणों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है—

1. मृदा गठन
2. मृदा संरचना
3. रन्ध्राकाश
4. मृदा जल
5. मृदा वायु
6. मृदा ताप
7. मृदा-उर्वरता

1. मृदा गठन (SOIL TEXTURE)

मृदा छोटे-छोटे कणों से बनी है। ये कण एक आकार के न होकर छोटे-बड़े होते हैं। भूमि कणों का आकार ही, मृदा गठन कहलाता है।

मृदा कणों को उनके आकार, के अनुसार कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। इस विभाजन में मृदा कणो के रंग, भार आदि का ध्यान नही रखा जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि विशेषज्ञो ने मृदा कणो का वर्गीकरण अग्रांकित प्रकार से किया है—

क्र. सं.	मृदा कणों का समूह	कणों का व्यास (मिमी)	एक ग्राम में कणों की संख्या
1.	महीन बजरी (Fine Gravel)	2 00–1.00	90
2.	मोटी बजरी (Wase Sand)	1.00–0.50	722
3.	औसत बालू (Medium Sand)	0.50–0.25	5,777
4.	महीन बालू (Fine Sand)	0.25–0.10	46,123
5.	अति महीन बालू (Very fine Sand)	0.10–0.05	7,22,074
6.	साद (Silt)	0.05–0.002	57,76,674
7.	चिकनी मिट्टी (Silt)	0.002 से छोटे	902,60,83,3800

अन्तर्राष्ट्रीय भू-विज्ञान परिषद के अनुसार मृदा कणों का वर्गीकरण —

क्र. सं.	मृदा कणों का समूह	कणों का व्यास (मिमी)
1.	बजरी (Gravel)	2.00 से अधिक
2.	मोटी बालू (Coarse Sand)	2.00–0.20 तक
3.	महीन बालू (Fine Sand)	0.20–0.02 तक
4.	सिल्ट (Silt)	0.02–002 तक
5.	चिकनी मिट्टी (Clay)	0 002 से छोटे

यह वर्गीकरण समझने मे सुगम होने से सर्वाधिक मान्य है।

किसी मृदा में उपस्थित इन कणों की प्रतिशत मात्रा के आधार पर उस मिट्टी का नामकरण करते हैं।

मिट्टी का नाम	चिकनी मिट्टी%	सिल्ट%	बालू%	अन्य%
बलुई दोमट	12	21	63	4
दोमट	16	40	42	2
सिल्ट दोमट	15	65	19	1
भारी दोमट	26	38	35	1

मृदा गठन वर्ग से उसके बहुत से गुणों का पता चलता है जिनका भूमि की उत्पादकता और उसके प्रबन्ध पर प्रभाव पड़ता है। रेतीली मृदाओं मे जल निकास

तथा वातन (Aeration) अच्छा होता है और कर्षण क्रियाओं में आसानी रहती है जबकि चिकनी तथा सिल्ट मृदा में नमी तथा पोषक तत्वों की धारण क्षमता अधिक होती है और जुताई में कठिनाई होती है।

मृदा गठन के उत्तम होने पर चिकनी तथा रेत मिट्टी के कणों का उचित अनुपात रहता है जिससे भूमि में पौधों की जड़ें आसानी से प्रवेश कर अच्छी तरह फैलकर पौधे को मजबूती से खड़ा रखती हैं और पौधों को अधिक नमी तथा पोषक तत्व मिलते हैं। चिकनी तथा सिल्ट मृदाओं में पौधों की जड़ों को भूमि में प्रवेश में काफी ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है जिससे मूल तंत्र तो मजबूत हो जाता है पर पौधे के कमजोर रहने से मामूली हवा के झोंके से ही गिर जाता है।

मृदा गठन का महत्व—भूमि की उर्वरता की दृष्टि से इसका अधिक महत्व है साथ ही अन्य भौतिक गुणों को प्रभावित करता है।

1. मृदा-गठन के आधार पर मृदाओं का वर्गीकरण किया जा सकता है।

2. मृदा की जल धारण क्षमता पर मृदा-गठन का अधिक प्रभाव पड़ता है। बलुई मिट्टी में जल आसानी से अवशोषित होकर नीचे चला जाता है और पौधों के उपयोग में नहीं आता है। चिकनी तथा सिल्ट मिट्टी में पृष्ठीय क्षेत्रफल अधिक होने से नमी धारण क्षमता अधिक होती है।

3. भारी तथा चिकनी मिट्टी में हल्की तथा बलुई मृदाओं की अपेक्षा अच्छा वातन नहीं होता है क्योंकि इनके कण बारीक होने से कणों के बीच रन्ध्राकाश कम रहता है जिससे वायु का आवागमन अच्छा नहीं होता है।

4. मृदा गठन का उर्वरता पर प्रभाव पड़ता है। बलुई मिट्टी में पोषक तत्व जल में घुलकर निचली तहों में चले जाने से पौधों को नहीं मिल पाते हैं, जबकि चिकनी मिट्टी में पोषक तत्वों का अधिशोषण तथा धारण करने की क्षमता अधिक होती है।

5. बलुई मिट्टी में भुरभुरापन अधिक और सुघट्यता (Plasticity) तथा संलाग (Cohesion) का अभाव होता है जिसके कारण भीगी दशा में मिट्टी के कण बिखरे होते हैं, वैसे तौल में बलुई मिट्टी चिकनी मिट्टी की अपेक्षा भारी होती है।

6. बालू प्रधान मिट्टियों में जुताई आदि कार्यों में सुविधा रहती है, जबकि चिकनी मिट्टी में जुताई करने पर बैलों पर अधिक खिंचाव पड़ता है।

7. भूमि के कणों के समूह के आकार तथा उसमें जीवांश पदार्थों की उपस्थिति से भूमि में वायु तथा जल का संचालन एवं जीवाणुओं की सक्रियता प्रभावित होती है।

अतः यह स्पष्ट है कि कृषि भूमि के लिए उनका गठन अत्यन्त महत्वपूर्ण है और अच्छे गठन का फसलों के उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है।

2. मृदा संरचना (Soil Structure)

मृदा कणों का विन्यास, मृदा कणों की सजावट तथा संस्थापन मृदा-संरचना के समानार्थी शब्द है।

मृदा संरचना का अर्थ मृदा के कणों का समूह की रचना से है। कभी मृदा गठन और मृदा संरचना शब्द भ्रम पैदा कर देते हैं। अतः मृदा गठन से हमारा तात्पर्य कणों के आकार तथा उनकी प्रतिशत मात्रा से है, जबकि संरचना से कणों की सामूहिक रूप की स्थिति में है।

कणों के आकार की भांति संरचना भूमि के जल, वायु, ताप आदि की मात्रा एवं इनके संचार को प्रभावित करती है। मृदा की भौतिक दशा सुधारने के लिए जुताई-गुड़ाई आदि जो भी यांत्रिक कार्य किये जाते हैं उनका सम्बन्ध संरचना से है गठन से नहीं है। खेत की मिट्टी को भुरभुरा या ठोस करने से कणों के संस्थापन में परिवर्तन होता है आकार में नहीं।

मिट्टी के कणों की सजावट (arrangement) चार प्रकार से संभव हैं—(1) स्तंभाकार संरचना (2) तिरछे (3) ठोस (4) दानेदार

1. **स्तंभाकार संरचना (Columnar Structure)**—इसमें मिट्टी के कण अपने पास के चार कणों को छूते हैं। इनमें रन्ध्राकाश काफी अधिक 47-64% तक होता है। ऐसी भूमि में नमी तथा वायु अधिक रहती है जिसमें जीवाणु सक्रिय रहते हैं।

2. **तिरछी संरचना (Oblique Structure)**—इसमें मृदा के कण तिरछी पंक्तियों में स्थापित होते हैं जिससे बहुत से कण पास के छः कणों को छुए होती है। इस विन्यास में 25-30% रन्ध्राकाश होता है। ऐसी भूमि कृषि के लिये विशेष अच्छी नहीं है।

3. **ठोस संरचना (Compact Structure)**—इस संस्थापन में कणों के बीच बहुत कम स्थान रहता है। बड़े कणों बीच छोटे-छोटे कण स्थान घेरते

स्तम्भाकार या स्तम्भी तिरछे ठोस दानेदार

मृदा कणों की संरचना

है—इससे रन्ध्राकाश न्यून हो जाता है और मिट्टी के अन्दर वायु तथा जल का सचार बहुत ही कम हो जाता है जिससे पौधों का विकास नहीं हो पाता है।

4. दानेदार संरचना (Granular Structure)—इसमें कण आपस में चिपककर बड़े हो जाते है। ये बड़े दाने आस-पास के दानों से स्पर्श करते हैं जिससे रन्ध्राकाश 72% तक बढ़ जाता है। ऐसी रचना फसल उगाने के लिए बहुत उपयुक्त है।

मृदा कणों की संरचना का महत्व—

1. फसलों की अच्छी वृद्धि संरचना पर निर्भर है।

2. मृदा संरचना अच्छी होने पर रन्ध्राकाश की मात्रा अधिक होती है।

3. वायु का आवागमन बढ़ जाने से जड़ों की वृद्धि अच्छी होती है और जीवाणुओं की सक्रियता बढ़ जाती है।

4. भूमि की जल शोषण तथा धारण क्षमता बढ़ जाती है।

5. भूमि का तापक्रम उचित रहता है जिससे बीजों के अंकुरण से लेकर कटाई तक की सभी क्रियायें अच्छी सम्पन्न होती हैं।

6. पोषक तत्व उचित मात्रा में मिलने से पौधों का विकास अच्छा होता है।

7. फसलों से अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।

मृदा संरचना को उचित बनाने के उपाय—ठोस या सघन सरचना पौधों की वृद्धि के लिए अच्छी नहीं होती है। इसे निम्न प्रकार से ठीक किया जा सकता है—

1. जल निकास प्रबन्ध;
2. जीवांश पदार्थों को देकर;
3. उपयुक्त समय पर भू-कर्षण क्रियायें करके;
4. भूमि सुधारक तत्व (चूना, जिप्सम) मिलाकर;
5. उचित शस्यावर्तन अपना कर।

3 रन्ध्राकाश (PORE SPACE)

मृदा कणों के बीच छिद्राकाश या रिक्त स्थान को रन्ध्राकाश (Porespace) कहते हैं। मृदा विभिन्न प्रकार के कणों से बनी है। इन कणों को चाहे कितना ही दबाकर सघन कर दिया जाये फिर भी इनके बीच कुछ न कुछ स्थान अवश्य ही रहता है। यही रिक्त स्थान, रन्ध्राकाश है।

रिक्त छिद्र वायु, जल या लाभदायक जीवाणुओं से परिपूर्ण होते है। जिस भूमि मे रिक्त छिद्र अधिक होते हैं उसमें वायु और जल अधिक पाया जाता है किन्तु बलुई भूमि, जो बड़े कणो से बनी है, रिक्त छिद्रो की संख्या अधिक होने पर जल बिल्कुल नहीं पाया जाता है क्योंकि बारीक कणों के कम होने से 'जलधारण शक्ति कम होती है। जैसे ही जल आता है वैसे ही नीचे की ओर बह जाता है। जबकि

मटियार भूमि में कणों के अत्यन्त छोटे होने पर रिक्त छिद्रों की संख्या तो अधिक होती हैं परन्तु सम्पूर्ण आयतन कम होता है जिससे जल देर तक धारण रखती है। ऐसी भूमि में वायु तथा जल का आवागमन सुचारु रूप से नहीं हो पाता है।

कणों के आधार पर सम्पूर्ण रन्ध्राकाश का सम्बन्ध

क्र० सं०	मृदा की किस्म	रन्ध्राकाश%
1.	बलुई	30
2.	हल्की दोमट	35
3.	मध्यम दोमट	40
4.	भारी दोमट	45-50
5.	चिकनी	50-66

भूमि मे दो प्रकार के रन्ध्राकाश पाये जाते हैं—

1. वातन रन्ध्र (Aeration or Macropores)
2. कोशिका रन्ध्र (Capillary or Micropores)

अच्छे जल निकास वाली नम भूमि के बड़े-बड़े रन्ध्राकाशो मे सामान्यतया वायु भरी रहती है, इनको वातन रन्ध्र कहते हैं।

छोटे-छोटे रन्ध्र जिनमे जल भरा रहता है कोशिका रन्ध्र कहलाते हैं। अधिक छोटे रन्ध्रों के कारण जल सचार मे बाधा होती है।

दानेदार कणों से सरचित मृदा में रिक्त छिद्रों की संख्या अधिक होती हैं, जबकि अन्य क्रमों में ऐसा नही होता हैं। इसके लिये चिकनी मिट्टी में बलुई मिट्टी और बलुई मिट्टी में चिकनी मिट्टी डाली जाती हैं, साथ ही जीवांश खादें तथा चूने के प्रयोग एवं समय से जुताई अधिक लाभप्रद रहती है।

मिट्टी को भुरभुरा तथा ठोस करने से रन्ध्राकाश घटता-बढ़ता रहता है अतः कणों की संरचना में परिवर्तन करने का मुख्य उद्देश्य मृदा में रन्ध्राकाश को कम या अधिक करना होता है।

रन्ध्राकाश का महत्व—1 पौधों के मूल रोम रन्ध्राकाश के जल मे घुले पोषक तत्वों को रसाकर्षण क्रिया द्वारा ग्रहण करते हैं।

2. जड़ों की श्वसन के लिये वातन रन्ध्रों से वायु मिलना है।

3. उपयोगी शुक्राणुओं को रन्ध्राकाश के जल तथा वायु को ग्रहण करके वायु मण्डल की नाइट्रोजन की पौधों के उपयोग के लिये भूमि में सस्थापित करते हैं।

4. भूमि को ताप रन्ध्राकाश द्वारा मिलता है जो पौधों तथा सूक्ष्माणुओं के लिए आवश्यक है।

5. रन्ध्राकाशों के कारण भूमि में भुरभुरापन रहता है और जड़ें अधिक वृद्धि करती हैं।

4. मृदा जल (SOIL WATER)

मृदा-जल का कृषि में विशेष महत्व है। यह चट्टानों को तोड़-फोड़कर, बारीक कर, बहाकर मृदा का निर्माण करते हैं। यह बीज के अंकुरण से लेकर फूलने-फलने तक की सभी क्रियाओं में सहयोग देता है। जल की अनुपस्थिति में पौधे जीवित नहीं रह पाते हैं।

मृदा कणों के रन्ध्राकाशों के बीच जल की कुछ न कुछ मात्रा होती है जिसे पौधे ग्रहण करके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

पौधों के लिए जल महत्ता—1. पौधों का लगभग 90% भाग जल का बना होता है। अतः जल पौधों के लिए एक प्रकार का भोजन है जो पौधों का अंग बन जाता है।

2. पौधों के पोषक तत्वों को घोलने तथा वाहन का कार्य जल करता है। यह भूमि में उपस्थित विभिन्न पदार्थों को अपने में घोलकर पौधों के विभिन्न भागों में पहुँचाता है।

3. जल पौधों की कोशिकाओं को तना हुआ (Turgidity) रखता है और इनके ताप को नियंत्रित रखता है।

4. पौधों के हरे भागों में जल प्रकाश की उपस्थिति में कार्बनडाइ ऑक्साइड के साथ मिलकर प्रकाश-संश्लेषण के द्वारा भोजन का निर्माण करते हैं।

5. यह वाष्पोत्सर्जन तथा वाष्पीकरण क्रिया के लिए आवश्यक है।

मृदा जल के रूप—मृदा जल निम्नलिखित चार रूपों में पाया जाता है—

1. अविलगीय या आर्द्रताग्राही जल
2. केशिकीय जल
3. गुरुत्वीय या स्वतंत्र जल
4. संयुक्त जल

1. **अविलगीय या आर्द्रताग्राही जल (Hygroscopic Water)**—यह वह जल है जिसे शुष्क मृदा वायुमण्डल की जल वाष्प से शोषित कर लेती है। बहुत ध्यान से देखने पर कणों के वाह्य पृष्ठतल पर एक अत्यंत पतली झिल्ली के रूप में दिखाई देती है जिसे आसानी से स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता है और न ही

अलग कर सकते हैं। इसे पौधों के उपयोग में नहीं ला सकते हैं, अतः इसका सिंचाई जल निकास, मृदा अपरदन में कोई महत्व नहीं होता है।

2. केशिकीय जल (Capillary Water)— आर्द्रताग्राही जल के ऊपर कणों के चारों ओर झिल्ली के रूप में यह उपस्थित रहता है। मृदा रन्ध्राकाश में जल आने पर इसकी मोटाई बढ़ती जाती है। अन्त कणों का जल मिलकर सभी स्थानों में टेढ़ी-मेढ़ी केशीय नालियाँ बना लेता है। यह जल पौधों के उपयोग में आता है।

केशिकीय जल की पतली तह मिट्टी के भीतर कणों के बीच बनी नालियों में रहता है जो कणों के पृष्ठ तनाव में स्थिर या चलायमान होता है जिससे ये दूसरे भाग में चलायमान न होकर पौधों को भोजन पहुंचाने तथा कृषि कार्यों को प्रभावित करता है।
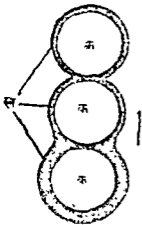
मिट्टी के कणों का पृष्ठतनाव (Surface Tension) तथा पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण दोनों ही जल को आकर्षित करते हैं। पृथ्वी का आकर्षण अधिक होने पर जल स्वतन्त्र रूप से नीचे बह जाता है परन्तु पृष्ठ तनाव अधिक होने पर जल केशिकीय जल का रूप धारण कर लेता है। जो दीपक की बत्ती में तेल की भांति चढ़ता है। ऊपरी सतह से जल वाष्प बन जाने से जल निचली तहों से केशिकीय क्रिया द्वारा ऊपर पहुँचता है।

केशिकीय जल को भूमि का लाभदायक जल कहते हैं क्योंकि यह पौधों का भोजन मिट्टी से शोषित करके पौधों के अन्य भागों को पहुँचाता है। यह पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के विपरीत किसी भी दिशा में ऊपर की ओर बढ़ता है। इस जल को निकास द्वारा नहीं हटा सकते हैं बल्कि वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन तथा उष्मा से हट जाता है। केशिकीय जल का 2/3 भाग ही पौधों को उपलब्ध होता है। जल की कमी होने पर सिंचाई करके पूर्ति की जाती है।

3. गुरुत्वीय या स्वतन्त्र जल (Gravitational or Free Water)— वर्षा होने पर जल की कुछ मात्रा मृदा कणों द्वारा ग्रहण कर ली जाती है तथा रन्ध्राकाशों

के भरने पर जल ऊपरी सतहों पर बहने लगता है जो पृथ्वी की सतह से निचली तहों में चला जाता है जो पृथ्वी के आकर्षण से बहता है, इसे गुरुत्वाकर्षण बल कहते हैं।

भूमि में इस जल की मात्रा बढ़ने पर रन्ध्राकाश पूरे भर जाते हैं जिससे वायु का अभाव हो जाता है तो पौधों की जड़ें सड़ने लगती हैं तथा सहयोगी जीवाणु भी सक्रिय नहीं रहते हैं।

इस जल की मात्रा मृदा किस्म पर निर्भर करती है। कंकरीली तथा रेतीली भूमि के कण बड़े होने से यह निचली तहों में एकत्रित हो जाता है जो भू-गर्भ जल होता है जिसको कुयें बनाकर विभिन्न यंत्रों द्वारा उठाकर सिंचाई के काम में लाते हैं। मटियार या दोमट भूमि में इस जल के निकास का प्रबन्ध करना आवश्यक होता है। यह जल स्वयं पौधों के लिये उपयोगी नहीं है।

4. संयुक्त जल (Combined Water)—यह जल मृदा रचना का अंग होता है जिससे पौधों के लिये इसका कोई महत्व नहीं होता है क्योंकि यह रासायनिक शक्तियों से कणों से चिपका रहता है। कणों को तेज ताप पर गर्म करने पर ही अलग होता है।

पौधों द्वारा जल ग्रहण करना—पौधे केशिकीय जल का उपयोग भोजन को घोल बनाने तथा इसके अवशोषण में करते हैं। इसके लिये कण के चारों ओर केशिकीय झिल्ली की मोटाई महत्वपूर्ण है।

मृदा में नमी के अनुसार झिल्ली की मोटाई घटती-बढ़ती रहती है। झिल्ली की मोटाई पौधों की जड़ों द्वारा पोषक तत्वों के घोल को ग्रहण करने की क्रिया रसाकर्षण (Osmosis) को प्रभावित करता है। झिल्ली की मोटाई घोल की सान्द्रता को प्रभावित करता है। झिल्ली की सामान्य मोटाई होने पर कणों के चारों ओर घोल पतला होगा जो मूल रोमों द्वारा शोषित कर लिया जाता है, जबकि झिल्ली के बारीक या बहुत पतली होने पर घोल की सान्द्रता अधिक, गाढ़ा होगा जिससे मूल रोमों की कोशिकाओं के अन्दर का घोल दीवारों से प्रसरण द्वारा बाहर के घोल में मिल जावेगा और पौधों के नष्ट होने की सम्भावना होगी।

अतः मृदा में उपयुक्त जल की मात्रा अत्यन्त आवश्यक है जिसकी पूर्ति आवश्यक सिंचाई करके की जा सकती है।

केशिकीय जल को प्रभावित करने वाले कारक :

(i) मृदा-कण—कणों के बारीक होने से रन्ध्राकाश अधिक होते हैं जिससे ऐसी भूमि की जल शोषण तथा धारण क्षमता अधिक होती है जो पौधों के उपयोग में आता है, जबकि बड़े कणवाली मृदा में ऐसा नहीं होता है।

(ii) मृदा-संरचना—मृदा संरचना अच्छे होने पर केशिकीय जल अधिक होता है।

(iii) पृष्ठ तनाव—भूमि का पृष्ठ-तनाव केशिकीय जल पर काफी प्रभाव डालता है। इसमें परिवर्तन होने पर केशिकीय झिल्ली की मोटाई प्रभावित होती है।

(iv) जीवांश-पदार्थ—भूमि में जैविक पदार्थ अधिक होने से मृदा जल की शोषण तथा धारण क्षमता बढ जाती है।

(v) तापमान—तापमान कम होने पर केशिकीय जल अधिक होता है। क्योंकि यह वाष्पीकरण तथा वाष्पोत्सर्जन से नष्ट नहीं होता है।

मृदा जल की प्राप्ति—भूमि को जल (1) वर्षा तथा (2) सिंचाई करने पर प्राप्त होता है।

मृदा के रन्ध्राकाश मे उपस्थित वायु को हटाकर जल स्थान ग्रहण कर लेता है जिसमे भूमि की ऊपरी सतह नम हो जाती है। रन्ध्राकाशों के जल से पूरे भरने पर जल निचली तहों में प्रवेश करके रिक्त स्थानों को भरता हुआ निचली तहों मे चला जाता है।

वर्षा तथा सिंचाई के बाद जल नीचे की ओर बहता रहता है। बड़े रन्ध्राकाशों से जल नीचे की ओर चला जाता है। परन्तु छोटे रन्ध्राकाशों मे जल भरा रहता है जो पौधों के उपयोग में आता है।

मृदा जल की हानि—भूमि से जल हानि निम्नलिखित चार कारणों से होती है—

1. भूमि की सतह से बहकर जल-हानि (Loss by Runoff)—तेज बारिस का जल भूमि द्वारा शोषित न होने से अपने साथ भूमि की ऊपरी उपजाऊ जीवांश वाली पर्तों को काटकर बहा ले जाता है। जल का बहाव भूमि की किस्म, ढाल, वर्षा की तीव्रता तथा अवधि पर निर्भर करती है। जितनी तेज वर्षा कम अवधि में होगी उतनी ही बहाव की गति अधिक होगी। इसी प्रकार लगभग 21-76% जल बहकर नष्ट होता है।

2. अंतःस्पंदन तथा रिसाव द्वारा जल हानि (Loss by Infilteration & Percolation)—भूमि की ऊपरी अत्यन्त पतली तह में होकर जल की गति को 'अंतःस्पंदन' कहते हैं। इस विधि से जल भूमि में प्रवेश करने के बाद भूमि की निचली पर्तों में से होकर निचली तहों में पहुंचने की गति को 'रिसाव' कहते हैं।

जिस जल को भूमि के रंध्राकाश रोक नहीं पाते हैं वह जल गुरुत्वाकर्षण के द्वारा भूमि की निचली तहों में जला जाता है जो पौधों की पहुंच के बाहर होता है। कुओं आदि में यही जल होता है।

3. वाष्पीकरण द्वारा जल-हानि (Loss by Evoparation)—भूमि के जल की बहुत मात्रा वाष्प बनकर वायुमण्डल में उड़ जाती है। यह क्रिया सभी मौसम में दिन रात होती रहती है। वाष्पीकरण क्रिया पर तापक्रम तथा वायु का विशेष प्रभाव पड़ता है। ग्रीष्म ऋतु में ताप अधिक होने पर वाष्पन अधिक होता है। फरवरी-मार्च में बहुधा हवायें रबी की फसलों को हानि पहुँचाती हैं जिससे भूमि की नमी के शीघ्र उड़ जाने से दाना पतला रह जाता है और पक नहीं पाता है।

4 खरपतवारों के वाष्पोत्सर्जन द्वारा जल-हानि (Loss by Transpiration through weeds)—

मृदा जल का बहुत बड़ा अंश पौधों की पत्तियों से वाष्पोत्सर्जन क्रिया द्वारा उड़ा दिया जाता है। वाष्पोत्सर्जन से पौधों में भोजन विभिन्न भागों में पहुँचने के लिए खिंचाव बना रहता है तथा वातावरण के कुप्रभाव से सुरक्षित रहते हैं। परन्तु कृषि फसलों में खरपतवारो के अधिक होने पर मृदा जल की बड़ी मात्रा का अपहरण होता है।

मृदा जल को प्रभावित करने वाले कारक :

1. वर्षा—मृदा जल को वर्षा सर्वाधिक प्रभावित करता है क्योंकि अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो की अपेक्षा कम वर्षा वाले क्षेत्रो की मिट्टी में मृदा जल की कम मात्रा उपलब्ध होती है। वर्षा से भूमि की ऊपरी सतह नम होकर निचली तहों को नम करती है। वर्षा द्वारा मृदा मे जल का संचय वर्षा की मात्रा, तीव्रता तथा अवधि पर निर्भर होता है।

धीमी वर्षा के काफी समय तक होने पर भूमि में जल अधिक शोषित होकर इकट्ठा होता है जबकि तेज बारिस का जल भूमि की ऊपरी तह तथा फसलों को भी बहाकर नष्ट कर देता है।

2. तापमान—भूमि का बहुत-सा जल वाष्प बनकर वायुमण्डल में चला जाता है। यह क्रिया हर मौसम में हर समय होती रहती है। ग्रीष्मकाल में अन्य मौसम की अपेक्षा जल की अत्यधिक मात्रा वाष्प बनकर नष्ट हो जाती है।

3. वायु—तापमान की अपेक्षा वाष्पीकरण की क्रिया पर वायु भी प्रभाव डालती है। मई की शुष्क तेज हवायें अधिक मात्रा में जल को वाष्पीकृत करती हैं जिससे शीघ्र ही फसलों में सिंचाई करनी पड़ती है।

4. भूमि—मृदा में जल की मात्रा भूमि की किस्म, तलरूप, रंग आदि पर निर्भर करती है।

(i) भूमि की किस्म—बलुई मिट्टी के कणों के आकार बड़े होने से रन्ध्रा-काश अधिक होता है जिससे जल तेजी से बाहर निचली तहों में चला जाता है

जबकि चिकनी मिट्टी के रन्ध्राकाश होने पर जल रोकने की क्षमता अधिक होती है।

(ii) भूमि का तलरूप (Topography)—समतल भूमि में जल समान-रूप में फैलकर अन्दर प्रवेश करता है, जबकि इसके विपरीत भूमि के ढालू होने पर जल तेजी से धारा के रूप में बहता ही नहीं बल्कि ऊपरी सतह को काटता हुआ, भूमि की निचली तहों में चला जाता है जो पौधों की पहुँच के बाहर हो जाता है। कुओं आदि में यही जल होता है।

(iii) मृदा का रंग—भूमि का गहरा रंग उसमें उपस्थित खनिज तथा जीवांश पदार्थ की मात्रा को प्रकट करता है। अधिक उर्वर मिट्टी जिसका रंग काला होता है, जल धारण क्षमता अधिक होती है।

5. भूमि में जीवांश की मात्रा—जीवांश बहुल मिट्टियों में जल सोखने तथा धारण करने की शक्ति अधिक होती है क्योंकि जीवांश 'केपिलरी शक्ति' को बढ़ा देता है।

6. फसल की किस्म – विभिन्न फसलों की जल की मांग भिन्न-भिन्न होती है। कुछ फसलें कम तथा कुछ फसलें अधिक जल चाहती है। इसके अतिरिक्त कुछ फसलें फैलकर भूमि को ढके रहती हैं जिससे वाष्पीकरण द्वारा जल का ह्रास कम होता है। इस प्रकार फसलें जल की मात्रा को प्रभावित करती हैं।

7. भू-परिष्करण क्रियाएँ—कृषि यन्त्रों से यथा समय क्रियाएँ करने जल के ह्रास को रोका जा सकता है। जुताई के बाद पाटा लगाकर नमी को दबा दिया जाता है।

सिंचाई के बाद कर्षण क्रियाओं से भूमि की केशिकीय नलियों का सीधा सम्बन्ध टूट जाता है और जल कम वाष्पीकृत होता है।

8 अवरोध पर्त - अवरोध पर्त बना देने से वातावरण तथा मिट्टी की तहों के बीच एक पर्त आ जाने से भूमि की सतह से जल कम वाष्पीकृत होता है। प्रत्येक सिंचाई के गुडाई करके अवरोध-पर्त बनाकर मृदा जल सुरक्षित रखा जा सकता है।

अधिक जल से हानि—मृदा में समुचित मात्रा में जल की उपलब्धता मृदा तथा फसलों के लिये लाभदायक रहती है। अत्यधिक वर्षा तथा किन्हीं कारणों से अधिक जल का एकत्रित होना उतना ही हानिकर है जितनी जल की कम मात्रा।

1. भूमि में जल भरे रहने से भूमि की भौतिक दशा बिगड़ जाती है जिससे कर्षण क्रियायें समय पर नहीं की जा सकती हैं यहां तक कि फसलों की बोआई भी नहीं हो पाती है।

2. अधिक नम भूमि में बीज का अंकुरण देर से होता है तथा बीज सड़ भी जाता है।

3. वायु का संचार अच्छा न होने से पौधों की जड़ों का विकास नहीं हो पाता है और जड़ें सड़ भी जाती हैं।

4. उपयोगी जीवाणु की संख्या कम हो जाती है तथा वे सक्रिय नहीं रहते हैं।

5. नमी की अधिकता से पौधों के उपयोगी तत्त्व घुलकर निचली तहों में चले जाते हैं जो पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाते हैं।

6. जल भरे रहने से प्रकाश से विषैला (Toxic) पदार्थ पैदा हो जाता है जो पौधों के लिए हानिकारक होता है।

7. पौधों का विकास अच्छा नहीं होता है तथा फसलों के देर से पकने से कटाई देर से हो पाती है जिससे जीव-जन्तु अधिक हानि पहुँचाते हैं।

मृदा जल का संरक्षण (Conservation of Soil water)—

मृदा में जल की उपलब्धता कृषि की सफलता पर अत्यधिक प्रभाव डालती है, अतः नमी संचित रखने के लिये उपाय करने चाहिए।

1. मृदा-संरचना—मृदाकणों का विन्यास तथा सजावट ऐसी हो जिसमें सूक्ष्म रन्ध्राकाशों की संख्या अधिक हो जिससे भूमि की जल-धारण क्षमता बढ़ जाती है।

2. जीवांश की वृद्धि—भूमि में पर्याप्त जीवांश खादों के प्रयोग करने पर नमी संचयन-शक्ति बढ़ जाती है।

3. जुताई—समय पर जुताई करने से भूमि की नमी बनी रहती है तथा मिट्टी भुरभुरी हो जाती है और रंध्राकाशों की संख्या बढ़ने से जल सोखने तथा धारण की शक्ति बढ़ जाती है।

4. निराई-गुड़ाई—खेत में उगे अनावश्यक पेड़-पौधों खरपतवारों को निकालने से जल की मात्रा में कमी नहीं होती है क्योंकि इनका जल फसल को मिल जाता है।

प्रत्येक सिंचाई के बाद हल्की गुड़ाई करने से जल वाष्प बनकर नहीं उड़ता है।

5. अवरोध पर्त बनाना—भूमि पर बनी पर्त जिसके द्वारा नमी को वाष्प बनने से रोका जाता है, अवरोध पर्त कहलाती है। यह दो प्रकार की होती है—

(अ) प्राकृतिक अवरोध पर्त—भूमि को खुर्पी, हैरो, कुदाली आदि से तोड़ कर ढीला कर देते हैं। ऊपर की ढीली मिट्टी की पर्त शीघ्र ही सूख जाती है और

इसका नीचे की तह से सम्बन्ध टूट जाता है। इससे निचली तहों का जल केशकीय क्रिया द्वारा नष्ट नहीं होता है। जुते खेत में पाटा लगाकर नमी को दबा देते हैं।

(ब) कृत्रिम अवरोध पर्त—सीमित क्षेत्र में धरातल पर घास-फूस, खर-पतवार, भूसे या विशेष प्रकार के कागज की पर्त को बिछाकर भूमि की नमी को उड़ने से रोका जाता है।

5. मृदा-वायु (SOIL AIR)

मृदा-कणों के बीच रंध्राकाश मृदा की किस्म के अनुसार 30-60% तक होता है। ये रन्ध्राकाश वायु और जल से भरे होते हैं। यदि रन्ध्राकाश जल से युक्त नहीं होगा तो वायु से भरा होता है। इस प्रकार शुष्क मृदा में गीली मिट्टी के अपेक्षा वायु अधिक होती है क्योंकि वायु के स्थान को जल ग्रहण कर लेता है। पौधों की वृद्धि के लिये सबसे अनुकूल अवस्था में रन्ध्राकाश $\frac{2}{3}$ भाग जल तथा $\frac{1}{3}$ भाग वायु से भरे होते हैं।

मृदा-वायु वायुमण्डल की वायु से तीन बातों में भिन्न है—

(i) इसमें विभिन्न गैसों का अनुपात भिन्न होता है।

(ii) मृदा वायु का कुछ भाग मृदा जल में घुला होता है।

(iii) मृदा वायु की आर्द्रता 100% होने पर शाकाणु, फफूंदी तथा अन्य जीवाणु भली-भांति क्रिया करते हैं।

वायुमण्डल तथा मृदा-वायु की रचनात्मक तुलना

क्र. सं.	गैस	प्रतिशत रचना	
		वायुमण्डल	मृदा-वायु
1.	आक्सीजन	20·95	20·00
2.	नाइट्रोजन	79·02	79·00
3.	कार्बनडाइआक्साइड	0·03	1·00

भूमि में CO_2 की मात्रा विशेष रूप से अधिक होती है, जो जीवाणुओं के द्वारा जीवांश पदार्थ के कार्बन के आक्सीकरण से होती है जिससे O_2 का अनुपात कम हो जाता है तथा यह जल से संयोजन करके कार्बनिक अम्ल बनाकर मृदा-निर्माण में सहायता करता है।

मृदा-वायु की उपयोगिता—

पौधे और मृदा वायु—1. अन्य जीवधारियों की भांति पौधे श्वसन में आक्सीजन लेते हैं जो पौधों को वायुमण्डल से प्राप्त होती है परन्तु पौधों की जड़ों को आक्सीजन मृदा वायु से मिलती है।

2. हरे पौधों के लिये प्रकाश संश्लेषण के लिये CO_2 आवश्यक है जिसकी पूर्ति वायुमण्डल से होती है। इस क्रिया में CO_2 कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करके O_2 को स्वतन्त्र कर देती है। इस प्रकार पौधे पर्यावरण के सन्तुलन को बनाये रखते हैं।

3. भूमि में उपस्थित जीवाणु सक्रिय होकर नाइट्रोजन को उपयोग में लाते हैं जिसे ये वायु मण्डल तथा मृदा-वायु से प्राप्त करते हैं।

4. वायु मण्डल में कुछ मात्रा में SO_2 भी होती है जिसका पौधों पर उपयोगी तथा हानिकर प्रभाव होता है। वायु मण्डल में इसकी मात्रा 0·0001% (1ppm) से अधिक होने पर कोमल पौधे मुरझा जाते हैं तथा पत्तियाँ गिर जाती हैं। कुछ पौधों की वृद्धि में सहायक होता है।

पौधों की जड़ें और मृदा वायु—पौधों की जड़ों को श्वसन क्रिया के लिये पर्याप्त मात्रा में O_2 की आवश्यकता होती है जो मृदा-वायु से मिलती है। विभिन्न पौधों के लिये इसकी मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। ताप अधिक होने पर श्वसन गति बढ़ जाती है तो पौधो को अधिक आक्सीजन की आवश्यकता होती है। इसकी पूर्ति न होने पर जड़ों का विकास रुक जाता है।

मृदा वायु और पौधों द्वारा जल शोषण—मृदा के अन्दर वायु की उचित मात्रा न होने पर CO_2 की मात्रा अधिक तथा O_2 की मात्रा कम हो जाती है जिससे श्वसन की क्रिया मन्द हो जाती है और इस प्रकार नशीले और विषैले पदार्थ पैदा हो जाते हैं। इस कारण जड़ों की कोशिकाओं की संचालकता घट जाती है जिससे पौधे उचित मात्रा में जल का शोषण नहीं कर पाते हैं।

मृदा वायु और पौधों द्वारा पौष्टिक पदार्थों का शोषण—पौधों की जड़ें भूमि से पोषक तत्वों को घोल के रूप में रसाकर्षण (Osmsis) क्रिया द्वारा ग्रहण करती हैं। मृदा वायु में आक्सीजन की न्यूनता तथा CO_2 की अधिकता से जड़ों की कोशिकायें शिथिल हो जाती हैं और पौष्टिक पदार्थों के ग्रहण न करने से पौधों की वृद्धि पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार मृदा-वायु पौधों की वृद्धि, भोजन निर्माण और शोषण तथा जीवाणुओं की क्रियाशीलता के लिये महत्त्वपूर्ण है जिसका समुचित परिमाण में होना वांछनीय है।

मृदा-वायु को प्रभावित करने वाले कारक—

1. मृदा कणों के बीच रंध्राकाश की प्रतिशत मात्रा—विभिन्न मिट्टियों में रंध्राकाश भिन्न होता है जिससे इनके बीच जल तथा वायु की मात्रा भिन्न होती है। इनके जल से पूर्णतया भरे होने पर वायु का अनुपात कम हो जाता है। जल-निकास का उचित प्रबन्ध करने पर O_2 की उचित मात्रा मिलती है।

2. जीवाणुओं द्वारा रासायनिक क्रियायें—भूमि के अन्दर के विभिन्न जीवाणु श्वसन के लियें O_2 तथा N_2 की सदैव आवश्यकता होती है। इनकी विभिन्न क्रियाओं के कारण CO_2 की मात्रा बढ़ जाती है।

3. गैसीय विनिमय—वायुमण्डल तथा मृदा वायु में विभिन्न गैसों का विनिमय उचित होने पर पौधों की वृद्धि अच्छी होती है। विनिमय को ठीक रखने के लिये कुछ गैसों को भूमि में प्रविष्ट होने तथा हानिकर गैसों को बाहर निकालने के लिये मृदा वायु का उचित संचालन आवश्यक है।

4. मृदा कणों की संरचना—अत्यन्त चिकनी मिट्टी के कणों के बारीक होने से मृदा वायु कम तथा बलुई मिट्टी में अधिक वायु संचालित होती हैं क्योंकि चिकनी मिट्टी में जल की अधिकता रहती है।

5. भू-परिष्करण क्रियायें—उचित समय पर जुताई, गुड़ाई तथा सिंचाई करने से मिट्टी की भौतिक दशा ठीक रहती है और स्वतन्त्र जल भूमि की निचली तहों में चले जाने पर वातन भली-भांति होने लगता है।

6. जीवांश पदार्थ—विभिन्न जीवाणुओं द्वारा जीवांश पदार्थ के कार्बन का आक्सीकरण होता है जिसमें मृदा में CO_2 की अधिकता और O_2 की कमी हो जाती है।

7. जलवायु—ग्रीष्मकाल में मृदा वायु में O_2 की अधिकता तथा CO_2 की कम मात्रा पाई जाती है, जबकि शीतकाल मे CO_2 अधिक तथा O_2 की मात्रा कम होती है। इसका मुख्य कारण दिन की अवधि का कम या अधिक होना है।

मृदा वायु का कुप्रभाव—मृदा वायु मे विभिन्न गैसो के उचित अनुपात में न होने पर CO_2 और SO_2 की गैसों की मात्रा बढ़ जाती है जो पौधों की वृद्धि के साथ विभिन्न जीवाणुओं की क्रियाशीलता को प्रभावित करती है।

पौधों पर प्रभाव—भूमि में जल से अधिक समय तक भरे रहने पर वायु की कमी तथा आर्द्रता बढ़ जाती है, जो पौधों को कई प्रकार से हानिकारक होती है—

(i) पौधों की जड़ों की वृद्धि तथा विकास रुक जाता है।

(iii) प्रवक्षेपण (Precipitation)—पृथ्वी के काफी गर्म होने पर वर्षा होते ही जल भूमि में प्रवेश कर उसके ताप को बढ़ा देता है।

2. भू-गर्भ की गर्मी—भूमि की अपनी गर्मी होती है।

3. रासायनिक परिवर्तन—भूमि में जीवांश पदार्थ आक्सीजन के मिलने पर पौधों के खाद्य के रूप में परिवर्तित होते समय गर्मी पैदा करते हैं। कच्ची खाद देने पर अनेक रासायनिक परिवर्तनों से काफी गर्मी पैदा हो जाती है। रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग करने पर ये प्रतिक्रिया करके काफी गर्मी पैदा करते हैं।

मृदाताप का शस्योत्पादन पर प्रभाव—मृदा ताप का फसल की वृद्धि में विशेष महत्व है। अधिकांश फसलों की वृद्धि 5° सेग्रे (41° फे.) से कम ताप पर रुक जाती है। अत. पौधों के विकास के लिए उचित ताप की आवश्यकता होती है। कम या अधिक मृदा ताप फसल के उत्पादन पर प्रभाव डालते हैं। फसल के उत्पादन को, बीजो का अंकुरण, वर्धी अंगो का विकास तथा भूमि में जीवाणुओं की क्रियाशीलता, अधिक प्रभावित करती है। अत: इन सभी का मृदा ताप से सम्बन्ध का अध्ययन करना आवश्यक है।

(i) बीजों के अंकुरण से ताप का सम्बन्ध—बीजों के अंकुरण के लिए उचित नमी, वायु के अतिरिक्त उचित ताप की आवश्यकता है। विभिन्न फसलों के अंकुरण के लिए एक-सा ताप उपयोगी नहीं है। इसी कारण विभिन्न फसलों के बोने का समय निश्चित है जो कि एक स्थान से दूसरे स्थान के ताप विभिन्नता के कारण अलग-अलग होता है।

बीजों के अंकुरण के लिये उपयुक्त ताप

फसल	बीज अंकुरण के लिये तापक्रम (से.ग्रे)		
	न्यूनतम	अधिकतम	अनुकूलतम
मक्का	9·4	46·1	33·)
गेहूँ	5·0	43 3	28·9
जौ	4·4	43·3	28·9

गेहूं और जौ शरद् ऋतु तथा मक्का ग्रीष्म या वर्षा ऋतु में बोई जाती है।

2. फसलों की वृद्धि पर ताप का प्रभाव—पौधों की वृद्धि के लिए उपयुक्त ताप की आवश्यकता होती है। अधिक या कम ताप पर पौधों की वृद्धि अपेक्षाकृत मन्द हो जाती है।

फसलों की वृद्धि के लिए आवश्यक ताप

फसल	न्यूनतम	उच्चतम	अनुकूलतम
मक्का	9·4	46 1	33·3
गेहूँ	5·0	42·5	28·7
जौ	5 0	37 7	28·7
सरसों	4·0	37 7	27·2

इसी प्रकार फसलों की जड़ों की वृद्धि तथा पोषक तत्वों का ग्रहण करना भी मृदा-ताप से प्रभावित होता है। पाले के कारण जड़ें जल लेना बन्द कर देती हैं, जबकि पत्तियों से वाष्पोत्सर्जन होता है, जिससे जल की कमी से पौधे मर जाते हैं। जड़ों की वृद्धि भी निश्चित ताप पर अच्छी होती है।

अतः बीजों के अंकुरण, पौधों की वृद्धि, जड़ों द्वारा जल शोषण पर ताप का काफी प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार फसलों के पकने के लिये ताप की निश्चित सीमा सर्वोत्तम है।

3. शाकाणुओं की क्रियाशीलता पर ताप का प्रभाव—पौधों का भोजन मृदा-शाकाणुओं की क्रियाशीलता पर निर्भर करता है। ये शाकाणु नाइट्रोजन युक्त कार्बनिक यौगिक को तोड़कर नाइट्रेट उपलब्ध कराते हैं। ये शाकाणु 5° सेग्रे से कम तथा 54·5° सेग्रे से अधिक ताप होने पर अपनी क्रिया बन्द कर देते हैं। इनके लिये अनुकूलतम ताप 37° सेग्रे है।

4. मौसम पर ताप का प्रभाव—मौसम की दशाओं को ताप प्रभावित करता है तथा मौसम फसलों की वृद्धि की हर दशा को प्रभावित करता है। खुला और साफ मौसम फसलों के लिये अच्छा है। दिसम्बर-जनवरी में बारिस के बाद बादलों के छाये रहने से फसलों पर विभिन्न कीट एवं रोगों के आक्रमण का भय रहता

है। फसलों के पकने के समय साफ व शान्त मौसम अधिक उत्पादन में सहायक होता है।

मृदा-ताप को प्रभावित करने वाले कारक—

1. अक्षांश एवं भूमि की स्थिति—जिस स्थान पर सूर्य की किरण तिरछी पड़ती है वहां अपेक्षाकृत कम गर्मी पड़ती है। उत्तरी गोलार्द्ध में मिट्टी का ताप उत्तरी ढाल पर दक्षिण ढाल की अपेक्षा कम होता है। उत्तरी ढाल के उपयुक्त स्थान पर कुछ वृक्ष लगाये जा सकते हैं, जबकि विपरीत ढाल पर घासें उगती हैं।

2 समुद्र तट से ऊँचाई—जो स्थान समुद्र तट से जितना ऊँचा होगा वहाँ के वातावरण का ताप अपेक्षाकृत कम होगा। प्रत्येक 166 मीटर की ऊँचाई पर 1° सेग्रे ताप कम हो जाता है।

3. मृदा की किस्म एवं रंग—मृदा-कणों का आकार, संरचना तथा इसका रंग मृदा ताप को प्रभावित करता है। हल्के रंग की मिट्टी की अपेक्षा काली मिट्टी अधिक गर्मी सोखती है। बलुई मिट्टी जल्दी गर्म होती है और शीघ्र ही ठण्डी तथा खुली होने से कम जल धारण करती है।

4. जैव-पदार्थ—जीवांश के सड़ने से गर्मी पैदा होती है जो भूमि के ताप को बढ़ाती है किन्तु जीवांश की अनुपस्थिति में ऐसा नहीं होता है।

5. जल—भूमि की सतह से जब जल वाष्प बनकर उड़ता है तो भूमि के ताप की काफी मात्रा वाष्प बनाने में उपयोग आ जाती है जिससे ताप गिर जाता है।

मृदा में जल भरे रहने से वह ठण्डी हो जाती है और धीरे-धीरे गरम होती है क्योंकि मिट्टी को गर्म करने की अपेक्षा जल को वाष्प बनाने में काफी गर्मी उपयोग हो जाती है। अतः भूमि में जल की अनुकूल मात्रा होनी चाहिए।

6. शाकाणुओं की सक्रियता—विभिन्न शाकाणुओं की क्रियायें मृदा-ताप पैदा करती हैं। शाकाणुओं की अधिक संख्या क्रियाशीलता को बढ़ा देती हैं जिससे ताप बढ़ता है।

7. मृदा उर्वरता (Soil Fertility)

पौधों की वृद्धि के लिए विभिन्न तत्वों की आवश्यकता होती है जिनमें से कुछ की पूर्ति मृदा से होती है। अतः मृदा की उर्वरता शक्ति पौधों की वृद्धि को प्रभावित करती है। मृदा के समुचित प्रबन्ध करने पर इसकी उर्वरा शक्ति में कमी नहीं होती है बल्कि भूमि की उत्पादन शक्ति में वृद्धि होती है।

मृदा-उर्वरता—'पौधों के समुचित विकास के लिए भूमि द्वारा पौधों के खाद्य-तत्वों को पर्याप्त तथा संतुलित मात्रा में प्रदान करने की स्वाभाविक क्षमता को भूमि की उर्वरता कहते हैं।'

मृदा उर्वरता निम्नलिखित बातों को प्रदर्शित करती है—

1. पौधों के आवश्यक भोजन तत्व पर्याप्त मात्रा में भूमि में उपस्थित हों।

2. भूमि द्वारा सभी तत्व संतुलित मात्रा में पौधों को प्रदान किये जावें।

3. इन तत्वों को प्रदान करने की भूमि में शक्ति होनी चाहिये।

जो मृदा पौधों के समुचित विकास के लिए आवश्यक सभी तत्वों को पर्याप्त तथा संतुलित मात्रा में प्रदान करती है, वह भूमि उर्वर भूमि (Fertile Soil) होती है। भूमि को भौतिक तथा रासायनिक परीक्षणों से उर्वरता ज्ञात की जाती है।

मृदा में खनिज पदार्थ, जल और वायु के अलावा जीवांश पदार्थ पाया जाता है। जीवांश पदार्थ पेड़-पौधों और जीव जन्तुओं से प्राप्त होता है। जीवांश को विभिन्न सूक्ष्म जीवाणु अपनी क्रियाओं के द्वारा एक काले रंग के पदार्थ 'ह्यूमस' में बदल देते हैं जिसको पौधे उपयोग में ला सकते हैं। दलहनी फसलों की जड़ों की गांठों में उपस्थित जीवाणु वायुमण्डल की नाइट्रोजन को लेकर भूमि को जीवांशयुक्त बना देते हैं। जीवांश बहुल भूमि से पौधों को अधिक भोज्य पदार्थ मिलते हैं तथा ऐसी भूमि उर्वरक होगी।

जीवांश का भूमि पर प्रभाव—सभी भूमियों में जीवांश की मात्रा भिन्न होती है। प्रायः बलुई भूमि में कम तथा मटियार भूमि में जीवांश अधिक होता है। भूमि में इसका निश्चित परिमाण उपयोगी है। साधारण भूमि में यह 2 से 9% तक जीवांश पदार्थ की मात्रा अच्छी रहती है। यदि यह मात्रा 2% से कम होती है तो इसका प्रभाव उपज पर पड़ता है। भूमि में जैव-पदार्थों को मिलने पर अनेक परिवर्तन होते हैं।

1. जीवांश के कारण ह्यूमस उत्पन्न होता है जो काले रंग का होता है जिससे भूमि अधिक ताप ग्रहण करती है और पाले के प्रभाव से बची रहती है।

2. जीवांश मिलने पर भारी भूमि हल्की हो जाती है क्योंकि जीवांश का आपेक्षित घनत्व कम होता है।

3. जीवांश के कारण भूमि भुरभुरी हो जाती है क्योंकि कण अलग हो जाते हैं।

4. कणों के अलग होने से रन्ध्राकाश बढ़ जाता है जिससे मृदा की जल शोषण तथा धारण क्षमता बढ़ जाती है।
5. वायु का संचार अधिक होता है जिससे लाभदायक जीवाणु अधिक सक्रिय रहते हैं।
6. जीवांश के कारण भूमि उर्वर हो जाती है जिससे पौधों को भोज्य तत्व अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं।
7. जीवांश का कार्बनिक अम्ल मृदा लवणों की घुलनशीलता बढ़ा देते हैं जिससे पौधों की पहुँच के बाहर के तत्व भी उपलब्ध हो जाते हैं।
8. मृदा भुरभुरी होने पर जड़ों का विकास अच्छा होता है जिससे ये फैल-कर गहराई से भोजन लेते हैं।
9. जीवांश युक्त भूमि में बोआई के लिए कृषि क्रियायें जुताई आदि में आसानी रहती है।
10. मिटियार भूमि मे जीवांश मिलने पर उसकी चिकनाहट कम होती है और जल-निकास अच्छा हो जाता है और भूमि पौधों के लिए उपयोगी हो जाती है।
11. बलुई तथा चिकनी मृदाय जो कृषि के लिए अच्छी नहीं होती है, पर्याप्त मात्रा में जीवांश मिलने पर ठीक की जा सकती हैं।

जीवांश प्राप्ति के स्रोत – भूमि जीवांश कई रूपों में प्राप्त होता है—

1. पौधों के विभिन्न भागो से–पौधों की जड़ें, तने, पत्तियाँ, शाखायें, फूल, घास-फूस, खरपतवार आदि सड़ गलकर जीवांश वृद्धि करते हैं।
2. हरी खाद देने से जीवाश प्राप्त होता है।
3. विभिन्न पशुओं तथा अन्य जीव-जन्तुओं का मल-मूत्र जीवांश का मुख्य साधन है। ये जीवित अवस्था में जीवांश वृद्धि तो करते ही हैं और मरने पर भी इनका मृतक शरीर भी सड़-गलकर जीवाश बन जाता है।
4. दलहनी फसलें जीवाश वृद्धि करती हैं।
5. कार्बनिक उर्वरक-सुखाया खून, विभिन्न खलियां, अस्थि चूर्ण आदि पदार्थ जो-पेड़ पौधों तथा जीवधारियों के अवयवों से प्राप्त होते है, जीवांश प्रदान करते हैं।
6. मानव के मल-मूत्र से तैयार खाद (Poudrette) बड़े शहरों में प्राप्त मल प्रवाह अवपंक (Sewage Sluge) नगरपालिका द्वारा तैयार किया खाद (Municipal Compost) भी कार्बनिक खादों की श्रेणी में आते हैं, ये भूमि में जीवांश प्रदान करने के साधन हैं।

इस प्रकार सारे जीवधारी (जन्तु और वनस्पतियां) जैव पदार्थ की प्राप्ति के मुख्य साधन हैं जिससे भूमि को जीवांश मिलता है।

मृदा उर्वरता ह्रास के कारण—मृदा उर्वरता प्राकृतिक देन है फिर भी इसे कृत्रिम उपायों से घटाया-बढ़ाया जा सकता है। फसलों के द्वारा भोज्य तत्वों के उपयोग में लाने के अतिरिक्त अन्य कई कारणों से उर्वरता में कमी आती है।

1. वाष्पीकरण—उर्वरता का वाष्पन से सीधा सम्बन्ध नहीं है किन्तु जल के वाष्प बनने से जल की कमी से भूमि शुष्क हो जाती है। शुष्क भूमि में पोषक तत्व ज्यों के त्यों पड़े रहेंगे और पौधे तत्वों के शोषण के अभाव में कमजोर हो जावेंगे क्योंकि पौधे तत्वों को घोल के रूप में उपयोग करते हैं। जीवांश पदार्थ का विघटन के लिए पर्याप्त नमी का होना आवश्यक है।

2. उद्विलियन—मृदा-जल के बहुत से पोषक तत्व क्लोरीन, मैग्नीशियम, गंधक, पोटाश आदि घुलकर निचली तहों में रिसकर चले जाते हैं जिससे इनकी कमी तथा अनुपात घट जाता है जिससे भमि अनुपजाऊ हो जाती है।

3. कटाव एवं बहाव—असमतल भूमियो में वर्षा का जल भूमि की ऊपरी सतह को बहा ले जाता है। जल निकास के उचित प्रबन्ध न होने तथा अन्य कारणों से भूमि में कटाव होने लगता है। अधिक तेज वर्षा भूमि की ऊपरी उपजाऊ तह को काटकर बहा ले जाती है जिससे भूमि अनुपजाऊ हो जाती है।

4. निरन्तर फसलें उगाना—फसलें भोज्य तत्वों को भूमि से लेती हैं जिससे इन तत्वों की भूमि में कमी आ जाती है। विभिन्न फसलें विभिन्न मात्रा में पोषक तत्वों को लेती हैं। आवश्यक तत्वों के लेते रहने से भूमि की उर्वरता कम हो जाती है।

मृदा उर्वरता में वृद्धि करना—पौधों की वृद्धि के लिए साधारणतया 16 आवश्यक भोज्य तत्वो की आवश्यकता होती है जिनको पौधे वायु, जल तथा भूमि से प्राप्त करते हैं। विभिन्न फसलों के भोज्य तत्वों की आवश्यकता भिन्न होती है जिनकी पूर्ति के लिए जीवांश खादें, रासायनिक उर्वरकों को भूमि में प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ जीवाणु सहजीवी क्रियाओं से उर्वरता बनाए रखने में सहयोग प्रदान करते हैं।

मृदा-परीक्षण से तत्वों की स्थिति का ज्ञान होता है तथा भूमि में किस प्रकार की कर्षण क्रियायें तथा फसलें बोनी हैं, का ज्ञान होता है। इसके अलावा मृदा विकार को दूर करने के लिए संशोधन तत्व का प्रयोग किया जाता है।

मृदा उर्वरता को सुरक्षित रखना सरल कार्य नहीं है फिर भी निम्न उपायों को अपनाकर मृदा उर्वरता में वृद्धि की जा सकती है—

1. मृदा की भौतिक दशा सुधारना—पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए भूमि की अच्छी भौतिक दशा की आवश्यकता है। असंतुलित फसल उत्पादन तथा अनुचित

भू-परिष्करण क्रियाओं से भूमि की भौतिक स्थिति खराब हो जाती है जिसके कारण जैविक पदार्थों का सड़न-गलन तेजी से होने लगता है। जिससे मृदा-संरचना खराब हो जाती है। निम्न उपाय अपनाये जाते हैं—

(i) पर्याप्त मात्रा में जैव-पदार्थों का उपयोग

(ii) उचित जल निकास प्रबन्ध

(iii) उचित समय पर खेत की जुताई तथा अन्य कर्षण क्रियायें करना

2. मृदा विकारों को दूर करना—

(क) **अम्लीयता एवं क्षारीयता**—भूमि में अम्लीयता तथा क्षारीयता कई कारणों से उत्पन्न हो जाती है जिनसे पौधों को तत्व उपलब्ध नहीं होते हैं तथा पौधों की वृद्धि में बाधा पहुँचती है। इस दशा में सुधार लाने के लिए चूनायुक्त सुधारकों का प्रयोग करें जिससे तत्त्व घुलनशील अवस्था में आ जाते हैं तथा भूमि की दशा में सुधार होता है।

(ख) **अनुचित-जल निकास**—भूमि में जल निकास का उचित प्रबन्ध न होने पर भूमि में वायु का संचार अच्छा नहीं होता है जिससे पौधों की जड़ें प्रभावित होती हैं। इन पौधों पर सूखे पाले का अधिक प्रभाव होता है तथा भूमि की भौतिक दशा बिगड़ जाती है।

भूमि में रुके अतिरिक्त जल को बाहर निकालने का प्रबन्ध करें। जल निकास का प्रबन्ध भूमि की किस्म, तलरूप तथा जेबजल आदि पर निर्भर होता है।

3. भू-क्षरण से रक्षा—भूमि की सतह से वनस्पतियों का आवरण नष्ट होने से बहते हुए जल तथा तीव्र वायु के कारण मिट्टी का कटाव और बहाव प्रारम्भ हो जाता है जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति बुरी तरह से प्रभावित होती है। अतः विभिन्न उपाय अपनाकर भूमि की कटाव तथा बहाव से रक्षा करनी चाहिए।

4. भूमि में खाद्य पदार्थों की पूर्ति करना—भूमि में पौधों के विभिन्न भोज्य तत्व विभिन्न मात्रा एवं रूप में उपस्थित रहते हैं। पौधों के भोज्य तत्व उपलब्ध तथा अनुपलब्ध रूप में विद्यमान होते हैं। पौधे भूमि से केवल उपलब्ध भोज्य तत्वों का ही उपयोग कर पाते हैं। भूमि में प्रयुक्त भोज्यांश खादों तथा उर्वरकों की बड़ी मात्रा अनुपलब्ध अवस्था में बदल जाती है क्योंकि पौधों की जड़ें निश्चित गहराई से भोजन लेती हैं। इन भोज्य तत्वों के पौधों की जड़ों को पहुँच के बाहर हो जाने से ये अनुपलब्ध रूप में हो जाते हैं तथा ये भूमि की निचली तहों में चले जाते हैं। अतः इनको भूमि में पौधों की जड़ों के समीप उचित प्रकार से संस्थापित किया जावे जिससे इनका शोषण शीघ्र न हो सके।

भूमियों में अधिकतर नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा कुछ सीमा तक पोटाश की कमी रहती है। इनकी पूर्ति भूमि में खादों के देने पर होती है। भूमि में खाद्य तत्वों की पर्याप्त मात्रा प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि भूमि में तत्वों की प्राप्ति तथा हानि के मध्य संतुलन रखा जावे जिसके लिए निम्नलिखित उपाय अपनाये जावें—

(i) भूमि में पर्याप्त मात्रा में जैविक खाद-गोबर की खाद, कम्पोस्ट, खलियां, हरी खाद का प्रयोग करें।

(ii) नाइट्रोजन की पूर्ति के लिए जैविक खादों के अतिरिक्त नाइट्रोजनप्रद उर्वरक प्रयोग किए जावें।

(iii) भूमि फास्फोरस संस्थापन नाइट्रोजन की अपेक्षा कठिन होता है अतः भूमि में सुपर फास्फेट तथा अन्य फास्फेटिक उर्वरक प्रयोग किए जावें।

(iv) भारी भूमि में पोटाश की मात्रा अधिक होती है पर उपलब्ध पोटाश की मात्रा कम होती है क्योंकि यह कटाव, बहाव और रिसाव से अधिक नष्ट होता है। इनकी पूर्ति जीवांश खादों, लकड़ी की राख तथा पोटाश उर्वरकों से की जाती है।

(v) अन्य तत्वों की पूर्ति करना—भूमि में गंधक, चूना, मैग्नीशियम आदि की कमी नहीं होती है। गंधक भूमि में फास्फोरस उर्वरक से, कैल्शियम लाइम स्टोन तथा मैग्नीशियम डोलोमाइट और मैग्नीशियम उर्वरक से पूर्ति की जाती है।

5 उत्तम शस्यावर्तन अपनाना—उत्तम शस्यावर्तन वह है जो भूमि की उर्वरता में कमी न करके फसलों की उपज में वृद्धि करे। अच्छी कृषि पद्धति के लिए आवश्यक है कि भूमि में फसलें इस क्रम में उगाई जावें कि वे भूमि में पौधों के खाद्य तत्व सन्तुलित मात्रा में रहे तथा जैविक पदार्थों का कमी न हो। वैले तथा निवमन के अनुसार अच्छा शस्यावर्तन वह है जो किसान की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ भूमि की उर्वरता को स्थापित रखने में सहायक हो।

6. खरपतवारों की रोकथाम—खरपतवार प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से फसलों को हानि पहुँचाते हैं। खरपतवार फसलों के साथ खाद्य तत्वों के लिए संघर्ष करते हैं जिससे पौधों की वृद्धि अच्छी नहीं होती है और उपज में कमी आ जाती है।

विभिन्न उपाय अपनाकर खरपतवारों को नष्ट करना चाहिए।

7. भूमि में नमी का संरक्षण—जल पौधों के खाद्य पदार्थ के शोषण के अतिरिक्त इनके वाहक भी हैं। अतः भूमि में पर्याप्त नमी का संरक्षण किया जाना चाहिए। भूमि में नमी संरक्षित के लिए निम्नलिखित क्रियायें अपनानी चाहिएँ—

(i) ग्रीष्म-ऋतु में खेत में मिट्टी पलटने वाले हल से एक जुताई करें।

(ii) वर्षा ऋतु में जुताई के बाद पाटा न लगायें।

(iii) भूमि में खरपतवारों को न पनपने दें।

(iv) वर्षा ऋतु में खेत के चारो ओर मेड़बन्दी करके जल को बहने दें।

(v) भूमि में पर्याप्त जीवांश खादें प्रयोग करें।

भूमि की विकृतता से बचाने के लिए एक ही फसल बार-बार नहीं उगानी चाहिए क्योंकि एक फसल द्वारा छोड़ा विषैला पदार्थ उसी फसल पर हानिकर

प्रभाव डालता है। अतः उचित फसल चक्र, अपनाना, मृदानिर्जीवीकरण (Soil Sterilization), विभिन्न गहराई पर जुताई, जीवांश खादों का प्रयोग, जल निकास-प्रबन्ध, खरपतवारों की रोकथाम तथा मृदा जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ानी चाहिये।

मृदा उर्वरता को प्रभावित करने वाले कारक

(अ) प्राकृतिक पदार्थ—(Natural Factors)—इसके अन्तर्गत वे सभी कारक शामिल हैं जो मृदा निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं जो निम्न प्रकार हैं—

1. मूल पदार्थ—भूमि की भौतिक तथा रासायनिक रचना अपनी मूल चट्टानों पर निर्भर करती है। चट्टानें जो जैव पदार्थ युक्त हैं उनसे मिश्रित मिट्टी पौधों के खाद्य तत्वों से परिपूर्ण होगी।

2. मृदा तलरूपता (Topography)—वर्षा का जल समतल में एक सार फैलकर अधिक मात्रा में शोषित करने से भूमि के कटाव की सम्भावना कम होती है और भूमि उर्वर बनी रहती है जबकि इसके विपरीत ऊँची-नीची ढालू भूमियों में जल द्वारा कटाव अधिक होता है तथा ऊपरी भाग की जैविक मिट्टी बहकर निचले भागों में इकट्ठी हो जाती है।

3. भूमि की आयु—पुरानी भूमि में खनिज तत्व अधिक मात्रा मे रहते हैं लेकिन वहां अपक्षरण (लीचिंग) होता है। नई तोड़ी भूमि में खाद्य पदार्थ अधिक परन्तु पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाते हैं जबकि जंगलों को साफ करके बनी नई भूमि में उर्वरता अधिक होगी।

4. जलवायु—वर्षा, तापक्रम, आर्द्रता तथा वायु जलवायु के मुख्य तत्व हैं। अत्यधिक नमी तथा वर्षा जल से पौधों के घुलनशील तत्त्व बहकर नष्ट हो जाते हैं। अधिक ताप से कार्बनिक पदार्थ विघटित होकर इसकी मात्रा कम हो जाती है। अधिक तेज वायु के चलने से मृदा की ऊपरी सतह उड़कर दूसरे स्थान पर चली जाती है।

5. भूमि की भौतिक दशा—भूमि के उर्वर होने पर कणों की रचना तथा विन्यास का प्रभाव पड़ता है। भूमि में चिकनी तथा मृतिका के कण होने पर खाद्य तत्त्व कम नष्ट होते है। भूमि का अच्छा विन्यास होने पर भूमि अच्छी दशा में रहती है जिससे भूमि में अपक्षयण क्रिया सुचारु रूप से होती है जिससे पौधों के घुलनशील दशा में भोज्य तत्व मिलते हैं।

भूमि मे दशा अच्छी होने पर भूमि में पर्याप्त नमी तथा वायु संचार होता है जिससे अणु जीव अधिक संख्या में सक्रिय रहते हैं और ये कार्बनिक पदार्थों को घुलनशील अवस्था मे बदल देते हैं।

6. भूमि का कटाव—भूमि में कटाव जल तथा वायु से होता है जिससे पौधों के आवश्यक तत्व नष्ट हो जाते हैं और उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती है।

7. वनस्पतियाँ—जिन भू-भागों पर घास वाली वनस्पति उगती हैं, वे उर्वर भूमि होती है परन्तु जंगली वनस्पति वाली भूमि अनुपजाऊ होती है। जिस भूमि पर वनस्पति नहीं होती है वे कई विकार से पीड़ित होती हैं।

8 मृदा-जीवाणु—भूमि में उपस्थित विभिन्न जीवाणु, शाकाणु फफूंदी, शैवाल आदि उर्वरता को प्रभावित करते हैं। लगभग 15 सेमी गहरी मिट्टी में इनकी मात्रा 1200 प्रति किग्रा होती है। पौधों में खाद्य तत्वों की उपलब्धता इन जीवाणुओं की क्रियाशीलता पर निर्भर करती हैं। ये विभिन्न कार्बनिक पदार्थों को विखण्डन करके पौधों को उपलब्ध करते हैं।

9. अवरोधक कारक—भूमि के विकार-अम्लीयता, क्षारीयता तथा फालतू जल मृदा उर्वरता को प्रभावित करते हैं।

मृदा अम्लीयता—अम्लीय भूमि में पौधों को फास्फोरस उपलब्ध नहीं होता है। लोहा, मैंगनीज तथा अल्यूमीनियम तत्व अधिक घुलनशील होने से पौधों को हानिकर होते हैं और कैल्शियम तथा मैग्नीशियम की कमी हो जाती है।

मृदा क्षारीयता—इस भूमि मे नाइट्रोजन का शोषण रुक जाता है और घुलनशील फास्फोरस की कमी के अलावा लोहे, मैंगनीज तथा एल्यूमिनियम में अघुलनशील होने मे इनका शोषण नही हो पाता है और कैल्शियम तथा मैग्नीशियम की अधिकता हो जाती है।

अतिरिक्त जल - भूमि मे फालतू जल के रुक जाने से वायु-संचार मे बाधा होती है जिससे भूमि के ताप गिरने से कई विकार तथा कुप्रभाव हो जाते हैं जो पौधों की वृद्धि को प्रभावित करते हैं और जीवाणुओं की क्रिया रुक जाती है।

(ब) कर्षण कारक—

1 जुताई विधि - भूमि के ढाल की ओर जुताई करने पर भूमि मे कटाव अधिक होता है जिससे उर्वरता नष्ट हो जाती है जबकि ढाल के विपरीत जुताई करने पर कटाव कम होता है क्योंकि वह जल-बहाव को रोकता है। गहरी जुताई करने पर जैविक पदार्थों का सड़न अच्छा होता है और भूमि की उर्वरता बढ़ जाती है।

जुताई के बाद पाटा लगाकर भूमि को भुरभुरा व समतल कर देते हैं जिससे मृदा नमी का संरक्षण होता है और उर्वरता बढ़ती है।

2 जुताई का समय [illegible] में आने पर भूमि की भौतिक दशा [illegible] अतः [illegible] जुताई आदि कार्य करें।

फसल-प्रणाली—फसल उगाने की तीन प्रणालियां हैं—

(अ) इकहरी फसल (ब) मिश्रित फसलें (स) फसल चक्र

लगातार एक ही फसल उगाने से भूमि की उत्पादकता में कमी आ जाती है क्योंकि इनकी जड़ों से निकला विष मृदा-विकार पैदा करता है । एक सी खाद्य आवश्यकता होने पर विशेष तत्व की भूमि में कमी आ जाती है ।

मिश्रित फसलें तथा फसलों को निश्चित क्रम में बोने (फसल-चक्र अपनाने) से भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहती है बल्कि किसान की आवश्यकता की पूर्ति करते हुए अधिक उपज प्राप्त होती हैं । अतः भूमि में फसलें इस क्रम में उगायें जिससे पौधों के खाद्य तत्व संतुलित मात्रा में रहें ।

4 खादों का उपयोग—भूमि में विभिन्न खाद्य तत्वों की पूर्ति के लिए विभिन्न जैविक खादें तथा उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है । जैविक खादें खाद्य तत्वों की पूर्ति के साथ भूमि की भौतिक दशा को सुधारती हैं । मृदा-परीक्षण के बाद उर्वरकों को उचित मात्रा में उचित विधि से प्रयोग भूमि पर अच्छा प्रभाव डालते हैं ।

5. खरपतवारों की रोकथाम—फसलों में उगे खरपतवार पौधों से खाद्य तत्व, नमी, वायु तथा प्रकाश के लिए होड़ करते हैं तथा खाद्य तत्वों की काफी मात्रा लेकर विभिन्न कीट एवं रोगों को फैलाने में सहायक होते हैं । अतः इनकी रोकथाम उचित समय पर करके उर्वरा शक्ति बनाये रखी जा सकती है ।

6. वृक्षारोपण—ऐसी भूमियां जिन पर फसलें नहीं ली जा सकती हैं वहां पर वृक्षारोपण करके अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है । ये भू-क्षरण से बचाव कर के भूमि को कृषि योग्य बना सकते हैं । वृक्षारोपण पहाड़ी घाटियों को सुधारने, मरुस्थल को रोकने तथा भू-क्षरण के रोकने के उत्तम उपाय हैं ।

इन कारकों को ध्यान में रखने पर मृदा-उर्वरता बनी रहती है तथा उत्पादन में वृद्धि होती है ।

मृदा उत्पादकता (Soil Productivity)—मृदा की फसल पैदा करने की योग्यता को भूमि की उत्पादन शक्ति कहते हैं । जिन भूमियों पर फसलों से अच्छी उपज प्राप्त होती है वे उत्पादक भूमि कहलाती हैं ।

यह आवश्यक नहीं है कि जो भूमि उर्वर है वह उत्पादक भी होगी क्योंकि भूमि में पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक तत्व उपस्थित हैं लेकिन भूमि में अनेक तत्व, भूमि का ताप, जल की कमी, मृदा-विकार आदि बाधा पहुँचा कर उत्पादन में कमी कर देते हैं । अतः जो भूमि उत्पादक होगी वह निश्चित ही उर्वर होगी ।

उत्पादकता को उपज प्रति हेक्टर या फसल से प्राप्त राशि से आंका जाता है ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मृदा के भौतिक गुणों को जानने के लिए मृदा की किन स्थितियों का अध्ययन करना पड़ता है, क्यों ?
2. मृदाकणों का आकार तथा मृदा-विन्यास से आप क्या समझते हैं ? भू-परिष्करण तथा वर्षा का इन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
3. भूमि रन्ध्राकाश के महत्व का वर्णन करो।
4. बलुआर मिट्टी, चिकनी मिट्टी की अपेक्षा अधिक संरन्ध्र (Porus) होती है, इसलिए यह जल अपने मे ग्रहण नहीं कर पाती है, इस कथन की विवेचना करिये।
5. कृषि में मृदा उष्मा का क्या महत्व है, इसे प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों का वर्णन करो।
6. भूमि तथा पौधों में होने वाली क्रियाओं पर मृदा-ताप का क्या प्रभाव पड़ता है ?
7. भूमि में जल किन-किन रूपों में मिलता है, केशिकीय जल की मात्रा को प्रभावित करने वाले कारकों को बताइए।
8. मृदा की जल धारिता से क्या तात्पर्य है, बलुई मिट्टी में यह किस प्रकार बढ़ाई जा सकती हैं।
9. पौधे भूमि से खाद्य पदार्थों को किस प्रकार घोल के रूप में ग्रहण करते है।
10. जैव पदार्थ का भूमि पर क्या प्रभाव पड़ता है, भूमि की कौन सी दशायें जीवांश सड़ने में बाधक है ?
11. मृदा उर्वरता को बनाये रखने के लिए किन-किन उपायों को अपनाया जाता है ?
12. मृदा उर्वरता एवं फसलोत्पादन में मृदा विन्यास के महत्व की व्याख्या कीजिये।
13. निम्न पर टिप्पणी लिखिये—
    (i) रन्ध्राकाश
    (ii) मृदा वायु
    (iii) मृदा जल का ह्रास
    (iv) मृदा ताप के स्रोत

12. भूमि विकार

(Soil Defects)

कृषि के लिये मृदा उर्वरता एक वरदान है। भूमि में किसी प्रकार का विकार (Soil Defects) आना हानिकारक है भूमि की अम्लीयता अथवा क्षारीयता भयानक भूमि विकार है जो भूमि को आंशिक या पूर्ण रुप से कृषि के लिये अनुपयोगी कर देते हैं।

मृदा की अम्लीयता एवं क्षारीयता का सम्बन्ध मृदा घोल की प्रतिक्रिया (Soil reaction) से जिसे मृदा-समु (मृदा पी. एच.) से प्रदर्शित करते हैं।

pH का अर्थ किसी घोल में उपस्थित हाइड्रोजन आयन्स की मात्रा के विलोम के लॉगरिथ्म से होता है; अर्थात्

$$pH = Log \frac{1}{H^+}$$

किसी घोल की अभिक्रिया मे उनमे उपस्थित 'H' तथा 'OH' आयन्स की सान्द्रता पर निर्भर करती है। अम्लीय अभिक्रिया हाइड्रोजन (H^+) आयन तथा क्षारीय अभिक्रिया (OH^-) आयन्स की आपेक्षिक सान्द्रता अधिक होती हैं। उदासीन अभिक्रिया मे हाइड्रोजन तथा हाईड्रोक्सिल आयन्स बराबर रहते हैं।

साधारण तौर पर कृषि योग्य भूमि का pH 6·5 से 7 5 तक होना चाहिए किन्तु असामान्य स्थिति मे यह pH 6 से कम या 8 से अधिक हो जाता है।

भूमि का pH ज्ञात करने के लिये सर्वोत्तम विधि; पोटेशियो मीटर, पी एच. मीटर हैं। इसके अतिरिक्त रंग सारणी, तुलनाकारी डिस्क, सूचक और लिटमस पत्र भी प्रयोग किये जाते है। क्षारीय मिट्टी में लाल लिटमस नीला तथा अम्लीय मिट्टी मे बैंगनी लिटमस लाल हो जाता है।

पी. एच. मीटर में O- से 14 निशान होते हैं। मध्य का उदासीन स्थिति को प्रकट करता है। 7 से कम संख्या अम्लीयता तथा 7 अधिक क्षारीयता को प्रकट करती है।
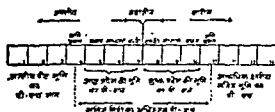
भूमि का पी. एच. (pH) के आधार पर वर्गीकरण

भूमियां	अम्लीय भूमि का पी. एच.	उदासीन	क्षारीय भूमि का पी. एच.
1. हल्की	6–7	7	7–8
2. साधारण	5–6	–	8–9
3. प्रबल	4–5	–	9–10
4. अति प्रबल	4 से कम	–	10 से अधिक

अम्लीय भूमि (Acidic Soil)

आर्द्र क्षेत्रों में इस प्रकार की भूमि पाई जाती हैं। अम्लीय भूमि मे हाइड्रोजन की आणविक प्रगाढ़ता (Ionic Concetration) अधिक और हाईड्रोजन आयन्ग (OH Ions) अपेक्षाकृत कम होता है। इस मिट्टी के घोल का पी. एच. (PH) सदैव 7 से कम रहता है।

अम्लीयता के प्रकार—अम्लीय भूमि के हाइड्रोजन आयन्स दो प्रकार के समुदायों में विद्यमान रहते है। प्रथम वे जो भूमि के कणों पर अवशोषित रहते है तथा दूसरे मृदा घोल में रहने हैं जिन के आधार पर अम्लीयता दो प्रकार की होती है—

(1) सक्रिय अम्लीयता (Active acidity)—मृदा घोल में उपस्थित हाइड्रोजन आयन्स मे उपस्थित अम्लीयता को सक्रिय अम्लीयता कहते हैं। इसमें भूमि में हाइड्रोजन आयन्स की प्रगाढ़ता हाइड्रोक्सिल आयन्स से अधिक होती हैं।

(2) संचित अम्लीयता (Reserved or Potential acidiy)—इस प्रकार की अम्लीय भूमि कणों पर अधिशोषित हाइड्रोजन आयन्स के कारण होती है। ये आयन्स मृदा घोल के आयन्स की भाँति स्वतन्त्रतापूर्वक भ्रमण नहीं कर पाते हैं।

मृदा घोल की अम्लीयता कम होने पर मृदा कणों के अधिशोषित हाइड्रोजन आयन्स स्वतन्त्र होकर मृदा घोल में आ जाते हैं और सक्रिय अम्लीयता बढ़ जाती है। जिस भूमि मे मृदा-कलिल (Colloids) की मात्रा जितनी अधिक होगी उसमें उतनी ही संचित अम्लीयता अधिक होगी। इसी कारण चिकनी मिट्टी में संचित अम्लता अधिक होती है।

अम्लीय भूमि बनने के कारण—अम्लीय भूमियाँ निम्नलिखित में से एक या अधिक कारकों के योग से बनती है—

1. मूल चट्टान की प्रकृति—अम्लीय चट्टानों से बनने वाली भूमि अम्लीय होती है। ग्रेनाइट चट्टानें जिनमें सिलिका तथा क्वार्ट्ज की मात्रा अधिक होती है वे अम्लीय भूमि के बनाने में सहयोग देते हैं। चट्टानों का सिलिका जल के संयोजन से सिलसिक अम्ल बनाती है।

2 जैविक पदार्थ का अपघटन—जैविक पदार्थों के अपघटन के कारण अनेक कार्बनिक व अकार्बनिक अम्ल बनते हैं। कार्बनिक अम्ल CO_2 तथा जल की क्रिया से बनते हैं।

$$H_2O + CO_2 \rightarrow H_2CO_3$$
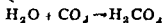
कार्बनिक अम्ल क्षारीय पदार्थों से प्रक्रिया करके इनको घुलनशील बना देती है जिससे निक्षालन (Leaching) द्वारा भूमि से अलग हो जाता है और भूमि अम्लीय हो जाती है साथ ही कार्बनिक अम्ल में उपस्थित हाइड्रोजन आयन्स मृदा कणों पर अधिशोषित धनायनों को हटाकर स्वयं स्थान ले लेते हैं जिससे भूमि की अम्लीयता बढ़ जाती है।

3. रासायनिक खादों के प्रयोग—विशेष प्रकार के उर्वरक जैसे अमोनियम सल्फेट के लगातार प्रयोग से भूमि की अम्लीयता बढ़ जाती है। यह भूमि से कैल्शियम आयन्स को काफी मात्रा में हटाता है जिससे कैल्शियम की कमी और अम्लीयता बढ़ जाती है। अन्य नाइट्रोजन कार्बन उर्वरकों विघटन से नाइट्रिक अम्ल तथा गन्धकाम्ल बनते हैं तो भी अम्लीयता बढ़ती है।

4. क्षार का क्षीण होना—अतिरिक्त जल के साथ Ca,k और Mg के तत्व बह जाते हैं और निचली तहों में चले जाते हैं। कुछ फसलें तम्बाकू, बरसीम, रिजका मूंगफली आदि Ca तथा अन्य क्षार तत्वों (Base Elements) की अधिक मात्रा को उपयोग करते हैं जिससे इनकी कमी आ जाती है और फलस्वरूप भूमि की अम्लीयता बढ़ जाती है।

भूमि पर अम्लीयता का प्रभाव—साधारण अम्लीय भूमि से (मृदा पी एच. 6.5 से 7 तक) पौधों की अधिक हानि नहीं होती है परन्तु अधिक होने पर निम्न प्रभाव डालते हैं—

1. एल्यूमिनियम, लोहा तथा मैंगनीज के अधिक घुलनशील होने से इनका प्रभाव पौधों के लिए हानिकारक होता है। एल्यूमिनियम तथा लोहे के घुलनशील यौगिक पौधों के लिये विष (Toxic) का कार्य करते हैं तथा मैंगनीज यौगिक की मात्रा बढ़ने से पौधों की (Matabolism) क्रिया रुक जाती है।

2. एल्यूमिनियम, लोहा तथा मैंगनीज के साथ फास्फोरस अनुपलब्ध स्थिति में हो जाता है।

3. केल्शियम तथा मैगनीशियम की उपलब्धता कम हो जाती है।

4. कुछ फसलों की मालीकेलम के प्रभाव में उत्पन्न कम हो जाती है।

5. अम्लीय मृदा में जीवाणुओं की क्रियाशीलता मन्द हो जाती है जिससे नाइट्रोफिकेशन तथा नाइट्रोजन संस्थापन आदि लाभदायक क्रिया कम होती है।

अम्लीय भूमि में सुधार—अम्लीय भूमि में भूमि की किस्म, जलवायु, फसल आदि के अनुसार निम्नलिखित में से एक या अधिक विधियों का उपयोग करके भूमियों को सुधार जा सकता है—

1. चूने वाले पदार्थों को मिलाकर—किसी भी क्षार प्रधान [illegible] का उपयोग किया जाता है जिसमें चूना अधिक मात्रा में सरलता से मिलने के कारण प्रयोग होता है। जला हुआ चूना (Cao), डोलोमाइट ($MgCo^{3}$), [illegible] चूना [$Ca(COH)_2$], वायु में बुझा चूना $(CaCo)_3$, मार्ल ([illegible]), खड़िया ($CoCo_3$)तथा लाइम स्टोन आदि मुख्य हैं।

चूना मिलने पर हाइड्रोजन आयन्स भूमि कणों पर [illegible] और Ca तथा Mg पुनः अधिशोषित हो जाते हैं।

$$CoO + H_2O \rightarrow Ca\ (OH)_2 =$$

$$Ca(OH)_2 + CO_2 \rightarrow CaCO_2 H_2O$$
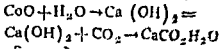
5. फास्फोरस अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है।

जैविक प्रभाव—1. जड़ों में ग्रन्थियाँ बड़ी तथा अधिक संख्या में बनती हैं

2. जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ जाती है।

3. जीवांश पदार्थ का विघटन तेजी से होता है।

4. जैविक क्रियायें नाइट्रोजन संस्थापन अधिक होता है।

5. फलीदार पौधों की वृद्धि अच्छी होती है।

चूने की मात्रा—भूमि में चूने की मात्रा मृदा पी. एच., चूने की किस्म फसल चक्र तथा जीवांश पदार्थ पर निर्भर करती है।

मृदा परीक्षण के आधार पर इनकी मात्रा का निर्धारण करके प्रयोग किया जाना चाहिये। सामान्य दशा में भूमि का पी. एच. एक इकाई बढ़ाने के लिये निम्न मात्रा में प्रयोग करें—

भूमि	लाइम स्टोन की मात्रा टन प्रति हेक्टर
1. रेतीली	2 50
2. दोमट	5 00
3 भारी दोमट	7·50
4. चिकनी	8 75

चूने की वांछित मात्रा को भलीभाँति पीस कर चूर्ण बना लेते हैं। इसे जुती हुई भूमि में बिखेरकर जुताई करके भलीभाँति मिला देते हैं जिससे यह मिट्टी कणों में प्रवेश कर जाती है और भूमि पर शीघ्र अच्छा प्रभाव डालती है।

2. समुचित जल निकास प्रबन्ध—अतिरिक्त जल को खेत से निकालते रहने पर क्षार पदार्थ भूमि के अन्दर निक्षालित नहीं होते हैं और अम्ल भी जल के साथ बह जाते हैं। मृदा वायु संचार बढ़ता है और CO_2 जल के साथ संयोग न करके वायु मण्डल में चली जाती है।

3. क्षारीय उर्वरकों का प्रयोग—अम्लीय भूमि में क्षारीय उर्वरक सोडियम नाइट्रेट, कैल्सियम, नाइट्रेट, कैल्सियम साइनामाइड आदि का आवश्यकतानुसार ... करना चाहिये जिससे उर्वरकों के क्षारीय अवशेष अम्लीयता को कम करने में होते हैं।

13. क्षारीय भूमि
(ALKALINE SOIL)

देश के उत्तरप्रदेश, पंजाब, राजस्थान तथा मध्यप्रदेश आदि राज्यों की मिट्टी में महान विकार, क्षारीय भूमि है। राजस्थान में इस प्रकार की भूमि लगभग 7 लाख हेक्टर भूमि है।

इस प्रकार की भूमि शुष्क प्रदेशों में मिलती है जिसका पी. एच. मान 7 से ऊपर रहता है। शुष्क प्रदेशों में जल निकास प्रबन्ध न होने से वाष्पन अधिक होता है तो घुलनशील लवण भूमि की ऊपरी सतह पर पर्त के रूप में इकट्ठे हो जाते हैं। इन लवणों में सोडियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा पोटाश के क्लोराइड्स, कार्बोनेट्स, बाई कार्बोनेट्स तथा कभी-कभी नाइट्रेट्स पाये जाते हैं। इस प्रकार की भूमियों को ऊसर या रेह भी कहते हैं।

इन भूमियों को सुधार करके लाखों टन अनाज पैदा किया जा सकता है जो देश की तीव्रगति से बढ़ती जनसंख्या की क्षुधापूर्ति कर सकती है।

क्षारीय भूमि की पहचान—भूमि की क्षारीयता ज्ञात करने के लिये निम्नलिखित विधियाँ प्रयोग में लाते हैं—

1. मृदा का संतृप्त निचोड़ (Saturated Extract) का पी. एच. मान ज्ञात करना;
2. मृदा के संतृप्त निचोड़ की विद्युत चालकता (E.C E.) ज्ञात करना;
3. घुलनशील लवणों की प्रतिशत मात्रा ज्ञात करना;
4. विनिमेय सोडियम प्रतिशत ज्ञात करना।

क्षारीय भूमि का वर्गीकरण—अनेक वैज्ञानिकों ने ऊसर भूमियों का वर्गीकरण किया है जिनमें हिलगार्ड, हिसग्मोण्ड, रूसी वैज्ञानिकों तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की क्षारीय प्रयोगशाला द्वारा किये गये वर्गीकरण महत्वपूर्ण हैं। सर्वमान्य तथा प्रचलित वर्गीकरण सं. रा. अमेरिका की क्षारीय प्रयोगशाला का है, जो निम्न प्रकार है—

(1) लवणीय मृदा (2) लवणीय क्षारीय मृदा (3) क्षारीय मृदा

1. लवणीय मृदा (Saline Soil)—साधारण भाषा में इसे रेह या रेतीली भूमि कहते हैं। जिन स्थानों पर जल स्तर ऊंचा होता है वहां वर्षा के बाद भूमि-जल के साथ Ca, Mg, Na, तथा K के घुलनशील लवण क्लोराइड और सल्फेट

एकत्रित होकर भूमि को सफेद पर्त में ढक लेते हैं जिससे इसे 'सफेद ऊसर' भी कहते हैं।

इस मृदा में विनिमेय सोडियम की मात्रा 15% से कम होती है क्योंकि उपलब्ध अधिकांश लवण उदासीन तथा घुलनशील होते हैं। इनका पी. एच. मान 8·5 से कम (7·5 से 8 के मध्य) होता है। 25° से. ग्रे ताप मृदा के संतृप्त निचोड़ की विद्युत चालकता H मिलीम्होज प्रति सेन्टीमीटर से अधिक होता है। भूमि में कैल्शियम की अधिकता, सोडियम की न्यूनता के कारण प्रायः कृषि योग्य रहती है।

2. लवणीय क्षारीय मृदा (Saline Alkali Soil)—इस प्रकार की भूमि को 'भूरा ऊसर' भी कहते हैं। इसमें विलेय लवणों के क्लोराइड तथा सल्फेट की अधिकता के साथ विनिमेय सोडियम की मात्रा 15% से अधिक हो जाती है। भूमि का पी. एच. मान 8·5 से नीचे रहता है। विद्युत चालकता 4 मिलीम्होज प्रति से. मी से कम रहती है।

इस प्रकार की भूमि में जल तथा वायु के संचार कम होने से फसलें नहीं ली जा सकती हैं। जल से भीगने पर भूमि चिपचिपी हो जाती है।

क्षारीय मृदा (Alkaline Soil)—इस प्रकार की भूमि में उपस्थित जैव पदार्थ विघटित होकर, भूमि की सतह का रंग काला बना देता है जिससे इसे, 'काला ऊसर' कहते हैं। साधारणतया ऊसर ही कहते है।

इसमें उदासीन लवणों की मात्रा अति न्यून हो जाती है और Na, Ca, Mg, Na के *क्षारीय लवण कार्बोनेट्स तथा बाइकार्बोनेट्स* अधिकता में पाये जाते हैं। विनिमेय सोडियम की मात्रा 15% से अधिक हो जाती है तथा भूमि का पी. एच. मान 8·5-10 तक हो जाता है। मृदा निचोड़ की विद्युत चालकता 4 मिलीम्होज प्रति सेमी. से अधिक रहती है।

सोडियम आयन्स के अत्यधिक होने से भूमि की भौतिक दशा खराब हो जाती है और मृदा संरचना अव्यवस्थित हो जाती है। यह भूमि गीली होने पर चिपकती है और सूखने पर ढेले बन जाते हैं। जल के निचली तहों में न जाने से भूमि-सुधार में कठिनाई आती है।

क्षारीय भूमियों के बनने के कारण—साधारण भूमि के क्षारीय भूमि में परिवर्तित होने के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं—

1. मूल द्रव्य—चट्टानें विभिन्न प्रकार के खनिजों से बनी हैं। ऐसी चट्टानें जो क्षारयुक्त है, उनसे बनी भूमि क्षारीय होगी। इन चट्टानों के अपक्षयण से बहुत से हानिकर घुलनशील लवण बनते हैं जो जल के साथ घुलकर निचली तहों में चले जाते हैं और ग्रीष्मकाल में वाष्पीकरण के कारण लवण पर्त के रूप में ऊपरी सतह पर एकत्रित हो जाते हैं।

2. शुष्क जलवायु—कम वर्षा वाले अर्द्धशुष्क तथा शुष्क क्षेत्रों की भूमि में उपस्थित लवण जल की कमी के कारण निचले तहों में नहीं बह पाते है और अधोभूमि (Sub-soil) में रह जाते है। ग्रीष्मकाल में गर्म शुष्क हवाओं के चलने के कारण ये जल के साथ घुलनशील पदार्थ धरातल की ओर उठते हैं। जल वाष्प बन कर उड़ जाती है और लवण धरातल पर एकत्रित हो जाते है। लवणों की अधिक मात्रा होने से पौध पनप नहीं पाते हैं।

3. जल निकास का समुचित प्रबन्ध न होना—

(क) महीन कणों वाली भूमि के नीचे कड़ी या कंकरीली तहें पाई जाती हैं जिससे जल में घुले लवण निचली तहो में प्रवेश नहीं कर पाते है और धरातल के निकट बने रहते हैं जिससे वाष्पन तथा पौधों द्वारा जल लेने पर लवण सतह पर एकत्रित हो जाते है।

(ख) झीलों-झाबरो के निकटवर्ती क्षेत्रों में जल वर्ष के अधिकांश समय में भरा रहता है जिससे इन क्षेत्रो में भौम जल-स्तर (Water Table) काफी ऊंचा रहता है। लवण युक्त जल भूमि की गहराई तक नही जा पाता है और इन लवणों के गर्मी में धरातल पर आने से भूमि ऊसर हो जाती है।

(ग) नहर, रेल, ऊची सडकों के किनारे स्थित खेत निचले धरातल पर हो जाते है जिससे ढाल न मिलने से जल का निकास नही हो पाता है जिससे जल में घुले लवण जल वाष्प के बन जाने पर यही इकट्ठे होते रहते हैं।

4 क्षारीय जल से सिंचाई—अधिकांश नहरें विभिन्न प्रकार की भूमियों पर बहती हुई लवणो को घोलकर साथ लाती हैं। इस जल से निरन्तर सिंचाई करने पर भूमि मे लवणो की मात्रा बढ़ जाती है। कुओ के क्षारीय जल से फसलों की सिंचाई करने पर भूमि के क्षारीय होने का भय रहता है।

5 रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग—अधिक उत्पादन में उर्वरक वरदान सिद्ध हुये है। इनमे से केवल 1-2 को छोड़कर अन्य सभी भूमि पर अम्लीय या क्षारीय प्रभाव डालते है। सोडियम नाइट्रेट के लगातार प्रयोग से भूमि के क्षारीय होने की संभावना रहती है क्योंकि नाइट्रेट तो पौधों के उपयोग में आ जाता है और धीरे-धीरे सोडियम की मात्रा अधिक होने से भूमि ऊसर हो जाती है।

6. निश्चित गहराई पर कृषि यंत्रों का उपयोग—एक ही गहराई पर जुताई करने पर हल का तालू के रगड से एक पतली कड़ी तह बन जाती है जिससे जल निचली तहों में नही जा पाता है और लवण ऊपरी धरातल पर बने रहते हैं।

7 पड़ती भूमि—बहुत सी भूमियां काफी समय से जलवायु की प्रतिकूलता और सिचाई की कमी से बिना खेती किये पडी रहती है, जिनको किसान ऊसर कहकर बेकार समझता है इनमें दूब या अन्य घासें उगती हैं। इन भूमियों की उचित जुताई तथा कृषि क्रियायें करके कृषि योग्य बनाया जा सकता है। [illegible]

क्षारीय भूमि से हानियां—क्षारीय लवण या विनिमेय सोडियम की उपस्थिति से भूमि तथा पौधों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मोटे रूप मे इन मिट्टियों को लवण मृदा (रेह) तथा क्षारीय मृदा (ऊसर) के रूप में अध्ययन किया जाता है। अतः इन दोनों के प्रभाव का अध्ययन करना आवश्यक है।

लवणीय (रेह) भूमि का प्रभाव – इस प्रकार की मृदा में घुलनशील लवणों के कारण मृदा-घोल गाढ़ा बन जाता है जिसका भूमि की भौतिक दशा पर विशेष प्रभाव नही पड़ता है। कैल्शियम की अधिकता एवं सोडियम की अपेक्षाकृत न्यूनता से ये कृषि योग्य रहती हैं। इन भूमियो पर ढाक, पलाश आदि के घने जंगल पाये जाते है तथा पेड़ो के नीचे लम्बी घासें तथा बेलें पाई जाती है।

क्षारीय (ऊसर) भूमि का प्रभाव—इनमे क्षारीय लवणो (कार्बोनेट्स, बाई कार्बोनेट्स) तथा विनिमेय सोडियम की अधिकता होती है जो भूमि तथा पौधों पर प्रभाव डालते हैं।

पौधों पर प्रभाव –

1. क्षारीय भूमि में मृदा-घोल के अधिक गाढ़े होने से जड़ो के अन्दर का अपेक्षाकृत कम घोल उल्टे मृदा विलयन में (बहि परागरण) आने से पौधे मुरझाकर सूख जाते हैं।
2. पौधो को पोषक तत्वो के घोल ग्रहण करने मे अधिक शक्ति लगानी पड़ती है जिसमे इनकी वृद्धि रुक जाती है और पौधे छोटे तथा बौने रह जाते हैं।
3. कमजोर पौधों पर कई रोग एवं कीटों का प्रकोप होता है।
4. पौधों की पत्तियां भद्दे नीले रंग की होकर मोमयुक्त पदार्थ से ढंक जाती हैं जिससे आवश्यक क्रियाओं के न होने से उपज कम मिलती है।
5. लवणो की अधिकता से विभिन्न प्रकार की फसलों मे अनेकों रोग हो जाते हैं।
6. मृदा विलयन के अधिक सान्द्रण होने पर पौधो की छाल बनाने वाले ऊतक भी नष्ट हो जाते हैं जिससे पौधों की वृद्धि नही होती है।

मृदा पर प्रभाव—

1. मृदा में विनिमेय सोडियम की अधिकता के कारण कण बारीक हो जाते हैं जिससे मृदा-विन्यास खराब हो जाता है।
2. रन्ध्राकाश के आयतन कम होने से वायु संचार मंद हो जाता है।
3. जीवाणुओं की संख्या कम होकर क्रियाशीलता शिथिल हो जाती है जिससे कार्बनिक पदार्थों का विघटन नही हो पाता है।
4. पौधों के पोषक तत्व अनुपलब्ध रूप मे रहते हैं।
5. जल की मात्रा अधिक रुके रहने के कारण लवण घुलकर नीचे नही जा पाते हैं।
6. थोड़ी सी गीली मिट्टी में जुताई करने पर कीचड़ तथा सूखने पर ढेले बन जाते हैं।

अम्लीय तथा क्षारीय मृदा में भेद

अम्लीय मृदा	क्षारीय मृदा
1. ये आर्द्र प्रदेश में पाई जाती हैं।	1. शुष्क प्रदेशों में मिलती हैं।
2. मृदा-समु 7 से कम रहता है।	2. मृदा-समु 7 से अधिक रहता है।
3. हाइड्रोजन आयन्स की अधिकता तथा हाइड्रोक्सिल आयन्स कम रहते हैं।	3. अपेक्षाकृत हाइड्राक्सिल आयन्स की बाहुल्यता तथा हाइड्रोजन आयन्स कम रहते हैं।
4. क्षारकीय पदार्थ निक्षालन द्वारा भूमि की निचली तहों में चले जाते हैं।	4. क्षार पदार्थ भूमि की ऊपरी पर्त में इकट्ठे रहते हैं।
5. भूमि कोलाइड में 'H' आयन्स की अधिकता होती है।	5. भूमि कोलाइड पर विनिमेय सोडियम की अधिकता होती है।
6. भूमि की भौतिक दशा पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है।	6. विनिमेय सोडियम की अधिकता से भूमि की भौतिक दशा एवं संरचना खराब हो जाती है।
7. फास्फोरस, लोहे, एल्यूमीनियम तथा मैंगनीज हाइड्राक्साइड के रूप में स्थिर हो जाते हैं।	7. फॉस्फोरस, कैल्सियम डाई या ट्राई फास्फेट के रूप स्थिर होने से पौधों को उपलब्ध नही होते हैं।
8. एल्यूमिनियम तथा मैंगनीज पौधे के लिये हानिकारक रूप मे होते हैं।	8. सोडियम, पोटाश, मैग्नीशियम के लवण पौधो के लिए हानिकारक विषरूप (*Toxic*) में होते हैं।
9. इनका कोई वर्गीकरण नही है।	9. इनको लवणीय (रेह), लवणीय क्षारीय तथा क्षारीय मृदा, तीन वर्गों में बांटा गया है।
10. सुधार के लिए भूमि में चूना मिलाना पड़ता है।	10. भूमि सुधार के लिए वर्गीकरण के अनुसार निक्षालन, जिप्सम, गंधक आदि पदार्थ मिलाए जाते हैं।

क्षारीय भूमि सुधार

क्षारीय भूमियों का सुधारने की विधि निश्चित करने से पूर्व अग्र लिखित बातों का ज्ञात होना आवश्यक है –

1. भूमि कितने समय से तथा किस कारण से बेकार पड़ी है;
2. सिंचाई तथा खाद की न्यूनता से तो बेकार नहीं छोड़ी गई है;
3. भूमि की निचली तहों में कितनी गहराई पर कठोर पर्त तह या कंकड़ की पर्त कितनी मोटी है;
4. भूमि के स्थाई जल-स्तर की गहराई कितनी है ?

क्षारीय लवणों की अत्यधिक मात्रा होने, स्थाई जल-स्तर 3 मीटर के भीतर होने तथा भूमि में 1 से 1·5 मीटर की गहराई पर कठोर पर्त होने पर भूमि सुधार करना कठिन सा हो जाता है।

क्षारीय भूमियों को निम्नलिखित तीन विधियों से कृषि योग्य बनाया जा सकता है—

(अ) लवणों का सम्पूर्ण उन्मूलन
(ब) हानिकर लवणों का साधारण लवणों में रूपान्तरण
(स) नियन्त्रक उपाय

(अ) उन्मूलन (Eradication)—यह लवणीय (रेहीली) मृदा में अधिक उपयुक्त है। निम्नलिखित उपाय किए जाते हैं—

1. जल-निकास (Drainage)—खेत के चारों ओर 0·5 मीटर ऊँची मेड़ें बनाकर भूमि की सतह पर निकास की खुली तथा बन्द नालियाँ बना देते हैं। इसमें जल भर देते हैं और कभी-कभी जुताई कर देते हैं जिससे मृदा लवण घुल जाता है, फिर इससे जल को निकास नालियों द्वारा दूर स्थानों पर निकाल देते हैं।

2. निक्षालन (Leaching)—लवणीय (रेह) भूमि जिसमें Ca तथा Mg के घुलनशील लवण अधिक तथा विनिमेय सोडियम की मात्रा न्यून हो तो भूमि में जलकर क्षारों के रिसने से भूमि ठीक की जा सकती है। परन्तु लवणीय, क्षारीय तथा क्षारीय भूमि में यह विधि अपनाने पर घुलनशील लवण रिसाव क्रिया से नीचे चले जाते हैं और विनिमेय सोडियम की प्रतिशत मात्रा बढ़ जाती है जिससे क्षारीयता और बढ़ जाती है। अतः ऐसी भूमि में निक्षालन से पूर्व जिप्सम या गन्धक मिलाने से सोडियम कार्बोनेट तथा बाईकार्बोनेट को सोडियम सल्फेट में बदलना आवश्यक है।

खेत को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटकर मेडबन्दी कर देते हैं जिससे जल का वितरण भली-भांति हो सके। यह क्रिया ग्रीष्मकाल में खेत खाली होने पर करनी चाहिए। गहरी गुड़ाई या जुताई करके अप्रैल से जून तक खेत में लगातार पानी

करके जुलाई में धान लगा देते हैं, बाद में बरसीम और ढेंचा (हरी खाद) बोते हैं। इस प्रकार दो-तीन साल तक फसल-चक्र अपनाने पर भूमि ठीक हो जाती है।

निक्षालन के समय खेत में लगभग 20–30 टन पुआल या अन्य सड़ा पदार्थ मिलाना चाहिए। निक्षालन और जल-निकास दोनों विधियाँ एक साथ अपनाने से प्रभाव अच्छा होता है।

3. लवणों को धरातल से बहाना (Flushing)—वाष्पन होने पर लवण भूमि की सतह पर पर्त के रूप में एकत्रित होता है तो इनको जल की तेज धार से शीघ्रता से बहा देते हैं। लवण की पर्त के घुलकर बहने से लवणों की प्रगाढ़ता कम हो जाती है। जल की कमी वाले क्षेत्रों मे भी यह विधि काम में ला सकते हैं।

4. लवणों को खुरचकर हटाना (Scrapping)—ऊसर के छोटे भू-भागों की ऊपरी लगभग 10 सेमी मोटी पर्त को खुरपी या फावड़े की सहायता से खुरच कर अलग कर देते हैं और इसके स्थान पर 3 भाग अच्छी मिट्टी तथा एक भाग सड़ी-गली खाद मिलाकर भर देते हैं। यह विधि बड़े पैमाने पर आर्थिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं है।

5. खाई खोदना (Trenching)—खेत में आवश्यकतानुसार चौड़ी तथा गहरी नालियाँ खोदते हैं। किसी एक किनारे से पहिली खाई खोद कर उसकी मिट्टी डोली पर डाल देते है तथा ठीक बगल में दूसरी नाली खोदकर इसकी मिट्टी पहिली खाई में भर देते है। इसी प्रकार खाइयाँ पूरे खेत में खोदते है। नीचे की मिट्टी में घुलनशील लवणों की प्रगाढ़ता कम होने से फसलें उगाई जा सकती हैं।

बड़े क्षेत्र में मिट्टी पलटने वाले हल का प्रयोग किया जा सकता है।

6. अवरोध पर्त बनाना (Mulching)—क्षारीय भूमि की सतह से वाष्पीकरण रोकने के लिए अवरोध-पर्त बनाने से नमी सुरक्षित हो जाती है जिससे घुलनशील लवण ऊपर नही आते हैं।

(ब) लवणों का रूपान्तरण (Conversion of Salts)

इस विधि में कुछ रासायनिक पदार्थों को भूमि में मिलाकर हानिकर लवणों को कम हानिकर लवणों में बदला जाता है। जिनमें जिप्सम (कैलसियम सल्फेट $CaSO_4$), गंधक-चूर्ण (S), पाइराइट्स तथा चूने का पत्थर ($CaCO_3$) प्रमुख है। इनसे मृदा के सोडियम तत्त्व का स्थान जिप्सम का कैलसियम ग्रहण कर लेता है।

1. जिप्सम का प्रयोग—यह भूमि के सोडियम कार्बोनेट को कम हानिकर सोडियम सल्फेट में बदल देता है।

$$Na_2CO_3 + CaSO_4 \rightarrow Na_2SO_4 \downarrow + CaCO_3$$
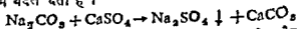
सोडियम सल्फेट घुलनशील होने के कारण यह जाता है और कैलसियम कार्बोनेट सोडियम तत्त्व को हटाने में योगदान देता है।

2. गंधक का प्रयोग—भूमि में गंधक का प्रयोग करने पर वह जीवाणुओं के द्वारा गंधकाम्ल में बदल दिया जाता है जो भूमि के कणों पर स्थित सोडियम या सोडियम कार्बोनेटस से क्रिया करते हैं।

$$2S + 3O_2 + 2H_2O \rightarrow 2H_2SO_4$$

$$Na_2CO_3 + H_2CO_4 = CO_2 \uparrow + H_2O \downarrow + aN_2SO_4 \downarrow$$
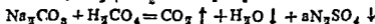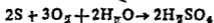
इस प्रकार हानिकर सोडियम कार्बोनेट पदार्थ समूल नष्ट होकर CO_2 तथा जल में बदल जाते हैं। जिससे जल भूमि में और CO_2 वायुमण्डल में चली जाती है।

सुधार-पदार्थों की मात्रा मृदा-संरचना, उपस्थित विनिमेय सोडियम, मृदा पी. एच एवं मृदा-परीक्षण के आधार पर निर्धारित की जाती है।

जिप्सम की मात्रा टन (प्रति हैक्टर)

मृदा क्षारीयता (मृदा पी. एच.)	मिट्टी की संरचना		
	बलुई दोमट	दोमट	चिकनी दोमट
8·5 से 9·0	—	2·5	5·0
9 0 से 9·5	2·5	5·0	7·5
9·5 से 10·0	5·0	7·5	10·0
10·0 से अधिक	7·5	10·0	12·0

प्रयोग विधि जिप्सम, गंधक, चूने के पत्थर को बारीक पीसकर प्रयोग करें। जून के प्रथम सप्ताह में सिंचाई के बाद खेत के जुताई योग्य हो जाने पर सुधारकों की पूरी मात्रा एकसार बिखेरकर फैलाकर हल्की जुताई कर दें जिससे सुधारक 10–12 सेमी. गहराई पर भूमि में मिल जावे। अब 15 सेमी. पानी 15–20 दिन तक भरा रख कर निकालने से जल में घुले लवण बह जाते हैं। धान की रोपाई तक 2–3 बार पानी और भरकर निकालने से अधिकांश लवण बाहर निकल जाते हैं।

3. रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग—अम्लीय उर्वरक-अमोनियम सल्फेट, अमोनियम क्लोराइड, अमोनियम सल्फेट, नाइट्रेट आदि के प्रयोग से ऊसर की मात्रा में कुछ कमी आ जाती है।

सुधारकों के प्रयोगकाल में भूमि का नम होना अत्यन्त आवश्यक है।

(ख) नियन्त्रक उपाय (Control)

नियन्त्रण के अन्तर्गत भूमि-प्रबन्ध की ऐसी विधियाँ अपनाई जाती हैं जिससे लवणों की कुल मात्रा सम्पूर्ण मूल-प्रदेश में समान रूप में वितरित रहे जिसका

सुप्रसिद्ध शस्य विज्ञानी डॉ. श्यामसिंह वैन्स ने 25 से० मी० ऊँची उत्तर-पूर्व और दक्षिणी-पूर्व दिशा में मेड़ें बनाकर इनकी आधी ऊँचाई तक सिंचाई की तो उत्तरी-पश्चिमी ढाल पर अपेक्षाकृत पौधों ने अधिक वृद्धि की। फसलों की बोआई मेड़ों के शिखर की अपेक्षा ढाल पर करें क्योंकि शिखर पर वाष्पीकृत जल के साथ लवण अधिक मात्रा में एकत्रित होते है। अतः सूर्य के प्रकाश की दिशा तथा फसल की अवधि के अनुसार इस विधि में वांछित परिवर्तन करके अपनाया जा सकता है।

7. अन्य विधियां—

(i) शीरा या शक्कर का गंल का प्रयोग—डॉ. नीलरत्न धर के अनुसार क्षारीय भूमि में लगभग 25–40 टन (250 से 400 क्विंटल) प्रति हेक्टर की दर से फैलाकर हल्की सिंचाई करने के बाद मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करते हैं। भूमि में धीरे-धीरे सुधार होता है। शीरे का कार्बोहाइड्रेट विघटित होकर CO_2 बनती है जो पानी के साथ मिलकर कार्बनिक अम्ल बनाती है जो भूमि के लवणों को निष्क्रिय करती है।

(ii) विद्युतीय कर्षण विधि—डॉ० नेहरू ने क्षारीय भूमि सुधार हेतु इटावा (उ० प्र०) में इस विधि का प्रयोग किया है। भू-भाग पर पानी भर के विद्युत-प्रवाह से जल में घुले सोडियम कार्बोनेट के आइनाइजेशन से सोडियम तथा कार्बोनेट अलग-अलग हो जाते हैं जिससे सोडियम स्वतन्त्र जल में रिसकर निचली तहों में चला जाता है। विद्युतधारा की उपलब्धता इस विधि के प्रयोग को सीमित करती है।

(iii) डॉ. मुखर्जी के अनुसार—क्षारीय भूमि सुधार के लिये—

(1) जिप्सम—1·5 टन प्रति हेक्टर तथा

(2) खादों का मिश्रण—अमोनियम सल्फेट, कम्पोस्ट तथा गोबर की खाद का करें।

(iv) सन् 1935 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के तत्वाधान में 'क्राप्स एण्ड स्वाइल विंग' स्थापित की गई। विभिन्न वैज्ञानिकों ने लगातार खोजों तथा प्रयोगों से ऊसर सुधार के लिये निम्न तकनीक अपनाने का सुझाव दिया—

(1) उत्तम सिंचाई जल की पर्याप्त सुविधा,

(2) भूमि को समतल करके जल प्रयोग के साथ लवणों को घुलकर बहाकर लवणों की मात्रा की जाती है।

(3) सुधारकों जैसे जिप्सम, पाइराइट्स की उपयुक्त मात्रा का प्रयोग तथा

(4) संतुल कृषि विधियां—फसल चक्र, लवण अवरोधी प्रजातियों को उगाना।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. क्षारीय भूमि के निर्माण तथा वितरण के कारण बताइये।
2. क्षारीय भूमि कितने प्रकार की होती है, इस वर्गीकरण का आधार क्या है ?
3 अम्लीय तथा क्षारीय भूमियों के अन्तर बताइये।
4. क्षारीय भूमि में पौधों की वृद्धि क्यों नहीं होती ? क्षारों को सहन करने वाले पौधे तथा फसलों को बताइये।
5. क्षारीय भूमि के उन्मूलन से किस वर्ग की भूमियां को सुधारा जा सकता है ? प्रयोग विधि के गुण व दोष बताइये।
6. क्षारीय भूमियों को सुधारने की विभिन्न विधियों का संक्षेप में वर्णन करिये।
7. क्षारीय लवणों को रूपान्तरित करने के लिए कौन-कौन से पदार्थ प्रयुक्त किये जाते हैं, ये किस प्रकार कार्य करते है ?
8. लवणीय तथा लवणयुक्त क्षारीय मृदा में अन्तर बताइए।

---

14. भारत एवं राजस्थान की मिट्टियाँ

(Soils of India and Rajasthan)

भारत की मिट्टियाँ

विश्व के सबसे विशाल महाद्वीप एशिया के दक्षिणी भाग के मध्य में भारत देश स्थित है जिसके उत्तर में चीन, नेपाल तथा भूटान, दक्षिण में श्रीलंका व हिन्द, महासागर पूर्व में बंगला देश व बंगाल की खाड़ी और पश्चिम में पाकिस्तान व अरब सागर हैं।

यह विषवत रेखा के उत्तर 8°4′ से 37°6′ उत्तरी अक्षांश तथा 68°7′ से 37°27′ पूर्वी देशान्तर तक फैला है। कर्क रेखा अर्थात 23½° उत्तरी अक्षांश, देश के मध्य में गुजरती हैं जो भारत को दो भागों में बांटती हैं–1. उत्तरी भारत जो शीतोष्ण कटिबंध तक तथा 2. दक्षिण भारत जो उष्ण कटिबंध तक फैला है।

भारत की उत्तर से दक्षिण तक की लम्बाई लगभग 3214 कि. मी. तथा पूर्व से पश्चिम तक की चौड़ाई लगभग 2933 कि. मी. है। देश का क्षेत्रफल 32,87,782 वर्ग कि. मी. है। इसकी स्थलीय सीमा 15,200 कि. मी. तथा तटीय सीमा 6100 किमी. लम्बी है।

भारत एक विशाल देश है जो धरातल की दृष्टि से एक समान नहीं है। इसे निम्नलिखित पाँच भागों में विभक्त किया जाता है—

1. उत्तरी पर्वतीय प्रदेश।
2. उत्तरी भारत का बड़ा मैदान
3. दक्षिण का पठार
4. समुद्र तटीय मैदान
5. थार का मरुस्थल

1. उत्तरी पर्वतीय प्रदेश—अति प्राचीनकाल में विद्वानों के अनुसार दक्षिण भारत के पठारी भाग को छोड़कर शेष भाग पर टेथीस नामक सागर था जो कालांतर में मिट्टी जमा होने और पृथ्वी की आंतरिक हलचल से ऊँचा उठ गया। ये नवीन मोड़दार पर्वतीय श्रेणियां हैं। ये विश्व की नवीनतम पर्वत श्रेणियाँ हैं।

यह उत्तरी सीमा पर लगभग 2400 किमी. लम्बाई और औसत 240-320 किमी. चौड़ाई में तलवार की भांति फैला है। इस पर्वत माला को तीन भागों में बांटा गया है—

(i) महा हिमालय—इसे वृहत या मुख्य हिमालय कहते है जिसमें विश्व की सर्वोच्च ऊंची चोटी माउण्ट एवरेस्ट या गौरी शंकर (8848 मीटर) स्थित है। अन्य ऊंची चोटियां धवलगिरि, नंदादेवी, नंगा पर्वत कंचन जंगा, बद्रीनाथ आदि हैं। ये सदैव ही ऊंचाई के कारण बर्फ से ढकी रहती हैं।

आसाम की नागा, गारो, खासी, जयंतिया आदि पहाड़ी इसी भाग में है। अधिक वर्षा के कारण सदैव वनों से आच्छादित रहती हैं।

(ii) लघु हिमालय—यह महा हिमालय और वाह्यहिमालय के मध्य 1828-3000 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है जिसकी चौड़ाई 80-100 किमी. है। इस श्रृंखला में कहीं कहीं मैदान एवं घाटी है। कश्मीर की घाटी, पीर पंजाब श्रेणी भी स्थित है। इस पर्वतीय भाग के नीचे शिमला, नैनीताल, मसूरी, दार्जिलग पर्वतीय स्थान है जहां स्वास्थ्य हेतु काम आते।

(iii) उप हिमालय—इस श्रृंखला को वाह्य हिमालय या शिवालिक श्रेणियां कहते हैं, जो लघु हिमालय तथा गंगा सतलज के मैदान के मध्य है। यह हिमालय का नवीन भाग है। उत्तर पूर्व में 2400 किमी. लम्बाई के हैं, जिसकी चौड़ाई 10-50 किमी. है। इसकी श्रेणियां बालू, मिट्टी एवं कंकड़ से बनी हैं। चौरस घाटियां भी हैं जहाँ सघन खेती होती है। इसी घाटी में देहरादून व हरिद्वार हुए हैं।

यह घाटी प्राकृतिक सम्पदा के अपार भण्डार हैं। वर्ष भर बर्फ से ढके रहने रहने और मानसूनी पवनों को रोक कर वर्षा कराने में सक्षम के कारण इस पर्वत से निकली सभी नदियां वर्ष भर बहती है और मैदानी भाग को सिंचती हैं।

इस क्षेत्र में विविध वानस्पतिक साल, चीड़, देवदार, चन्दन आदि के वन, विभिन्न शीतोष्ण फलों के अलावा चाय, जूट, गन्ना, धान आदि उगाया जाता है।

2. उत्तरी भारत का मैदान—यह समतल उपजाऊ, घना बसा मैदानी भाग उत्तर के पर्वत भाग से दक्षिणी पठार के मध्य स्थित हैं जो हिमालय पर्वत से निकली गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र आदि नदियों से लाई मिट्टी से निर्मित पंजाब, उ० प्र०, बिहार, बंगाल, आसाम तक फैला मैदान है। यह मैदान 2400 किमी. लम्बा और 240-320 किमी. चौड़ा है, इस मैदान का ढाल क्रमिक है।

मैदान के ऊचे भाग को 'बांगड़' और नीचे को 'खादर' कहते हैं। मैदानी भाग की सबसे ऊंची भूमि दिल्ली के समीप हैं जो जल विभाजक का काम करती

है। इस विभाजक के पूर्व की भूमि का ढाल दक्षिण पूर्व को है। इधर गंगा व इसकी सहायक नदियां बहती हैं। पश्चिम में सतलज नदी का मैदान है। इस मैदान में पंजाब, हरियाणा, पूर्व राजस्थान, दिल्ली, उ० प्र०, बिहार, बंगाल, आसाम राज्य स्थित हैं।

इस मैदान की मिट्टी गहरी उपजाऊ है। वर्ष भर पानी देने वाली नदियों के कारण सघन कृषि की जाती है। मैदान के पूर्व में चाय, जूट, चावल, गन्ना, पश्चिम में गेहूँ, कपास मुख्य फसलें हैं। यह मैदान व्यापारिक एवं औद्योगिक रूप से पूर्ण विकसित है।

3. दक्षिण का पठार—यह सबसे प्राचीनतम शैलों से निर्मित प्रदेश है, जो मूल भारत है। यह भाग ज्वालामुखी से निकली लावा मिट्टी से बना है जिससे खनिज सम्पदा अधिकता से पाई जाती है, दक्षिणी पठार कठोर रवेदार चट्टानों से बना है।

इसकी आकृति त्रिभुजाकार है जिसका आधार उत्तर में विन्ध्याचल पर्वत तथा भुजायें पूर्वी तथा पश्चिमी घाट है और शीर्ष पर नीलगिरी पर्वत है। इसका ढाल पूर्व की ओर है।

इसके उत्तर-पश्चिमी भाग काली मिट्टी का क्षेत्र है जिसमें छोटा नागपुर, मैसूर का पठार, राजपूत उच्च भूमि आदि। अनेक नदियां कृष्णा, कावेरी, महानदी, गोदावरी, नर्मदा, ताप्ती एवं इनकी सहायक नदियां बहती है।

पश्चिमी घाट के वृष्टि छाया प्रदेश में आने से वर्षा कम होती है, जिससे तालाबों से सिंचाई की जाती है। इस प्रदेश कपास, ज्वार आदि अधिकता से पैदा होती है। बहुमूल्य मानसूनी वन हैं।

4. समुद्र तटीय मैदान—यह मैदानी पट्टी (i) पश्चिमी समुद्रतट तथा (ii) तटीय भागों में बंटा है जिसका निर्माण नदियों से लाई मिट्टी के जमने तथा तटवर्ती भागों के समुद्रतल से ऊपर उठने के कारण हुआ है।

1. पश्चिमी समुद्रतटीय मैदान— यह खम्भात की खाड़ी से कन्या कुमारी तक 50-60 किमी. चौड़ा मैदान है जिसके उत्तरी भाग को कोंकण तट कहते है जो सूरत से गोआ तक है दक्षिणी भाग को मालाबार तट कहते है जो गोआ से कन्याकुमारी तक है। मालाबार तट पर अपेक्षाकृत अधिक वर्षा होती है।

इस क्षेत्र की भूमि खनिज युक्त लेटिराइट भी है जिसमें चावल, रबड़, गर्म मसाले तथा गन्ना उगाया जाता है।

2. पूर्वी समुद्र तटीय मैदान—यह पूर्वी घाट व बंगाल की खाड़ी के मध्य स्थित है जो उड़ीसा तट से कन्याकुमारी तक 160-480 किमी. चौड़ाई में फैला है।

इसके उत्तरी भाग को उत्तरी सरकार तट या गोलकुण्डा तथा दक्षिणी भाग को को रोमण्डल या कर्नाटक कहते हैं।

इस मैदानी भाग में महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी के डेल्टा तथा बालू के ढ़ेर है। डेल्टा भाग काफी उपजाऊ है। इसकी प्रमुख फसलें धान, गन्ना, मूंगफली, तम्बाकू आदि हैं। तटीय भाग नारियल बहुतायत से होता है।

5. **थार का मरुस्थल**—राजस्थान के अरावली पर्वत के पश्चिम और उत्तर पश्चिम में विशाल मरुस्थल है जो 644 किमी. लम्बा तथा 160 किमी. चौड़ा है। कभी यह सर सब्ज मैदान था जो धीरे-धीरे विश्व के विशाल रेत के मैदान में बदल गया। इसमें रेत के स्थानान्तरित टीले भी हैं जिनकी अधोभूमि जलस्तर काफी नीचे है। इसे दो भागों में विभाजित करते हैं—

विशाल मरुस्थल तथा लघु मरुस्थल।

विशाल मरुस्थल कच्छ के रन के पास से उत्तर की ओर लूनी नदी तक फैला है। देश की पूरी सीमा रेखा इसी मरुस्थल के साथ है। लघु मरुस्थल जैसलमेर तथा जोधपुर के मध्य लूनी नदी से उत्तर तक फैला है जिसके मध्य का पठारी भाग है जिसमें चूने के भण्डार पाए जाते हैं।

जलवायु गर्म एवं शुष्क है जिसमे कंटीली झाड़िया उगती हैं दैनिक तापान्तर अधिक तथा वर्षा 25 सेमी. से भी कम होती है। वर्षा होने पर बाजरा आदि फसलें ले लेते हैं।

राजस्थान की मिट्टियां

राजस्थान का विस्तृत वर्णन जलवायु के अध्याय में किया जा चुका है जहाँ विविध भूमि तथा जलवायु के आधार फसलो का वर्णन किया गया है। राज्य में निम्न प्रकार की मिट्टियां पाई जाती है—

मरुस्थलीय मिट्टी—यह पश्चिमी राजस्थान के विशाल क्षेत्र में पाई जाती है। जिसमें नाइट्रोजन तथा जैविक पदार्थों की कमी होती है परन्तु लवणों की मात्रा अधिक होती है।

लाल-पीली मिट्टी—यह उदयपुर, भीलवाड़ा और पश्चिमी अजमेर में मिलती हैं।

भूरी मिट्टी—यह मिट्टी प्राचीन शैलो के विघटन से बनी है जो डूंगरपुर, दक्षिणी उदयपुर जिले मे पाई जाती है।

काली लाल मिट्टी—यह गहरे जमाव वाली काली मिट्टी कोटा, बूंदी और झालावाड़ जिले में मिलती है।

कॉंप मिट्टी—इस मिट्टी में फास्फेट और कैल्सियम की कमी होती है जो राज्य के पूर्वी भाग में पाई जाती है।

लाल काली मिट्टी—यह ग्रेनाइट और नीस के विघटित पदार्थों तथा काली मिट्टी के मिलने से बनी है जो चित्तौड़, बांसवाड़ा, भीलवाड़ा, बाड़मेर जिले के पूर्वी भाग में पाई जाती है।

भूरी काली मिट्टी—यह अरावली की लाल पीली और रेतीली मिट्टी के बीच के क्षेत्रों में मिलती है। इसमें क्षारीय तत्व अधिकता से पाए जाते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत की विभिन्न मिट्टियों का वर्गीकरण करिये ? तथा इनकी विशेषतायें लिखिये।
2. राजस्थान मे पाई जाने वाली विभिन्न मिट्टियों तथा इनमें होने वाली फसलो को लिखिये ?
3. (अ) उत्तरी भारत का मैदान
   (ब) थार का मरुस्थल

———

15. भू-परिष्करण के यन्त्र
(TILLAGE IMPLEMENTS)

भू-परिष्करण
(Tillage)

भूमि में सफलतापूर्वक फसल लेने के लिए कृषि क्रियाएँ आवश्यक हैं। वास्तव में मिट्टी तो फसलों के उत्पादन में एक माध्यम का कार्य करती है और उसमें पाये जाने वाले तत्व फसलों की वृद्धि करते हैं। इन तत्वों को पौधे तभी प्राप्त कर सकते हैं, जबकि सरल रूप में उपलब्ध हों। इनका सरल रूप में उपलब्ध होना भूमि की भौतिक दशा पर निर्भर करता है और भौतिक दशा में सुधार भू-परिष्करण द्वारा किया जाता है। अतः कृषि क्षेत्र में भू-परिष्करण अत्यन्त आवश्यक क्रिया है।

परिभाषा—"भूमि की जुताई, गुड़ाई आदि क्रियाओं को भू-परिष्करण कहते हैं।"

भू-परिष्करण, फसल उगाने के लिए मृदा को तैयार करने की वह पद्धति है जिसके द्वारा भूमि में पौधों की वृद्धि के लिए सभी अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण होता है।

भूमि की भौतिक दशा सुधारने के लिए जो कर्षण प्रक्रियायें की जाती हैं, उन्हें भू-परिष्करण कहते हैं।

भू-परिष्करण के उद्देश्य –

1. **मिट्टी की भौतिक दशा सुधारती है**—जुताई करने के बाद पाटा लगाने से मिट्टी मुलायम एवं भुरभुरी हो जाती है जिससे बीजों का अंकुरण शीघ्र और अच्छा होता है। भूमि में जड़ों के अच्छे विकास से पौधे स्वस्थ रहते हैं।

2. **मिट्टी में जल धारण करने की क्षमता बढ़ती है**—ग्रीष्म ऋतु की जुताई से मिट्टी तवे की तरह गर्म हो जाती है और जैसे ही प्रथम वर्षा का पानी गिरता है तो वह सबका सब उसी में शोषित हो जाता है। मिट्टी के भुरभुरी होने से पानी सतह से बह नहीं पाता है तथा काफी समय तक बना रहता है।

3. **मिट्टी में केशीय जल सुगमता से उपलब्ध होता है**—जुताई के बाद पाटा चलाने से कणों का आपस में सम्पर्क अधिक हो जाता है जिससे केशीय नलियों में

मजबूती आ जाती है जिससे बीजों के अंकुरण के लिए अधोमृदा से जल मिल जाता है।

4. जीवांश की मात्रा में वृद्धि होती है—समय पर जुताई, पाटा, निकाई-आदि क्रियाओं के करने से भूमि की सतह पर पड़ी सूखी पत्तियाँ पौधों के ठूंठ, जड़ें आदि मिट्टी में मिलकर सड़ जाती है और जीवांश की मात्रा बढ़ाती है।

5. भूमि में उपस्थित कीड़े आदि नष्ट हो जाते है—जुताई करने से भूमि में उपस्थित कीड़े-मकोड़े, उनके अण्डे आदि ऊपर आ जाते हैं जो टूट जाते हैं, मर जाते हैं तथा चिड़िया आदि चुनकर खा जाती हैं।

6. वायु-संचार बढ़ जाता है—जुताई आदि से भूमि के उलट-पुलट हो जाने से काफी खुल जाती है और उसमें वायु का आवागमन अधिक हो जाता है। इससे पौधों की जड़ों को अधिक वायु मिलती है और भूमि में उपस्थित उपयोगी शाकाणुओं की संख्या तथा क्रिया शीलता में वृद्धि होती है।

7. खर-पतवार नष्ट हो जाते हैं—भूमि की सतह पर उगे खरपतवार जुताई, निराई-गुड़ाई से नष्ट हो जाते है और मिट्टी में सड़कर पोषक तत्वों को बदल जाते हैं।

8 मृदा में जवांश खादें अच्छी तरह मिल जाती है—भूमि की ऊपरी सतह पर दी गई खादें जुताई करने पर मिट्टी में मिल जाती है। पोषक तत्व शकाणुओं की क्रियाओं से पौधों को आसानी से उपलब्ध रूप में आ जाते हैं।

9. मृदा जल को सुरक्षित रखा जा सकता है—सिंचाई के बाद ओट आने पर गुड़ाई करने से मिट्टी की सतह को पपड़ी भुरभुरी हो जाती है जिससे केशीय नलियों के ऊपरी भाग का सम्पर्क निचले भाग से टूट जाता है और जल वाष्प बनकर नहीं उड़ता है।

भू-परिष्करण के प्रकार भू-परिष्करण को दो भागो में विभाजित किया जाता है–

1. प्रारंभिक भू-परिष्करण. (Primary Tillase)

2. सम्बन्धित भू-परिष्करण (Scondary Tillage)

1. प्रारंभिक भू परिस्करण—खेत में बीज बोआई तक, खेत तैयारी के लिए जितने भी कृषि कार्य किए जाते हैं, 'प्रारंभिक-भू-परिष्करण' कहते हैं। इसमें जुताई करना हैरो तथा कल्टीवेटर चलाना बेलन या पाटा चलाना आदि सम्मलित किए जाते है।

उद्देश्य—1. जुताई के द्वारा मिट्टी को भुर-भुरा बनाकर बीजों के अंकुरण के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ प्रदान की जाती है।

2. खेत में उगे हुए खरपतवारों को नष्ट करके उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है।
3. भूमि को समतल बनाने के साथ नमी का संरक्षण हो जाता है जिससे सिंचाई तथा जल निकास की व्यवस्था करना आसान हो जाती है।
4. मृदा में जल धारण की क्षमता बढ़ जाती है।
5. मिट्टी के बारीक होने पर वायु का संचार भली भांति होता है जिससे बीजों का अंकुरण शीघ्र होता है तथा वृद्धि भी अच्छी होती है।
6. भूमि में प्रयुक्त जीवांश खादों तथा उर्वरक अच्छी तरह मिल कर पौधों के उपलब्ध रूप में हो जाते हैं।
7. भूमि की भौतिक दशा में सुधार होता है। कणों की संरचना ठीक होने से वायु और नमी अधिक मात्रा में रहती है जिससे उपयोगी शाकाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। उगे पौधों का जमाव मजबूती से हो जाता है।
8. भूमि में छिपे हानिकर कीड़े-मकोड़े, उनके अण्डे, लार्वा, प्यूपा आदि के सतह पर आने पर नष्ट हो जाते हैं।

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निम्नलिखित कार्य किए जाते हैं—

(i) मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई—इस जुताई से मौसमी घास भूमि में दब जाती हैं तथा स्थाई घासें—दूब, मोथा, आदि को खेत से चुनकर बाहर निकाल देते हैं। हानिकर कीट आदि भूमि की सतह पर आने पर सूर्य की तेज धूप व पक्षियों द्वारा नष्ट हो जाते हैं।

(ii) डिस्क देशी हल या कल्टीवेटर से जुताई—इस जुताई से मिट्टी भुरभुरी एवं बारीक हो जाती है जिससे भूमि जल सोखने, धारण क्षमता, वायु संचार बढ़ जाता है। शाकाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ जाती है तथा अंकुरण के लिए अनुकूल परिस्थितियां बन जाती है।

(iii) पाटा या रोलर का उपयोग—भूमि के ढेलों को तोड़कर बारीक तथा भुरभुरा करने मृदा जल का संरक्षण तथा वहन को समतल बनाते हैं।

(iv) असमतल भूमि को एक सार करने के लिए करहा, स्क्रेपर्स का प्रयोग करते हैं।

(v) भूमि मे दबी घास-फूस निकालने के लिए जुती भूमि मे सिंह पटेला, हैरो, हो या रैक चलाते हैं।

(vi) जैविक खादें, गोबर या कम्पोस्ट खाद को मिलाने का कार्य हल एवं कल्टीवेटर करते हैं।

(vii) फसलों के बीजों की बोआई का कार्य देशी हल या कल्टीवेटर में पोरा लगाकर सीड्ड्रिल, डिबलर आदि से करते हैं।

प्रयुक्त होने वाले यन्त्र—देशी हल, मिट्टी पलटने वाले हल, पाटा या बोलन विविध कल्टीवेटर, हैरो, हो, सीडड्रिल, डिबलर आदि।

2. **संबंधित भू-परिष्करण**—बीजों की बोआई के बाद फसलों की कटाई तक, अर्थात खड़ी फसल में यन्त्रों से किए जाने वाले सभी कार्य, द्वितीयक या संबंधित भू-परिष्करण (Inter cuture) कहते हैं। इसमें या सिचाई के बाद पपड़ी तोड़ना, निराई-गुड़ाई मिट्टी चढ़ाना, अवरोध पर्त बनाना आदि कार्य सम्मलित हैं।

उद्देश्य—फसलों की बोआई के तुरन्त बाद वर्षा हो जाने पर पपड़ी को तोड़कर बीजों के अंकुरण में सहायता मिलती है।

2. खेत में उगे खरपतवारों को नष्ट किया जाता है जिससे फसलों का अल पोषक तत्व सुरक्षित रहकर इनकी वृद्धि में सहायक होता है।

3. सिचाई के बाद गुड़ाई करके अवरोध पर्त के बन जाने से जल को वाष्प बनकर उड़ने से रोकता है।

4. कन्द, प्रकन्द वाली फसलों के कन्द, रूपान्तरित मूल तथा तनो पर मिट्टी चढ़ाने से उनके आकार मे वृद्धि होती है तथा सूर्य के प्रकाश से बचे रहते हैं।

5. शाखावार हित अधिक ऊंची बढ़ने वाली फसलों, गन्ने आदि, को गिरने से बचाव के लिए मिट्टी चढ़ा देते हैं।

प्रयुक्त होने वाले यन्त्र—कल्टीवेटर, हैरो, हो, रैक का प्रयोग, कुदाली, खुरपी, फावड़े करहा आदि।

भू-परिष्करण का भौतिक तथा रासायनिक प्रभाव

1. भौतिक प्रभाव—1. मृदा संरचना में सुधार होने से मिट्टी भुरभुरी हो जाती है।

2. भुरभुरी मिट्टी में जल सोखने तथा धारण करने की क्षमता बढ़ जाती है।

3. भूमि में रन्ध्राकाश की संख्या बढ़ जाने से वायु का संचार बढ़ता है। जिससे लाभदायक जीवाणु अधिक सक्रिय रहते हैं।

4. बीजों के अंकुरण के लिए अनुकूल परिस्थितियां सुलभ होती हैं।

5. भूमि में उगे खरपतवार, हानिकार कीट आदि नष्ट हो जाते हैं जिससे ... की अच्छी वृद्धि होती है।

रासायनिक प्रभाव—1. जुताई-गुड़ाई से भूमि में वायु संचार अच्छा होता है जिससे आक्सीकरण में वृद्धि होती है। मिट्टी के खनिज लवण घुलनशील लवण में बदल जाते हैं।

2. आक्सीजन भूमि में हानिकर लवण-फेरस सल्फाइड आदि के बनने से रोकता है।

3. मृदा-वायु में कार्बनडाई-आक्साइड अधिक एकत्रित नहीं हो पाती।

4. मृदा-ताप के अधिक होने पर आक्सीजन से नाइट्रीफिकेशन सुचारु रूप से होता है।

5. रासायनिक क्रियाओं से कार्बनिक पदार्थ घुलनशील रूप में आ जाने से ये पौधों को उपलब्ध हो जाते हैं।

भू-परिष्करण से हानि—जहाँ उचित रूप से किए गए भू-परिष्करण कार्यों से जितने लाभ हैं वहीं इनकी अधिकता से कुछ हानियाँ भी होती हैं। अत्यधिक भू-परिष्करण से भूमि की भौतिक दशा तथा भूमि में होने वाली रासायनिक तथा जैविक क्रियाओं पर बुरा प्रभाव भी पड़ता है।

1 मृदा का अधिक दब जाना—ट्रैक्टर आदि भारी मशीनों तथा यन्त्रों से अधिक मात्रा में जुताई करने पर मृदा दबकर काफी सघन हो जाती है तो भूमि में वायु संचार रुक जाता है जिससे सूक्ष्म जीवों-जीवाणुओं की संख्या में कमी आ जाती है और पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है।

2. जैवपदार्थों का आक्सीकरण—बार-बार जुताई करने से भूमि में दिया जैव-पदार्थ भूमि तह पर आ जाता है जो आक्सीकरण से नष्ट हो जाता है।

3. मृदा-अपरदन—जुताई तथा कर्षण क्रियाओं के अधिकता से करने पर, भूमि की संरचना तथा विन्यास नष्ट हो जाता है। मिट्टी बारीक हो जाती है जो तेज वायु तथा जल से नष्ट हो जाती है और भूमि अनुर्वर होने लगती है।

भू-परिष्करण की आधुनिक विचारधारा-भू-परिष्करण के बारे में शताब्दियों से लोगों में यही धारणा बन गई है कि खेत की जितनी अधिक जुताइयाँ करके तैयारी की जावे तो उतनी ही अधिक उपज मिलेगी। आधुनिक विचारधारा के अनुसार न्यूनतम भू-परिष्करण (optimum Tillage) को अपनाया जावे। परीक्षण से सिद्ध हो चुका है कि अधिकांश फसलों के लिए एक मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई तथा दो बार देशी हल या हैरो चलाना उपयुक्त रहता है।

जुताई (Ploughing)—हल से मिट्टी खोदना या पलटना, 'जुताई' कहलाता है जिससे मिट्टी बारीक और भुरभुरी हो जाती है। भूमि में जल और वायु का संचार बढ़ जाता है।

जुताई के उद्देश्य

(i) मिट्टी की ऊपरी पर्त को तोड़कर भुरभुरा एवं पोली बनाना।

(ii) भूमि में वायु का संचार बढ़ाना।

(iii) मृदा-जल की शोषण तथा धारण-क्षमता बढ़ाना।

(iv) घास-फूसों को नष्ट करना।

(v) बीज अंकुरण के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करना।

जुताई की सामयिकता (Timeliness of Tillage)—जुताई का कार्य मृदा की एक विशेष स्थिति में किया जाता है जिसे 'बा' या 'श्रोट' आना कहते हैं। श्रोट का पहिचान निम्न तरीकों से करते हैं—

1. देखकर—भूमि के ऊपरी धरातल पर हल्की सफेदी आ जाना।

2. चलकर—खेत में नंगे पावों चलने पर मिट्टी पैरों से दबे परन्तु चिपके नहीं।

3. थोड़ी मिट्टी देखकर—खेत की मिट्टी बनाकर उसे भूमि पर गिराने पर बिखर जाना, भूमि की जुताई की स्थिति प्रकट करती है।

मटियार, चिकनी तथा अन्य भारी मिट्टियों में गीली अवस्था में जुताई करने पर भूमि की भौतिक दशा खराब हो जाती है। मिट्टी सूखने पर कठोर ढेलो में बदल जाती है। इसी प्रकार भूमि के सूखने पर जुताई में परेशानी होती है तथा पशुओं पर अधिक खिचाव पड़ता है।

जुताई का समय—विभिन्न फसलों की बोआई के अनुसार जुताई का समय निर्धारित किया जाता है; जो निम्न है—

(1) ग्रीष्म ऋतु जुताई (Hot Weather Ploughing)—मार्च-अप्रैल में रबी की फसलों की कटाई जुताई मई-जून के माह मे की जाती है। इस समय मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करना अच्छा रहता है।

उद्देश्य—1 खेत में उगे स्थाई खरपतवार, ठूंठ आदि नष्ट हो जाते हैं।

2. मिट्टी के ऊपर नीचे जाने से भूमि खुल जाती है जिससे अधिक नमी नष्ट हो जाती है तथा भूमि तवे की भांति तप जाती है।

3. भूमि में उपस्थित हानिकारक कीट, उनके अण्डे, बच्चे आदि तेज धूप में होकर मर जाते हैं।

4. भूमि के गरम हो जाने तथा खुल जाने से वर्षा का प्रथम पानी शोषित होकर उर्वराशक्ति बढ़ाता है।

5. भूमि की जल-धारण की शक्ति बढ़ जाती है।

6. इस जुताई में भूमि पर बड़े ढेले आ जाते हैं जो हवा से कूड़ा, टहनी पत्ती आदि को खेत रोकते हैं जिससे जीवांश में वृद्धि होती है।

(2) वर्षा की जुताई (Rainy Season Ploughing)—वर्षा प्रारम्भ होते ही खरीफ की बोआई के लिए खेत की तैयारी प्रारम्भ कर दी जाती है। ग्रीष्म कालीन जुताई के बाद देशी हल या कल्टीवेटर से खेत की तैयारी की जाती है।

खरीफ से फसल न बोने या खेत को परती (सावना) रखने पर समयानुसार सितम्बर तक जुताइयां करके भूमि की नमी को सुरक्षित रखते हैं।

उद्देश्य—

1. वर्षा का जल भूमि में शोषित होने से इधर-उधर नहीं बहता है।
2. खेत में उगे खरपतवार भूमि में दबकर जीवांश पदार्थ में वृद्धि करते हैं।
3. मृदा-उर्वरता बढ़ जाती है जिससे फसल को अधिक पोषक तत्व मिलते हैं।
4. भूमि में जल शोषित हो जाने से भूमि-क्षरण कम होता है।
5. रबी की तैयारी में समय तथा व्यय कम लगता है।

इस समय खेत में प्रथम जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के बाद देशी हल या कल्टीवेटर का प्रयोग करते हैं। पाटा लगाने के बाद बक्खर भी प्रयोग किया जाता है।

3. जाड़े की जुताई (Winter Season Ploughing)—खरीफ की फसलों की कटाई के बाद रबी की फसलों की बोआई के लिए खेत की तैयारी की जाती है। यह जुताई सितम्बर अन्त से नवम्बर के प्रारम्भ तक की जाती है।

उद्देश्य—

1. खेत में अधिक मात्रा में सुरक्षित करना।
2. भूमि में उगे घास-फूस को जोत कर नष्ट करना।
3. मिट्टी को काफी बारीक तथा भुरभुरी बनाना।
4. भूमि को फसल बोआई के लिए तैयार करना।

इस समय मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई नहीं की जाती है। जुताइयां देशी हल, कल्टीवेटर या बक्खर से करते हैं। दिन में जुताई करके खेत को रात में खुला छोड़ देते हैं। प्रातःकाल पाटा लगा देते हैं जिससे ओस व नमी धरातल से वाष्पीकृत नहीं होती है और ढेले टूटकर बारीक हो जाते हैं।

जुताई की विधियां—तीन विधियां हैं—

(1) बाहर से भीतर की जुताई (Side to Centre Ploughing)—इसमें जुताई का प्रारम्भ खेत की मेंड़ से करके भीतर करते हैं जिस खेत के चारों ओर एक मेंड़ सी बन जाती है जिसे पीछा कूंड कहते हैं। जुताई समाप्ति पर एक बीच में अंतिम कूंड (Dead Furrow) बन जाता है।

इस विधि में खेत का किनारे का भाग ऊँचा तथा मध्य का भाग नीचा (तश्तरी की भांति) हो जाता है। देशी हल से जुताई करने में भूमि तल में कोई अंतर नहीं होता है।

(2) भीतर से बाहर की जुताई (Centre to side)—इस विधि में खेत के मध्य कूंड बनाकर इसके चारों ओर जुताई करते हैं। अंतिम कूंड बाहर की ओर समाप्त होता है। मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करने पर खेत के मध्य भाग ऊँचा तथा किनारे ऊँचे हो जाते हैं। अतः इस विधि के बाद बाहर से भीतर की ओर जुताई करनी चाहिए जिससे भूमि का तल समान बना रहे।

(3) किनारे से किनारे की जुताई—यह विधि टर्नरेस्ट हल से जुताई करने पर प्रयुक्त की जाती है। इसमें जुताई किनारे से प्रारम्भ करके दूसरा कूंड पहले कूंड के साथ बनाते हुए दूसरे किनारे की ओर ले जाते हैं। इसमें मिट्टी एक ही दिशा में पलटी जाती है।

ज्वार के लिए (15 × 45 या 20 × 50) सेमी.।
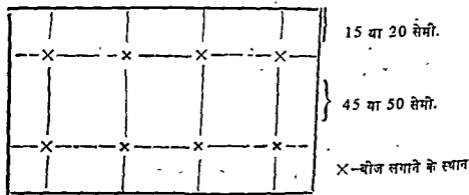
अरहर के लिए 20 × 60 सेमी. अथवा 25 × 75 सेमी.

20 अथवा 25 सेमी.

60 या 60 सेमी
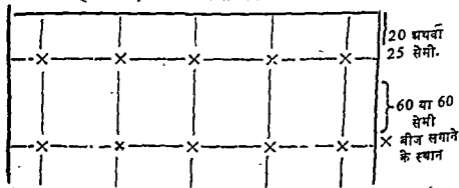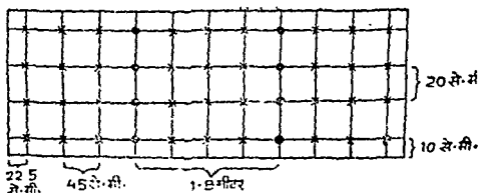
× बीज लगाने के स्थान

X ज्वार के बीज लगाने के स्थान .. ● अरहर के बीज लगाने के स्थान
(तीन ज्वार की पंक्तियों के बाद एक अरहर की कतार)

(4) इस विधि में खेत को कई बराबर इलाइयों में बांट लेते हैं तथा पहली इलाई से जोतते हुए इसके दोनों ओर जोतते रहते हैं जब तक इलाई पूरी न जुत जाये। फिर इसी तरह दूसरी इलाई के आस-पास जुताई करते रहते हैं। लम्बाई में बची जमीन को अन्त में जोतकर जुताई पूरी की जाती है।

इस विधि को लगातार अपनाने पर खेत में नालियां व मेड़ें बन जाती हैं। अतः इलाइयों की लम्बाई-चौड़ाई घटाते-बढ़ाते रहने से ठीक बना रहता है।

भूमि के ऊपरी धरातल से मृदा जल को वाष्पीकृत होकर नष्ट होने से बचाने के लिए सतह पर कृत्रिम या प्राकृतिक रूप से तैयार की गई परत को, 'अवरोध पर्त' कहते हैं।

अवरोध पर्त के प्रकार—

(1) प्राकृतिक अवरोध पर्त—भूमि की ऊपरी पर्त की मिट्टी खुरपी, कस्सी, हैरो या हो की सहायता से भुरभुरी बना देते हैं जिससे केशीय नालियों का सम्बन्ध ऊपरी धरातल से हट जाता है और वाष्पीकरण से जल-ह्रास नहीं होता है।

(2) कृत्रिम अवरोध पर्त—भूमि के धरातल पर पंक्तियों में बोई फसलों के बीच के स्थान पर घास-फूस, गन्ने, धान की पत्तियां या पोलीथीन की चौड़ी पट्टियों के बिछाने से सूर्य की किरणें धरातल पर सीधी नहीं पड़ती हैं और मृदा जल वाष्पीकृत होकर वायुमण्डल में नहीं मिल पाता है।

अवरोध पर्त के लाभ

1. सिंचाई की कमी को पूरा करती है।
2. खरपतवार नष्ट हो जाते हैं।

3. मल्च क्रियायें पौधों की जड़ों की वृद्धि के लिए स्थान प्रदान करती हैं।
4. भूमि ताप नियन्त्रित रहता है जिससे फसल की अच्छी वृद्धि होती है।
5. भूमि में केशीय-लाभदायक जल सुरक्षित रहता है।
6. जीवाणुओं की क्रियायें सुचारुरूप से होती हैं।

कूंड़ (Furrow) के संबंध में कुछ बातें

कूंड़ (Furrow)—वह खाई जो भूमि में मिट्टी के काटने या पलटने के बाद बनती है।

कूंड़ का टुकड़ा (Furrow slice)—यह वह मिट्टी है जो फाल द्वारा कटे और पंखे (Mould Board) द्वारा उठा कर पलटी जाती है।

ताज (Crown)—कूंड़ के टुकड़े का ऊपर वाला भाग, ताज कहलाता है।

कूंड़ की दीवाल (Furrow wall)—कूंड़ का वह निचला भाग जिस पर हल का पेंदा फिसलता हुआ चलता है।

कूंड़ का पेंदा (Furrow Bottom)—कूंड़ का वह निचला भाग जिस पर हल का पेंदा फिसलता हुआ चलता है।

मृत कूंड़ (Dead Furrow)—यह वह कूंड़ जो है जो खेत की जुताई के बाद छूट जाता है। यह कूंड़ की अपेक्षा अधिक चौड़ा होता है।

कूंड़ पृष्ठ या हल रेखा (Back Furrow)—यह वह मेड़ है जो जुताई के प्रारम्भ करने पर ही पहली कूंड़ से बनती है।

कूंड़ की दीवाल का अग्रभाग (Face of Furrowwall)—यह वह मेड़ है जो ऊँचाई में हल के दावरोधी (Land Side) से बनता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भू-परिष्करण की परिभाषा दीजिए ? यह भूमि तैयारी के साथ फसलों की उपज में वृद्धि करता है, वर्णन करिए ?
2. जुताई क्या है ? यह क्यों आवश्यक है तथा खेतों में जुताई के तरीकों का वर्णन करिए ?
3. (अ) अवरोध पर्त मृदा नमी को किस प्रकार संरक्षित करती है ?
   (ब) भू-परिष्करण की सामयिकता क्या है, किस प्रकार मालूम की जाती है ?

16. भू-परिष्करण सम्बन्धी यन्त्र

(Tillage Implements)

भू-परिष्करण सम्बन्धी यन्त्रों को कार्य के अनुसार निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है—

1. जुताई सम्बन्धी यन्त्र—देशी हल, मिट्टी पलटने वाले हल ।

2. निराई-गुड़ाई सम्बन्धी यन्त्र—कल्टीवेटर, हैरो, हो, वीडर, रेक, खुरपी, फावड़ा, कुदाली, कस्सी ।

3. बुवाई सम्बन्धी यन्त्र—देशी हल, कल्टीवेटर, सीडड्रिल, डिबलर, प्लान्टर ।

4. भूमि को समतल करने सम्बन्धी यन्त्र—पाटा या पटेला, करहा रोलर तथा बकस्क्रैपर ।

5. मेड़ व नाली बनाने सम्बन्धी यन्त्र—रिजमेकर, बन्ध फार्मर आदि ।

6. फसल कटाई एवं मड़ाई सम्बन्धी यन्त्र—दरांती या हंसिया, थ्रेशर, विनोअर ।

7. अन्य यन्त्र—कुट्टी काटने की मशीन, कोल्ड, स्प्रेयर, डस्टर ।

1. जुताई सम्बन्धी यन्त्र

हल—खेत तैयार करने के लिए हल सबसे अधिक महत्वपूर्ण यन्त्र है ।

हल के कार्य—भूमि को तोड़कर मिट्टी को भुरभुरी कर देने के अतिरिक्त एक अच्छा हल निम्नलिखित कार्य भी सम्पादित करता है—

1. गहरी अच्छी पोत (मृदा वयन) की बीज शैया तैयार करना ।

2. घास-पात और बिना सड़े जैव-पदार्थ युक्त खाद को मिट्टी में ढक देना ।

3. खरपतवारों को नष्ट कर उनकी वृद्धि पर रोक लगाना ।

4. भूमि को भुरभुरी कर देना ताकि उसके भीतर वायु और प्रकाश पहुँच सके ।

5. भूमि की जल-धारण क्षमता बढ़ाना ।

6. कीटों के निवास स्थान तथा अण्डों सहित नष्ट कर देना ।

7. मृदा-क्षरण को रोकना ।

हलों के प्रकार (Types of Ploughs)

विभिन्न हल बैलों तथा शक्ति से चलाये जाते है । इनमें बैलों द्वारा खींचे जाने वाले हलों को निम्नलिखित दो भागों में बांटा जाता है—

1. ऐसे हल जिन्हें जोतते समय हल वाले को पैदल चलना होता है, वाकिंग प्लाउज (Walking Ploughs) कहलाते हैं।

2. ऐसे हल जिन्हें जोतते समय हल वाला सीट पर बैठकर चलाता है, इन्हें राइडिंग या सल्की प्लाउज (Riding of Sulky Ploughs) कहते हैं।
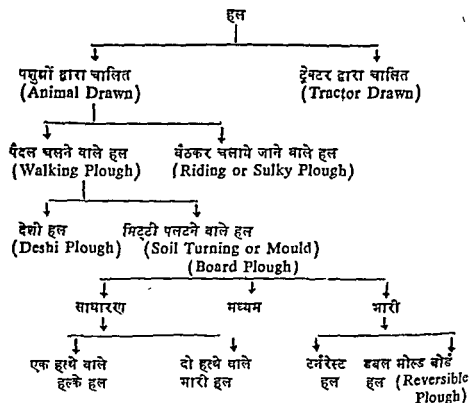
देशी हल

सच्चे अर्थ में देशी हल हल नहीं है; क्योंकि यह मिट्टी नहीं पलटता है; परन्तु आदि काल से यह यन्त्र हल के नाम से पुकारा जाता रहा है। सहस्रों वर्षों से देश का प्रधान कृषि यन्त्र रहा है और आज भी भारतीय कृषक जीवन में इस हल का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

देशी हल भारतीय किसान का बहु-उद्देशीय यन्त्र है। भूमि की जुताई के अतिरिक्त हमारे देश में इस हल को खाद मिलाने, बीज बोने, खड़ी फसल में घास-पात नष्ट करने और मिट्टी की गुड़ाई करने इत्यादि भू-परिष्करण सम्बन्धी कार्यों में प्रयोग करते है।

बैलों के आकार और भूमि की किस्म के अनुसार देश के विभिन्न भागों में देशी हल की बनावट और आकार भिन्न प्रकार का पाया जाता है।

देशी हल के भाग—इस हल के निम्नलिखित भाग होते है—

1. हत्या या परैंया	2. मुठिया
3. हरीश	4. परोठा या चौम
5. फाल	6. पच्चर या फाना

1. हत्या या परैंया—यह हल का मुख्य भाग होता है। कुंड बनाने का कार्य परैंया ही करता है। इसके निचले सिरे से हरीश, चोम जुड़ा होता है। इसके ऊपरी भाग पर मुठिया लगी होती है।

2. मुठिया—यह हत्या के ऊपरी सिरे पर खूंटी की तरह लगी होती है। जिसे पकड़कर हलवाला हल पर काबू रखता है।

3. हरीस—इसके ऊपरी सिरे पर दो या दो से अधिक खूंटियां, खांचे अथवा छिद्र बने होते हैं जिनकी सहायता से हल को जुए से जोड़ा जाता है।
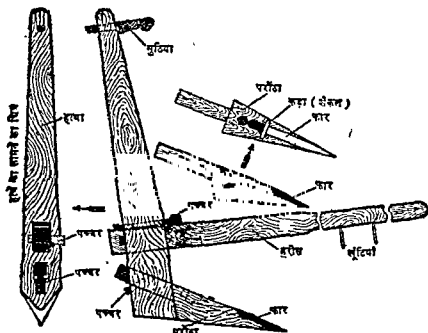
देशी हल और उसके विभिन्न भाग

4. परोठा या चोभ—यह तिकोने आकार का होता है। परोठा ही हल तले
ाम देता है। इसमें लोहे का फार लगा होता है। इस फार को लोहे के कड़े
परोथा से कसकर बांध देते हैं।

5. फाल या फार—यह लोहे का बना होता है। फाल चौकोर लोहे की
ो पीट कर बनाते हैं, जिसका अगला सिरा चपटा, नुकीला होता है। यह चोम
र मिट्टी चीरता है।

6. पच्चर या फाना—इसका एक सिरा पतला तथा दूसरा सिरा क्रमशः
होता है। लकड़ी की पच्चर अथवा फानों की मदद से हल के उपर्युक्त भाग
सरे से बंधे रहते हैं।

कार्यक्षमता—इन हल से एक दिन (8 घण्टे) में औसतन 0·3–0·5 हेक्टर
ोती जा सकती है।

गहरी अथवा उथली जुताई करना

देशी हल में जुताई की गहराई नीचे लिखे ढंग से घटाई-बढ़ाई जा सकती है—

1. हरीस की लम्बाई बढ़ा-घटा कर—हरीस में 2–3 खूटियाँ लगी रहती
हरी जुताई करने के लिए रस्सी को आगे वाली खूंटी में बांधा जाता है जिसके
हरीस की लम्बाई बढ जाती है और फाल गहरी लगने लगती है।

2. जुए की रस्सी को ढीला कड़ा करके—जुए की यह रस्सी जिससे हरीस
हती है, ढीला कर देने पर हरीस की लम्बाई बढ़ जाती है और फाल गहरा
गता है। रस्सी को कड़ा कर देने पर उल्टा असर होता है।

3. हरीस के ऊपर-नीचे की पच्चर को मोटा पतला करके—भी कूँड को
अथवा उथला किया जा सकता है।

मिट्टी पलटने वाले हल (Soil Turning Plough)

अच्छी खेती करने के लिए केवल देशी हल का प्रयोग पर्याप्त नहीं है। आधु-
ृषि यन्त्रों मे मिट्टी पलटने वाले हलो का विशेष स्थान है। मिट्टी पलटना
ों की विशेषता है।

एक परंथा वाले मिट्टी पलटने वाले हल

इस प्रकार के हलों में निम्नलिखित मुख्य हैं—

1. मेस्टन हल—कृषि विभाग द्वारा आविष्कृत हलों में मेस्टन सबसे हल्का
ोटा हल है। यह हल अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसका साधारण बैल
से खींच सकते हैं। इसका उपयोग वर्षा-ऋतु की प्रथम जुताई, हरी खाद
ादि के लिए किया जाता है।

बनावट—मेस्टन हल के निम्नलिखित प्रमुख भाग हैं—

(1) मुठिया—लकड़ी या लोहे का बना होता है।

2. हत्था या परैया—यह लोहे या लकड़ी का बना होता है। इनका निचला सिरा हरीस के साथ नट-बोल्ट से कसा होता है।

3. हरीस—मेस्टन हल की हरीस लकड़ी की बनी होती है। देशी हल के समान इसमें भी आगे के भाग में खूंटियां या छिद्र होते हैं।

4. पंखा—यह ढलवा लोहे या मध्यम मुलायम इस्पात का बना होता है। इसका मुख्य कार्य फाल द्वारा काटी गयी मिट्टी को पलटना होता है।

5. फाल—मेस्टन हल का फाल भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। फाल मिट्टी काटने का कार्य करता है। यह प्रायः ढलवा लोहे का बना होता है। कूंड की चौड़ाई फाल (फार) पर निर्भर करती है।

6. दाबरोधी (लैण्ड साइड)—यह भी ढलवां लोहे की बनी होती है। इसका मुख्य कार्य कूंड की मिट्टी का बगल का दबाव, जो पंखा पर पड़ता है उसे रोकना है। दाबरोधी के कारण हल मिट्टी के दबाव से एक तरफ झुकता नहीं है।

7. क्लैम्प—यह लोहे की छड़ का बना होता है। यह हरीस को हल के ढांचे से जोड़ता है।

कुंड का आकार—मेस्टन हल से बने कुंड की चौड़ाई और गहराई 12·5 से 15·0 सेमी. होती है।

हल का खिंचाव—मेस्टन हल का खिंचाव 40-50 कि. ग्राम होता है।

कार्यक्षमता—0·3 हेक्टर प्रतिदिन।

मेस्टन हल

2. गुर्जर हल—यह हल मेस्टन हल से बिल्कुल मिलता-जुलता है। जो बातें मेस्टन हल के लिए कही गई हैं। वे इस हल के लिए भी ठीक उतरती हैं।

3. प्रजा हल—यह मेस्टन हल की अपेक्षा आकार में कुछ बड़ा होता है इसकी कूंड, अपेक्षाकृत अधिक गहरी तथा चौड़ी बनती है। इस पंखा अधिक मरोड़ वाला होता है। अतः इसके द्वारा मिट्टी पलटने का कार्य अधिक अच्छा होता है। इस हल को हरी खाद की फसलों को दबाने के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है।

4. शाबास हल—यह हल मेस्टन हल की भाँति लोहे का बना होता है। परन्तु इसमें ढलवां लोहा (Cast iron) के स्थान पर इस्पात का प्रयोग किया जाता है। इसका फाल (फार) पक्के इस्पात का बना होता है। यह हल मटियार दोमट भूमि में अच्छा काम करता है। घिस जाने पर इसके फार को भट्टी में गर्म करके और पीट कर तेज किया जाता है। इसके कूँड की गहराई घटाने-बढ़ाने के लिए हरीस का बोल्ट खोलकर स्टैण्ड के ऊपर अथवा नीचे वाले सूराख मे लगा दिया जाता है। दूसरा तरीका देशी हल की भाँति ही है।
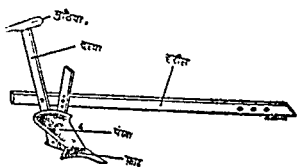
शाबाश हल

कुंड का आकार—गहराई 10–12 सेमी. तथा चौड़ाई 15 सेमी. होती है।

कार्यक्षमता—0·3 हेक्टर प्रति दिन।

हल का खिंचाव—40–50 किलोग्राम।

5. वाहवाह हल—इस हल के मुख्य भाग इस्पात के बने होते हैं और फार पक्के इस्पात का बना होता है। इसके कार्य एवं प्रयोग शाबाश हल के समान हैं। इस हल से साधारण जुताई के अतिरिक्त घास वाले खेत में स्वीप लगाकर चलाने में घास समूल नष्ट हो जाती है। इसमें रूटर लगाने से गहरी जड़ वाले खरपतवार सुगमता से उखड़ जाते हैं। फरोअर लगाकर इस हल से नालियाँ और मेड़ भी बनाई जा सकती हैं।
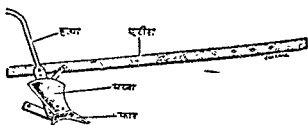
वाहवाह हल

कुंड का आकार—कुंड की गहराई 10-12 सेमी. तथा कुंड की चौड़ाई 15 सेमी.

कार्यक्षमता—0·3 हेक्टर प्रतिदिन।
खिचाव—40–50 किलोग्राम।

6. केयर हल (Care Plough)—केयर शब्द कॉपरेटिव फार अमेरिकन रिलीफ एवरी व्हेयर (Cooperative for American Relief Everywhere) का संक्षिप्त रूप है। यह हल उपर्युक्त संस्था द्वारा वितरित किया गया है। यह हल हरीस को छोड़कर पूरा लोहे का बना होता है।

इस हल में कूंड़ की गहराई घटाने-बढ़ाने के लिए तीन ढंग अपनाये जा सकते हैं—

1. हरीस के सुराखों द्वारा देशी हल की भाँति।

2. हरीस के पिछली भागों में लगे बोल्ट को खोलकर ब्रेकिट के ऊपर या नीचे वाले सूराख में लगाकर।

3. इस हल के स्टेंड के नीचे वाले भाग में लगे बड़े बोल्ट को ब्रेकिट के ऊपर या नीचे वाले सूराख में लगाकर।

कूंड का आकार—कूंड की गहराई 10–12 सेमी. तथा कूंड की चौड़ाई 15 सेमी.।

कार्यक्षमता—0·3 हेक्टर प्रतिदिन।
खिचाव—40–50 किलोग्राम।

राजस्थान हल नं. 1—यह दोमट एवं मध्यम मिट्टी में जुताई करने के काम आता है। यह मिट्टी को बायीं ओर पलटता है।

कूंड का आकार—इस हल से 7·5-15 सेमी. गहरा तथा 5 सेमी. चौड़ा मिट्टी का कटाव हो सकता है।

राजस्थान हल नं. 1 राजस्थान हल नं. 2

कार्यक्षमता—0·3 हेक्टर प्रतिदिन।
खिचाव—60–80 किलोग्राम।

राजस्थान हल नं. 2—इस हल को निजार या तोता हल भी कहते है। यह हल्की से भारी मिट्टी में प्रथम जुताई के लिए उपयुक्त माना जाता है। यह मिट्टी को दोनों तरफ पलटता है। इसका प्रयोग गन्ना आदि बोने तथा सिंचाई के लिए नालियाँ बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है।
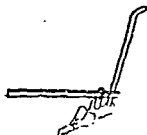
कूंड का आकार—इस हल में कूंड 16–17 सेमी गहरा तथा 10 सेमी. चौड़ा बनाया जा सकता है।

कार्यक्षमता—0·2 हेक्टर प्रतिदिन।

राजस्थान हल नं. 3—यह हल हल्की मिट्टी के लिए उपयुक्त हल है। यह बायीं ओर मिट्टी पलटता है।

कूंड़ का आकार—यह हल 7·5–15·0 सेमी. गहरा तथा 15 सेमी. चौड़ा कूंड़ बनाता है।

कार्यक्षमता—0·2–0 3 हेक्टर प्रतिदिन।
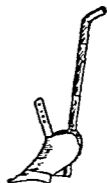
राजस्थान हल नं. 3

खिचाव—इस हल का खिचाव 50–75 कि. ग्राम है।

मिट्टी पलटने वाले भारी हल
अथवा
दो परैया वाले मिट्टी पलटने वाले हल

1. पंजाब हल—

बनावट—इस हल का ढांचा, पंखा व फार लोहे का होता है। ढांचा व पंखा ढलवां लोहा व फार सख्त ढला होता है। इसकी हरीस लकड़ी की बनी होती है। इस हल के भाग निम्न प्रकार है :

1. ढांचा	2. पंखा	3. दाबरोधी (लैण्ड साइट)
4. फार	5. हैण्डिल या परैया	6. हरीस
7. क्लैविस	8. घूमने वाला पहिया	9. सांकल
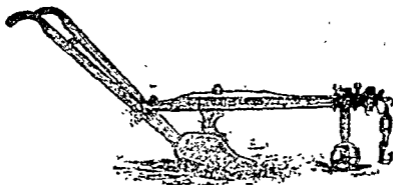
पञ्जाब हल

कूँड़ का आकार—यह हल 17 से 20 सेमी. गहरा तथा इतना ही चौड़ा कुँड काटता है।

कार्यक्षमता—0·40 हेक्टर प्रतिदिन।

खिंचाव—150 किलोग्राम (3 हण्डरवेट) शक्ति लगती है।

2. विक्ट्री हल (Victory Plough)

इस हल का प्रयोग मिट्टी पलटने के लिए किया जाता है। इस हल के मुख्य भाग तथा उनके कार्य निम्नलिखित हैं—
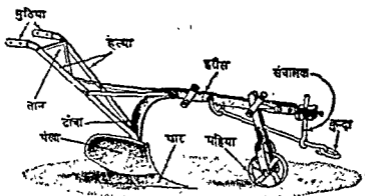
विक्टरी हल

1. ढांचा—इस भाग पर फार, दाब अवरोधी पंखा जुड़ा होता है जिसका कार्य इन तीनों भागों को आधार देना है। यह अधिकतर ढलवां लोहा या स्टील के बने होते हैं।

2. फार—फार हल का मुख्य भाग कहा जाता है जिसका कार्य मिट्टी को काटना होता है। यह स्टील, ढलवां लोहे का बना होता है।

3. पंखा—फार के ऊपर वाला भाग पंखा (मोल्ड-बोर्ड) कहलाता है। यह मिट्टी को पलटने में सहायता करता है। यह ढलवां लोहा या स्टील का बना होता है।

4. दाब अवरोधी (लैण्ड साइड)—हल का वह भाग जो कूँड की दीवाल से सटकर चलता है। इसका कार्य उस दबाव को रोकना होता है जो मिट्टी काटने से पड़ता है। यह अधिकतर ढलवाँ लोहा या स्टील की बनी होती है।

5. हरीस—हरीस की सहायता से हल को बैलों से जोड़ा जाता है। विक्ट्री हल में हरीस स्टील की बनी होती है।

6. क्लेविस—हल को बैलों से जोड़ने के लिए हरीस में जो प्रबन्ध होता है वह क्लेविस कहलाता है। इसके द्वारा कुँड की चौड़ाई व गहराई अधिक या कम की जाती है।

7. हत्था —विक्ट्री हल मे दो परेंथा या हत्था लगे रहते हैं जो श्रापस में जुड़े रहते हैं। इनकी मुठिया को पकड़ कर हल को सन्तुलित रखा जाता है। यह भाग भी स्टील का बना होता है।

8. पहिया—इसकी स्थिति फ्लेविस के पास हरीस के श्रागे वाले सिरे पर होती हैं। इसकी सहायता से हल को एक जगह से दूसरी जगह लाने व ले जाने में सुगमता होती है। इसका कार्य हल को संतुलित रखना एवं कूंड की गहराई कम या श्रधिक करना होता है।

कूंड़ का श्राकार—कूंड की गहराई 15 सेमी. तथा चौड़ाई 20 से. मी. तक हो सकती है।

कार्यक्षमता—0·40 हेक्टर प्रतिदिन

खिंचाव -90–100 कि. ग्राम

3. यू. पी. नं. 1 हल—

यह मिट्टी पलटने वाला मध्यम श्राकार का हल है। यह पूर्ण हल लोहे का बना होता है। इसकी हरीस पर एक विशेष प्रकार का ढांचा (फ्रांग) लगा होता है जिस पर कुंड बनाने वाला भाग (फरोग्रर) फिट करके सिंचाई की नाली या मिट्टी चढ़ाने का कार्य लिया जा सकता है। ढाचा पर एक दूसरे प्रकार का यन्त्र (स्वीप श्रटैचमेण्ट) लगाकर श्रवरोध परत या 5-8 सेमी. गहराई तक मिट्टी भुरभुरी कर सकते है।
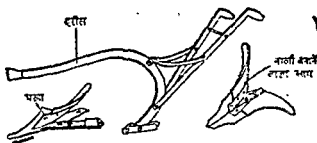
यू० पी० हल नं० १ के अलग-अलग भाग।

कार्यक्षमता— 0·4 हेक्टर प्रतिदिन

कूंड़ का श्राकार—कूंड़ की गहराई 10–15 सेमी. तथा चौड़ाई 15 सेमी. हो सकती है।

खिंचाव—100–120 किलोग्राम

4. यू. पी. नं. 2 हल—

यह मिट्टी पलटने वाला भारी किस्म का हल है। इस हल में रूटर लगा कर जड़ उखाड़ी जा सकती है। पंखा (मोल्ड-बोर्ड) लगाकर इस हल से जुताई-हरी खाद की पलटाई की जा सकती है।

कार्यक्षमता—0·40 हेक्टर प्रतिदिन ।

कूंड़ का आकार—इस हल से दोमट भूमि में 20 सेमी. चौड़ा एवं 15 सेमी. गहरा कूंड हो सकता है ।

खिंचाव—120–160 किलोग्राम ।

मिडिल ब्रेकर

(Middle Breaker or Double Mould Board Plough)

यह एक विशेष प्रकार का हल है जिसमें दो मोल्ड-बोर्ड एक ही ढांचा पर लगे रहते हैं । एक दायीं ओर तथा दूसरा बायीं तरफ मिट्टी पलटता है । इस हल में दाबरोधी (सैण्ड साइड) नहीं होती । लेकिन इसके स्थान पर एक दूसरा भाग होता है जिसे रडर (Rudder) कहते हैं । रडर के पिछले भाग में एक पैनी धार वाला ब्लेड लगा रहता है जो खेत की जुताई करते समय मिट्टी में चला जाता है और हल को दायें-बायें नहीं भागने देता । इस प्रकार रडर दाबरोधी का ही काम करता है ।

हल के कार्य—

(1) दो लाइनों के बीच की भूमि की जुताई ।
(2) नालियां बनाने का कार्य ।
(3) गन्ना की बुआई ।

टर्नरेस्ट हल (Turnwrest Plough)

इस हल की बनावट ऐसी है कि कूंड के अन्त में मोल्ड-बोर्ड तत्काल दूसरी ओर को बदला जा सकता है । ऐसा करने पर कूंड की मिट्टी लौटते समय भी पहिले कूंड पर ही गिरती है । इस हल में दाबरोधी की ओर एक लम्बा आंकड़ा (हुक) लगा होता है । यह हुक हरीस से जुड़ा रहता है । हुक एवं कुन्दे की सहायता से पंखा आदि को हल के दायीं तरफ से बायी तरफ तथा बायी तरफ से दायी तरफ कर सकते हैं ।
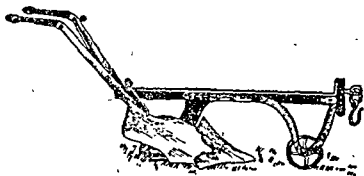
टर्नरेस्ट हल

देशी हल तथा मिट्टी पलटने वाले हल में अन्तर

देशी हल	मिट्टी पलटने वाले हल
1. इस हल के सभी भाग प्रायः लकड़ी के बने होते हैं केवल फार लोहे का बना होता है।	1. प्रायः सम्पूर्ण हल लोहे का बना होता है, कभी-कभी केवल हरीस लकड़ी की बनी होती है।
2. यह हल बनावट में सरल होता है तथा इसको गाँव का बढ़ई (खाती) ही तैयार कर सकता है।	2. देशी हल की अपेक्षा इसकी बनावट जटिल होती है। इसको गाँव में तैयार नहीं किया जा सकता।
3. कम कीमत पर मिलता है।	3. इसकी कीमत अपेक्षाकृत अधिक होती है।
4. इसमें खिंचाव कम पड़ता है।	4. इसमें खिंचाव अपेक्षाकृत अधिक होता है।
5. इसके द्वारा भूमि केवल काटी जाती है।	5. यह भूमि को काटकर मिट्टी को पलटता है।
6. यह 'V' आकार का कूँड़ काटता है इसलिए कूँड़ों के बीच कुछ बिना जुती जमीन रह जाती है।	6. यह 'L' आकार का कूँड़ काटता है जिससे कूँड़ों के बीच बिना जुती जमीन नहीं रह पाती।
7. इसके प्रयोग से खरपतवार पूर्णतः नष्ट नहीं होते।	7. इसकी जुताई से सभी खरपतवार काट कर मिट्टी के अन्दर दबा दिये जाते हैं।
8. इस हल के द्वारा हरी खाद वाली फसलें नहीं पलटी जा सकती।	8. इसकी सहायता से हरी खाद वाली फसलें भूमि में दबाई जा सकती हैं।
9. देशी हल के पीछे बुवाई की जा सकती है।	9. ये हल बुवाई करने में उपयोग नहीं किये जाते।
10. यह गुड़ाई का काम कर सकता है।	10. ये गुड़ाई का काम नहीं कर सकते।

2. निराई-गुड़ाई के यन्त्र

(क) कल्टीवेटर (Cultivators)—ये भी एक प्रकार के हल होते हैं जो देशी हल की तरह बहु-उपयोगी यन्त्र हैं जिससे जुताई, बोआई आदि के कार्य किये जाते हैं।

कल्टीवेटर के कार्य

(i) मिट्टी को बारीक व भुरभुरा बनाना।
(ii) ढेलों को तोड़कर उनको नीचे से ऊपर लाना।
(iii) जुताई के बाद खेत में दबी खरपतवार को बाहर निकालना।
(iv) खेत में खाद व छिटकवाँ बीज को मिलाना।
(v) पंक्तियों में बोई फसल जैसे–गेहूँ, कपास, गन्ना आदि में गुड़ाई करना।
(vi) कम समय में अधिक क्षेत्र की जुताई करना—यह देशी हल की तुलना में 3–4 गुना अधिक कार्य करता है।
(vii) कल्टीवेटर में बोने के नायले लगाकर बोआई कार्य करना।

कल्टीवेटर के प्रकार—ये निम्न प्रकार के होते हैं। कानपुर कल्टीवेटर, मेकार्मिक कल्टीवेटर, शाबास कल्टीवेटर, वाह-वाह कल्टीवेटर, आर. एन. कल्टीवेटर आदि।

कानपुर कल्टीवेटर—यह पाँच फालों का सीधा कल्टीवेटर है। इसमें फलों की दूरी कम-ज्यादा करने के लिए पेच का उपयोग करते हैं तथा गहराई कम ज्यादा करने के लिए पहिये को ऊपर नीचे करते हैं। इसे चलाने के लिए एक बैल जोड़ी तथा एक आदमी की आवश्यकता होती है।

कानपुर कल्टीवेटर

कूँड का आकार—7·5–12·5 सेमी.।
खिचाव—·5 क्विण्टल।
कार्यक्षमता—जुताई–हेक्टर, गुड़ाई 1·25–1·5 हेक्टर।

मेकार्मिक कल्टीवेटर—यह पूरा लोहे का बना होता है जिसमें फलों की संख्या 5–9 तक होती है। फलों की दूरी कम ज्यादा करने के लिए लीवर लगा होता है। कूँड़ों की गहराई, खिचाव तथा कार्यक्षमता कानपुर कल्टीवेटर की भाँति है।

मेकार्मिक कल्टीवेटर

वाह-वाह कल्टीवेटर—यह स्टील का बना होता है सिर्फ हरीस लकड़ी की होती है। फलों की संख्या के अनुसार 3 फाल वाला जूनियर तथा 5 फाल वाला सीनियर वाहवाह कल्टीवेटर कहलाता है। इसे जुताई, बोम्राई, निराई-गुड़ाई के काम में लाया जाता है।
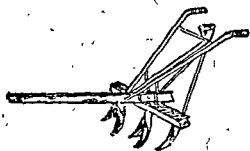
वाह-वाह कल्टीवेटर

(ब) हैरो (Harrow)—

यह सम्बन्धित भू-परिष्करण का उपयोगी यन्त्र है जिसको खड़ी फसल में अन्तरा कृषि क्रियाओं में प्रयोग किया जाता है। इनको साधारण बैलों तथा एक आदमी द्वारा चलाया जाता है।

हैरो के कार्य—

(i) देशी हल तथा कल्टीवेटर के कार्य करना, मिट्टी को बारीक, भुरभुरा करना।

(ii) जुताई के बाद खरपतवारों को निकालना।

(iii) बोम्राई के बाद वर्षा होने पर पपड़ी तोड़ना।

(iv) खाद और बीजों को मिलाना।

(v) अवरोध परत बनाना।

हैरो के प्रकार—बनावट के आधार पर निम्न प्रकार के होते हैं—

खूँटीदार हैरो तिकोना हैरो कमानीदार हैरो

स्पाइक टूथ लीवर हैरो राजस्थान हैरो तवेदार हैरो चैन हैरो

खूँटीदार हैरो—लकड़ी के फ्रेम में इस्पात की गोल या चौकोर, नुकीली टियाँ निश्चित दूरी पर लगी होती हैं। बैलों को जोड़ने के लिये कुन्दा लगा है।
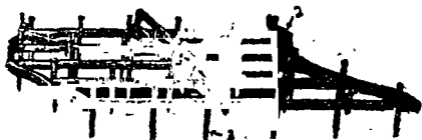
Spike Tooth Harrow.

कूँड की गहराई—5—7·5 सेमी.

कार्यक्षमता—1·5—2·5 हेक्टर

खिचाव—1·5–1·75 क्विण्टल

तिकोना हैरो—लकड़ी के तिकोने फ्रेम में लोहे की नुकीली खूँटियाँ समान दूरी पर लगी होती हैं। इससे उथली गुड़ाई तथा घास-फूस एकत्र किया जा सकता है।

तिकोना हैरो

खिचाव—6—·75 क्विण्टल
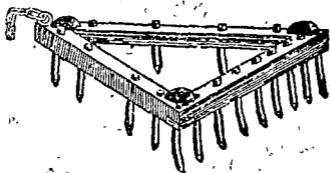
कार्यक्षमता—1·25—1·5 हेक्टर

कमानीदार हैरो (Spring Tine Harrow)—इसमें सभी भाग लोहे के बने होते हैं जिससे 5-7 स्प्रिंगदार अर्द्ध-चन्द्राकार लोहे की पटरियाँ चौखट में कसी

होती हैं जो एक लीवर द्वारा संचालित होती हैं । यह कंकरीली, पथरीली भूमि में उपयोगी है ।
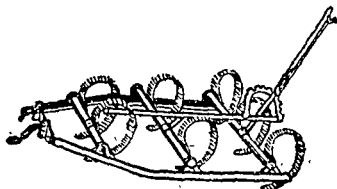
स्प्रिंगटाइन हैरो

भार—55 कि. ग्रा.
कूंड की गहराई—7·5 सेमी.
खिंचाव—1–1·5 क्विण्टल ।
कार्यक्षमता—1·25–1·5 हेक्टर ।

स्पाइक टूथ लीवर हैरो—लोहे की मजबूत चौखट तथा पटरियों में लोहे की नोकदार कई खूंटियां लगी होती हैं । चौखट के बीच में लगी पटरियां लीवर द्वारा संचालित होती हैं । इसे दूसरे स्थान पर ले जाते वक्त खूंटियां तिरछी तथा जुताई के समय समकोण या न्यून कोण पर रखी जाती हैं ।

स्पाइकटूथ हैरो
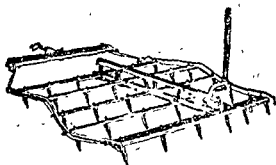
यह मिट्टी को भुरभुरा करने, पपड़ी तोड़ने, घास-फूस इकट्ठी करने के काम आता है । गहराई, खिंचाव कमानीदार हैरो की भांति ही है ।
कार्यक्षमता—1·25–1·5 हेक्टर ।

राजस्थान हैरो—यह मिट्टी के ढेलों को तोड़ने, भूमि समतल करने तथा घास-फूस इकट्ठा करने के काम आता है । इसमें एक फ्रेम में नुकीली खूंटियां 1–8 मीटर लम्बी पट्टी में लगी होती हैं ।
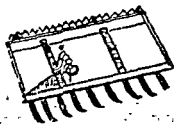
राजस्थान हैरो

खिचाव—60—80 किलो

कार्यक्षमता—2-2·5 हेक्टर।

तवेदार हैरो (Disc Harrow) इसमें इस्पात के तवे धुरे के साथ दो विपरीत दशाओं में लगे रहते हैं जो एक लीवर द्वारा संचालित होते हैं। यह कठोर भूमि तोड़ने के काम आता है।
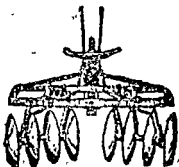
डिस्क हैरो

कूंड की गहराई—7·5–10·0 सेमी.
खिचाव—1·0–1·5 क्विण्टल।
कार्यक्षमता—1·25– 1.50 हेक्टर।

चैन हैरो—इसमें लोहे की जंजीरों का जाल होता है जिसमें जगह-जगह नोकदार हुक लगे होते हैं। यह पहली सिंचाई के बाद गेहूं व जौ की छोटी फसल में हल्की गुड़ाई करता है जिससे कल्ले अधिक निकलते हैं।

बक्खर—यह राज्य के अधिकांश भागों में काम में लाया जाने वाला यन्त्र है। जिसे पाती या कुली के नामों से पुकारते हैं। इसका अधिकांश भाग लकड़ी का बना होता है। केवल 0-65 सेमी. लम्बी लोहे की ब्लेड (पांस) होती है जो लोढ (बॉड़ी) में दंतुये से लगी होती है।

यह खरीफ तथा रबी की फसल की तैयारी में काम आता है जो खेतों में नमी संरक्षण के अलावा घास-फूस को काटता हुआ भूमि को समतल करता है।

कार्यक्षमता—·5—·75 हेक्टर।

कल्टीवेटर तथा हैरो की बनावट तथा कार्य में अन्तर

कल्टीवेटर	हैरो
1. कल्टीवेटर में गेज व्हील लगा होता है (वाह-वाह तथा शाबास कल्टीवेटर को छोड़कर) जिससे एक स्थान से दूसरे पर ले जाने में सुविधा रहती है।	1. हैरो में गेज व्हील नहीं होता है।
2. इनको जुताई के काम में ला सकते हैं।	2. जुताई नही की जा सकती है।
3. दो फालों की दूरी कम ज्यादा करने के लिए लीवर लगा होता है।	3. इस प्रकार की व्यवस्था नही होती है।
4. वाह-वाह, शाबास तथा आर. एन. कल्टीवेटर में बाँस या पोरा लगाकर बोआई कर सकते हैं।	4. हैरो से बोआई का कार्य नहीं किया जा सकता है।
5. इसे पंक्ति में बोई फसलों की निराई-गुड़ाई के काम लाया जाता है।	5. हैरो छिटकवाँ तथा पंक्ति में बोई गई दोनों ही फसलों में प्रयुक्त होता है।
6. इनको एक मीटर ऊची फसलों में चलाया जा सकता है।	6. हैरो को 25 से. मी. से अधिक ऊँची फसलों में नहीं चलाया जा सकता है।
7. कल्टीवेटर चलाने के लिये दो आदमियों की आवश्यकता होती है।	7. हैरो को चलाने के लिए एक आदमी की आवश्यकता होती है।

(स) हो (Hoes)—कल्टीवेटर और हैरो की अपेक्षा हल्का यन्त्र होता है, जिसे [illegible]

हो के कार्य—

(i) खेत की तैयारी के समय घास-फूस को एकत्र कर और निकाल कर मिट्टी को भुरभुरा करता है।

(ii) खड़ी फसल में निराई-गुड़ाई हो से की जाती है।

(iii) भूक्षरीय परत बनाकर जल वाष्पीकरण को रोकता है।

(iv) पहियेदार हो से मिट्टी चढ़ाने का कार्य भी किया जा सकता है।

प्रकार —

सिंह-हैण्ड हो

शर्मा हैण्ड हो

पहियेदार हैण्ड हो

अकोला हो

पैडी वीडर

रेक

फावड़ा

कुदाली या कस्सी

खुरपी

सिंह हैण्ड हो—उत्तरप्रदेश के कृषि संचालक डॉ. संतबहादुर सिंह द्वारा बनाया गया। इसमें एक लम्बे बांस के अगले सिरे पर त्रिशूल की तरह किन्तु नीचे की ओर मुड़ी हुई लोहे की छड़ से बनी रचना लगी होती है।

सिंह हैण्ड हो

कार्यक्षमता—यह कम घास वाली नम भूमि से घास-फूस निकालने तथा गुड़ाई करने के काम आता है। एक दिन में 0·2 हेक्टर भूमि की गुड़ाई करता है।

शर्मा हैण्ड हो—इसमें बांस के सिरे पर बतख के पैर के समान लोहे के चादर की बनी आकृति जुड़ी होती है।
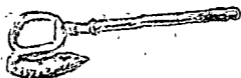
चित्र 7--शर्मा हैण्ड हो

कार्यक्षमता—इससे 3–4 सेमी. गहरी गुड़ाई की जाती है । एक दिन में एक आदमी 0·1 हेक्टर क्षेत्र की फसल की गुड़ाई कर सकता है ।

पहियेदार हैण्ड हो—हो लोहे का बना होता है । इसमें दो हत्थे तथा एक या दो पहिये जुड़े होते हैं । पहिये के पीछे 3-4 कांटे या खुरचा जुड़ा होता है ।

पहियेदार हैण्ड हो
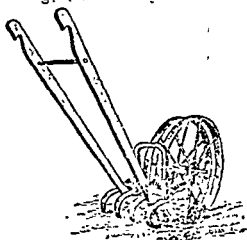
कार्यक्षमता—बागवानी के लिये उपयोगी है । एक आदमी एक दिन में 0·2 हेक्टर भूमि की निराई-गुडाई कर सकता है ।

अकोला हो—इसमें हरीश तथा हत्था लकडी का बना होता है । पिछले भाग पर एंगिल आयरन के ढांचे से तीन खुरपियाँ जुड़ी होती हैं । गहराई कम-ज्यादा करने के लिये खुरपियों को ऊपर नीचे किया जा सकता है ।
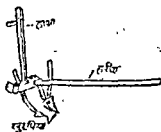
अकोला-हो

पंक्ति में बोई मूंगफली, गन्ना, कपास आदि फसलों की गुडाई के काम आता है । यह बैलों द्वारा चलाया जाता है ।

खिचाव—75 कि. ग्रा. ।

कार्यक्षमता—एक दिन में 0·8—10 हेक्टर क्षेत्र की गुड़ाई की जा सकती है ।

पेडी वीडर—धान की गुड़ाई अन्य फसलों से भिन्न होती है क्योंकि खेत में पानी भरा रहता है । एक विशेष प्रकार का यन्त्र होता है जिसमें घूमने वाले कांटे लगे होते है जो लकड़ी के दुहरे हत्थे से इस प्रकार जुड़ होते हैं कि चलते समय आगे पीछे घूम सकें ।

कार्यक्षमता—यह खेत में उगे खरपतवारों को उखाड़ कर मिट्टी में मिला देता है जो हरी खाद का काम करते हैं । एक आदमी एक दिन में 0·4–0·5 हेक्टर भूमि की गुड़ाई कर सकता है ।

रैक—यह हो के समान होता है जिसमें लकड़ी या बांस के सिरे पर लकड़ी या लोहे की चौखट के साथ लोहे की ए्ंटियां लगी होती हैं।

रैक
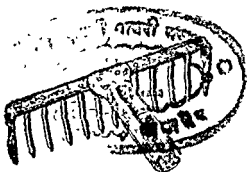
कार्य—खरपतवार एकत्र करने तथा अवरोध परत बनाने के काम आता है।

फावड़ा—यह भू-परिष्करण का छोटा तथा अति उपयोगी यन्त्र है। छोटे क्षेत्र की भूमि तैयार करने, समतल करने मेड़ें व नालियाँ बनाने, सिंचाई करने में नालियाँ खोलने तथा बिना जुते भाग की खुदाई के काम आता है।

फावड़ा

कुदाली या कस्सी—यह फावड़े की भांति निराई-गुड़ाई, मिट्टी चढ़ाने तथा खुदाई के काम आती है। इसका फाल (ब्लेड) फावड़े से कम चौड़ा होता है।
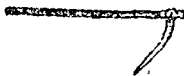
खुरपी—यह छोटा और साधारण उपकरण है जो पौध क्षेत्र से लेकर विभिन्न फसलों की निराई-गुड़ाई तथा हल्की खुदाई आदि के कार्य करता है।

कुदाली

खुरपी

3. बोआई सम्बन्धी यन्त्र—फसल उत्पादन के लिए तैयार भूमि में फसलों के बीजों को बोना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। बीज बोने के लिए फसल की किस्म, भूमि की तैयारी तथा बोने की विधि के अनुसार कई यन्त्र काम में आते हैं। जैसे—

(1) नाई या चोंगा (2) डिबलर

(3) बीज बोने की मशीन (सीड-ड्रिल) (4) प्लाण्टर

नाई या चोंगा—यह लकड़ी या लोहे का बना होता है जिसमें एक खोखली नली में कीप जैसी आकृति लगी होती है। इसको हल या कल्टीवेटर के पीछे लगा दिया जाता है।

कार्य क्षमता—इसमें दो आदमियों की आवश्यकता होती है, एक हल को चलाता है तथा दूसरा बीज डालता जाता है। एक दिन में 3 हेक्टर भूमि की बोआई करता है।

डिबलर—यह लकड़ी या लोहे का बना होता है। एक चौखटे में निश्चित दूरी पर खूंटियाँ लगी होती हैं और ऊपर एक हत्था लगा होता है।

कार्यक्षमता—हत्थे को पकड़ कर डिबलर से एक मनुष्य खेत में छेद बनाता जाता है और इन बने छेदों में लड़के बीज डालते जाते हैं। छोटे क्षेत्रफल पर गेहूँ, की बोआई का उपयोगी यन्त्र है। अधिक परिश्रम एवं समय लगने से अधिक प्रचलित नहीं हो सका। एक हेक्टर की बोआई एक दिन में छः आदमी तथा 12 लड़के कर सकते हैं।

सीड ड्रील—फसलों को पंक्ति में बोने के लिए वर्तमान मे बैल तथा ट्रैक्टर चालित ड्रिल काम में लाई जा रही। इनमें बोआई काफी कम समय में निश्चत दूरी एवं गहराई पर की जा सकती है।
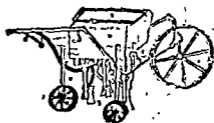
सीड ड्रिल के प्रकार—

1. External Forced Feed Type
2. Internal Forced Feed Type
3. Sofoon Feed Type.

इसमे खाद एवं बीज के लिये एक या अलग खानेदार बॉक्स होता है जिसमे दाँतेदार गरारी छिद्र के ऊपर लगी होती है। नीचे सुराख से पोलीथीन की नाई से जुड़ी होती है।

खिचाव—2·5 हण्डरवेट

कार्यक्षमता—बैलों से चलने वाली ड्रिल में बैलो को 1·5 क्विण्टल का खिचाव पड़ता है तथा एक दिन में 1.5-3 हेक्टर भूमि की बोआई की जाती है जबकि ट्रैक्टर वाली ड्रिल से अधिक क्षेत्र पर बोआई की जा सकती है।

प्लाण्टर—यह विशेष फसलें; जैसे–मक्का, कपास, मूंगफली, आलू, गन्ना आदि को बोने के लिए काम में लाये जाते हैं जिनको प्लाउण्डर कहते हैं। ये बैलों तथा ट्रैक्टर से चलने वाले होते है।

प्रकार—(i) आलू का प्लाण्टर (ii) कार्न प्लाण्टर (iii) गन्ने का प्लाण्टर।

कार्यक्षमता—इनको फसलों की बोआई की विधि के अनुसार व्यवस्थित किया जाता है। एक दिन में 2.5–3.5 हेक्टर भूमि की बोआई करते हैं।

4. भूमि को समतल करने वाले यन्त्र—भूमि की जुताई के समय इनको समतल करना अति आवश्यक होता है। भारी भूमि में 3 प्रतिशत तथा हल्की भूमि में 0.6 प्रतिशत से अधिक ढाल नहीं होना चाहिए। अधिक ढाल या असमतल होने पर भूमि को समतल करना पड़ता है। और खेत को समतल करना भी कम महत्व नहीं रखता। इस क्रिया के लिए कई यन्त्र काम में लाये जाते हैं। ये हैं–प्लैंक या पाटा या पटेला। रोलर या बेलन, लेवुलर, रेक आदि। हम इन सभी यन्त्रों पर पृथक-पृथक प्रकाश डालेंगे।

पाटा (Plank)—इसे पटेला, सुहागा नामों से भी पुकारते हैं। यह लकड़ी का एक तख्ता होता है जिसकी लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई मिट्टी की किस्म तथा बैलों की शक्ति पर निर्भर करती है। दो बैलों वाला पाटा हल्का परन्तु चार बैलों वाला भारी होता है।

कार्य—यह जुते हुए खेत के ढेलों को तोड़कर, बारीक कर मिट्टी को समतल तथा भुरभुरा करता है। अवरोध पर्त बना कर मृदा नमी को सुरक्षित रखता है। बोआई के बाद बीज को ढँक देता है।

सिंह पटेला—यह लकड़ी का बना होता है जिसके एक किनारे पर लोहे की छड़ की मुड़ी हुई नुकीली आकृति लगी होती है।

कार्य—यह भूमि को समतल तथा भुरभुरा करने के साथ-साथ इसके अन्दर घास-फूस को निकाला जाता है।

रोलर—यह लोहा, लकड़ी या पत्थर का बना होता है जिसे बैल तथा मनुष्य खींचता है।
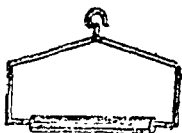
रोलर

कार्य—खेत के बड़े बड़े ढेलों को तोड़ने तथा सड़को पर मिट्टी आदि डालकर समतल करने एवं लान को दबाने के काम आता है। एक दिन में 2 हेक्टर भूमि समतल करता है।

लोहे का करहा—यह लोहे की चादर का 3 फुट लम्बा तथा 2.5 फुट चौड़ा होता है जिसमें पीछे की ओर हत्था तथा आगे दो कुण्डे लगे होते हैं। इसका भार लगभग 25 कि. ग्राम होता है। यह लकडी का भी बना होता है।
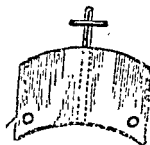
लोहे का करहा

कार्य – अधिक ऊँची-नीची भूमि को एक जोड़ी बैल तथा आदमी की सहायता से चलाकर समतल करते हैं।

बक स्क्रेपर—सूप के समान रचना वाला यह उपकरण लोहे का बना होता है जिसके आगे एक कुण्डा तथा पीछे दो हत्थे लगे होते हैं।

कार्य-विधि—कुन्दे में बैलों को जोड़ा जाता है तथा खेत से ऊँची मिट्टी भरकर हत्थो को हाथ से उठाकर निचले स्थान पर डाल देते है। इस प्रकार खेत समतल किया जाता है।

बक स्क्रेपर

5. मेंड एवं नाली बनाने वाले यन्त्र—खेत को बोआई से पूर्व सिंचाई के जल के सही वितरण के लिये छोटी-छोटी उचित-आकार की क्यारियों मे बाँटना होता है तथा सिंचाई के जल को पहुँचाने के लिये नालियाँ (बरहे) बनाना होता है। विशेष प्रकार की फसलो की बोआई मेड़ों पर की जाती है। छोटे क्षेत्र पर फावड़े से यह कार्य किया जाता है।

रिज मेकर—यह लकड़ी के वक्स के रूप में, जिसमें तीनों ओर तख्ते होते हैं, बना होता है। ऊपर के तख्ते पर चालक खड़ा होता है। बगल के दोनों तख्तों के बाहरी ओर लोहे की पत्ती लगी होती है जो मिट्टी काटने का काम करती है।

रिज मेकर

कार्यक्षमता- एक दिन में एक आदमी तथा एक बैल जोड़ी दिन भर में कई हेक्टर भूमि में क्यारियाँ एवं बरहे बना सकते हैं।

बंध फार्मर—इस यंत्र का हरीस तथा हत्था लकड़ी का बना होता है। इसमें मिट्टी पलटने वाले दो पंखे होते हैं। मेंड़ की चौड़ाई को नियन्त्रित करने के लिये पंखे के पिछले भाग में 3 जोड़ी छेद रहते है। इसे बैलों द्वारा चलाया जाता है।

बंध फार्मर

कार्यक्षमता—एक दिन में 2–2½ हेक्टर क्षेत्र में सीधी मेड़ें बनाई जाती हैं।

6. कटाई और मड़ाई के यन्त्र—

दराती—इसे हंसिया या दांतली भी कहते हैं जिसमें धार सीधी तेज तथा आरी की तरह दांते होते हैं।

चित्र 22–हंसिया
दराती

रोलर—यह लोहा, लकड़ी या पत्थर का बना होता है जिसे बैल तथा मनुष्य खींचता है।

रोलर

कार्य—खेत के बड़े बड़े ढेलों को तोड़ने तथा सड़कों पर मिट्टी आदि डालकर समतल करने एवं लान को दबाने के काम आता है। एक दिन में 2 हैक्टर भूमि समतल करता है।

लोहे का करहा—यह लोहे की चद्दर का 3 फुट लम्बा तथा 2.5 फुट चौड़ा होता है जिसमें पीछे की ओर हत्था तथा आगे दो कुण्दे लगे होते हैं। इसका भार लगभग 25 कि. ग्राम होता है। यह लकड़ी का भी बना होता है।

लोहे का करहा

कार्य – अधिक ऊँची-नीची भूमि को एक जोड़ी बैल तथा आदमी की सहायता से चलाकर समतल करते है।

वक स्क्रेपर—सूप के समान रचना वाला यह उपकरण लोहे का बना होता है जिसके आगे एक कुण्डा तथा पीछे दो हत्थे लगे होते हैं।

कार्य-विधि—कुन्दे में बैलों को जोड़ा जाता है तथा खेत से ऊँची मिट्टी भरकर हत्थो को हाथ से उठाकर निचले स्थान पर डाल देते हैं। इस प्रकार खेत समतल किया जाता है।

वक स्क्रेपर

5. मेंड एवं नाली बनाने वाले यन्त्र—खेत को बोआई से पूर्व सिंचाई के जल के सही वितरण के लिये छोटी-छोटी उचित आकार की क्यारियों में बाँटना होता है तथा सिंचाई के जल को पहुँचाने के लिये नालियाँ (बरहे) बनाना होता है। विशेष प्रकार की फसलों की बोआई मेड़ों पर की जाती है। छोटे क्षेत्र पर फावड़े से यह कार्य किया जाता है।

रिज मेकर—यह लकड़ी के बक्स के रूप में, जिसमें तीनों ओर तख्ते होते हैं, बना होता है। ऊपर के तख्ते पर चालक खड़ा होता है। बगल के दोनों तख्तों के बाहरी ओर लोहे की पत्ती लगी होती है जो मिट्टी काटने का काम करती है।

रिज मेकर

कार्यक्षमता - एक दिन में एक आदमी तथा एक बैल जोड़ी दिन भर में कई हेक्टर भूमि में क्यारियाँ एवं बरहे बना सकते हैं।

बंध फार्मर—इस यंत्र का हरीस तथा हत्था लकड़ी का बना होता है। इसमें मिट्टी पलटने वाले दो पंखे होते हैं। मेंड़ की चौड़ाई को नियन्त्रित करने के लिये पंखे के पिछले भाग में 3 जोड़ी छेद रहते हैं। इसे बैलों द्वारा चलाया जाता है।

बंध फार्मर

कार्यक्षमता—एक दिन में 2–2½ हेक्टर क्षेत्र में सीधी मेड़ें बनाई जाती है।

6. कटाई और मड़ाई के यन्त्र—

दंराती—इसे हंसिया या दांतली भी कहते हैं जिसमें धार सीधी तेज तथा आरी की तरह दांते होते है।
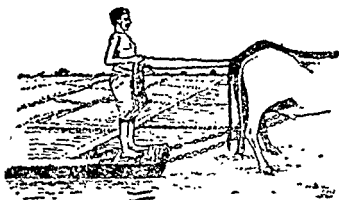
चित्र 22–हंसिया
दराती

कार्य—यह विभिन्न फसलों तथा हरी शाकों की कटाई के काम आती है।

रीपर—यह लोहे से बना विशेष प्रकार का यंत्र होता है जिसमें काटने के छुरे लगे होते हैं जो बैलों तथा ट्रैक्टर से चलाया जाता है। बैल से चलाने पर बारी-बारी से जोड़ी बदलनी पड़ती है।

कार्यक्षमता—एक दिन में 2–2 5 हेक्टर फसल की कटाई करते हैं।

मड़ाई के यंत्र—फसलों को काटने के बाद उनको खलिहान में डाल-कर 8-10 दिन तक सुखाने के बाद मड़ाई की जाती है। पहले बैलों से मड़ाई की जाती है जिसमें दो आदमी तथा दो जोड़ी बैल 3 दिन में 12-15 क्विण्टल लॉक तैयार करते हैं। इनमें समय अधिक लगता है, जिससे मड़ाई के यन्त्र काम में लाये जाते हैं।

आल पेड थ्रेशर—इसमें लोहे की चादर के 45 सेमी. व्यास के दातेदार 20 तवे लगे होते हैं जिसका भार 1.2 क्विंटल होता है। इनको चलाने में एक जोड़ी बैल तथा एक आदमी की आवश्यकता होती है।

कार्यक्षमता—30 घण्टे में 24 क्विंटल की लॉक तैयार की जाती है पावर थ्रेशर आ जाने से यह अनुपयोगी हो गया है।

आल पेड थ्रेशर
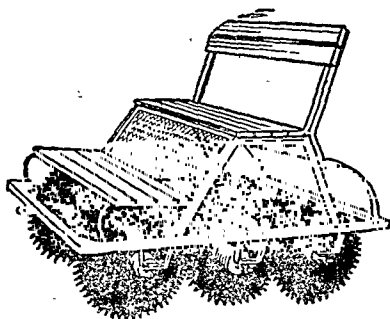
नोरांग थ्रेशर—इसमें 52.5 सेमी. व्यास के 19 तवे होते हैं जिससे 28 24 क्विटल लॉक तैयार की जाती है।

पैडी थ्रेशर—यह पूर्णतया लोहे का बना होता है जो दो आदमियों द्वारा चलाया जाता है। एक मशीन चलाता है तथा दूसरा आगे से धान के पूले लगाता जाता है।

कार्यक्षमता—एक दिन में 20 क्विटल धान निकाला जा सकता है।
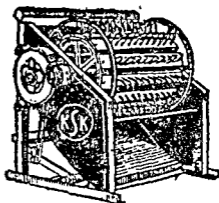
पैडी थ्रेशर

कम्बाइन हार्वेस्टर—यह ट्रैक्टर या बिजली द्वारा चालित होता है। बड़े-बड़े फार्मों पर यह इन दिनों अत्यधिक उपयोगी यंत्र है जिससे कटाई, मड़ाई तथा ओसाई का कार्य एक साथ होता रहता है।

कार्यक्षमता—इसकी कार्यक्षमता काटने के चाकू की लंबाई पर निर्भर करती है। 14 फीट लम्बे कटर 10 घण्टे के दिन में 18 हेक्टर गेहूँ की फसल की कटाई करके दाना निकाल देता है।

ओसाई के यंत्र (Winnowers)

ओसाई का पंखा—ये कई प्रकार के होते हैं जिनमें नीलोसेरी, इलाहाबाद, नागपुर, पूना तथा सिंह पंखे प्रयोग में लाये जाते हैं। मड़ाई किये गेहूँ, जौ, चना, ज्वार तथा धान की फसल की ओसाई की जाती है।
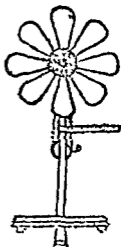
कार्यक्षमता—पंखे को आदमी गद्दी पर बैठकर पैरों से चलाता है। एक दिन में 10-15 क्विटल अनाज को साफ करके प्राप्त किया जा सकता है।

ओसाई पंखा

होशंगाबाद बिनोमर—यह किसानों के लिए उपयोगी यंत्र है जिसमें चार ब्लेडों का पंखा बालबियरिंग पर लगा होता है। पंखे के धुरे की गियर का सम्बन्ध हत्थे से होता है। दूसरे किनारे पर चलनी लगी होती है।
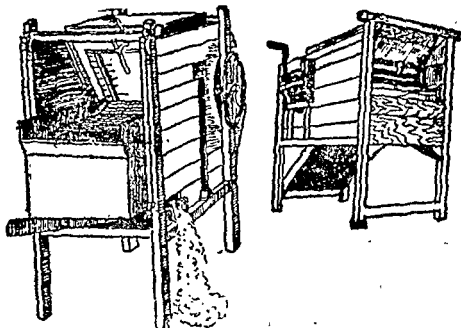
होशंगाबाद बिनोमर

कार्यक्षमता—मशीन से कार्य करने के लिए तीन आदमियों की आवश्यकता होती है। एक हैण्डिल से मशीन चलाता है, दूसरा मड़ाई किये दाने-भूसे की उचित मात्रा डालता है तथा तीसरा आदमी भूसा एक तरफ हटाकर दाने को एकत्रित करता है।

7. अन्य यंत्र—

(अ) चारा काटने के यंत्र —

गड़ासा—इसमें लोहे का 20–30 सेमी लम्बा फाल लकड़ी के साँचे मे लगा होता है जिसमें हत्था भी बना होता है।

कार्यक्षमता—इसमें हाथ से कुट्टी काटनी होती है जिसमें काफी श्रम तथा व्यय होता है। तीन आदमी एक घण्टे में हरी चरी 2 क्विंटल तथा कड़वी 1-1.2 क्विंटल की कुट्टी काटते हैं।

चारा काटने की मशीन (Chaff Cutter)—इस मशीन में दो गड़ासे पहिये में लगे होते हैं। चारा परनाली में लगाने पर दाँतेदार बेलनों से आगे खिसकता है और हत्थे के घुमाने पर पहिये में एकान्तर क्रम में लगे गंड़ासे चारे को बारीक काटते जाते हैं।

कार्यक्षमता—मुठिया को घुमाने के लिए दो आदमी तथा चारा लगाने के लिए एक लड़के की आवश्यकता होती है। एक घंटे में कड़बी 1.75-2.0 क्विंटल तथा 2.5-3 क्विंटल हरे चारे की कुट्टी की जा सकती है।

यह हाथ से चलने वाली मशीन के अलावा बैलों से तथा शक्ति (ट्रैक्टर बिजली मोटर तथा इंजिन) से चलाई जाने वाली होती है जो –10 क्विंटल कुट्टी एक घण्टे में काटते हैं।
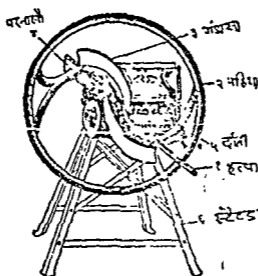
(ब) हरी खाद दबाने वाला यन्त्र—लकड़ी के फ्रेम में चार तवे लगे होते हैं जिसके आगे बैलों का जोड़ा जाता है।

कार्यविधि—हरी खाद की फसल को पाटा चलाकर गिराने के बाद इस यन्त्र को लाने पर पौधे छोटे-छोटे टुकड़ों में कट जाते हैं। फिर मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करके दबाने में सुविधा रहती है।

(स) गन्ने पेरने के कोल्हू (Cane Crushers)—गन्ना उत्पादक गन्ने की उपज का कुछ भाग मिल को दे देता है और शेष अपने यहाँ कोल्हू से रस निकाल कर गुड़ या शक्कर बनाता है।

प्रकार—(i) हाथ से चलाया जाने वाला कोल्हू
(ii) बैलों से चलाया जाने वाला कोल्हू

बैलो से चालित कोल्हू

(iii) शक्ति से चलाया जाने वाल कोल्हू

कार्यविधि—इससे रोलरों के द्वारा गन्ने को कुचलने से रस बाहर निकालने के लिए मार्ग बन जाता है, तत्पश्चात् दबाने पर रस बाहर आ जाता है। इनसे 60-70 प्रतिशत रस प्राप्त किया जा सकता है।

बैल चालित कोल्हू से एक घण्टे में 1.25-1.5 क्विटल गन्ना पेरा जाता है।

धूसन यन्त्र (Duster)—ये दो प्रकार-हस्त चालित एवं इन्जिन चालित, के होते हैं। हस्तचालित गोलाकार, जिसे सीने से लगाकर तथा लम्बाकार जिसे शरीर बांई ओर लगाकर प्रयोग में लाते हैं।

हैण्ड रोटरी डस्टर

कार्य विधि—डस्टर के हॉपर में धूल को 3/4 भाग तक भर कर ढक्कन बंद करें। डस्टर की बेल्ट को गर्दन से निकालते हुए ब्लोअर पर लगी प्लेट को सीने की ओर लगाते हैं। बांएँ हाथ से रिफ्लेक्टर के मुँह को पकड़कर नीचे करते है जिससे धूल पौधों पर बिखरे। दाये हाथ से हत्ये को घुमाने पर पंखा घूमने लगता है जिससे हॉपर से धूल चूषक पाइप से लेंस में होता हुआ रिफ्लेक्टर के बाहर बिखरने लगती है। एक हेक्टर फसल के लिए 20-30 किग्रा धूल आवश्यक है। एक दिन में 1.0 से 1.5 हेक्टर में दवा भुरक सकता है।

यह कम ऊँचाई वाली फसलों, शाकों तथा झाड़ियों में भुरकाव के लिए अच्छा है।

इंजिन चालित डस्टर इन्जिन या ट्रैक्टर से चलते हैं। एक दिन में 8-10 हेक्टर क्षेत्र पर भुरकाव करता है।

स्प्रेयर (Sprayer)—द्रव रूप में रसायनों का छिड़काव, स्प्रेयरों से करते हैं। ये चलाये जाने की स्थिति के अनुसार हस्त स्प्रेयर (Hand Sprayer) पाद स्प्रेयर (Foot Sprayer), पावर स्प्रेयर (Powar Sprayer) होते हैं। जिनको दो मुख्य वर्गों में वर्गीकृत करते हैं।

उच्च आयतन या हाईवोल्यूम स्प्रेयर (High Volume or Low Concentration)—इस वर्ग में हस्त, पाद तथा कुछ पावर स्प्रेयर आते हैं। इनमें अपेक्षाकृत अधिक घोल की आवश्यकता होती है। घोल को टंकी में भर दाब बनाते हैं जिससे घोल निकास नली से बाहर छोटी-छोटी बूंदों की फुहारों में आता है। इनको वायु दाब स्प्रेयर (Air Compression Sprayer) कहते हैं।

ये दाब के आधार पर निम्न मध्यम तथा उच्च दाब उच्च आयतन वाले स्प्रेयर होते हैं जिनके लिए 300-500, 600-1000. तथा 750-1250 लिटर घोल एक हेक्टर फसल के लिए आवश्यकता होती है। एक दिन में 1-1.5 हेक्टर क्षेत्र में दवा छिड़की जा सकती है।

न्यूनतम आयतन या लो वोल्यूम स्प्रेयर (Low Volume, High Concentration)—ये शक्ति चालित होते हैं जिनमें कम मात्रा के घोल को अधिक क्षेत्र पर छिड़का जाता है। इन्जिन द्वारा पंखा 4000–5000 चक्कर प्रति मिनट पर घूमने से घोल अत्यन्त सूक्ष्म फुहार (100–400 माइक्रान) में बदल जाती है जो

अधिक क्षेत्र पर फैल जाती है। एक हेक्टर की फसल में छिड़काव हेतु 50–150 लिटर घोल पर्याप्त होता है। इनके लिए घुलनशील चूर्णों से बने घोल प्रयोग न करें। इनकी कार्यक्षमता उच्च आयतन वाले स्प्रेयरों से 5–6 गुना अधिक होती है।

यन्त्रों का रख-रखाव—यन्त्रों को क्रय करने, उनको उपयोग में लाना उतना ही आवश्यक है जितना उनको प्रयोग के बाद सुरक्षित रखना है जिससे वे यथा समय काम में लाये जा सकें। इसके लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(i) कृषि कार्यों में उपयोग लाने के बाद यन्त्रों को अच्छी तरह धोकर, या उनकी मिट्टी आदि को साफ कर देनी चाहिए।

(ii) भण्डार में रखने से पूर्व यंत्रों के फ्रेम और उसके ऊपर लगे भागों पर पेण्ट के उतर जाने पर इन पर पेण्ट कर देना चाहिए, परन्तु पेण्ट लगाने से पूर्व यंत्रों को भली-भांति साफ कर लेना चाहिए।

(iii) भूमि में चलने वाले भागों पर प्रयोग किया तेल लगा देना चाहिए।

(iv) यत्रों के अन्य बेकार, टूटे भागों को बदल कर नये भाग लगा देना चाहिए।

(v) यंत्रों को भण्डार में सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिए जहाँ, वर्षा, धूप, से बचाव हो सके।

(vi) ग्रीस कपों में से पुरानी ग्रीस निकाल कर नई ग्रीस भर देना चाहिए।

(vii) यंत्रों से पशु आदि नही बांधने चाहिये।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. देशी हल तथा मिट्टी पलटने वाले हल में अन्तर बताते हुए किसी एक का नामांकित चित्र बनाकर कार्यक्षमता लिखो।
2. निराई-गुड़ाई मे प्रयुक्त होने वाले यन्त्रों के नाम लिखो।
3. कल्टीवेटर तथा हैरो में क्या अन्तर है? तिकोना हैरो का नामांकित चित्र बनाओ।
4. निम्न यंत्रों का किस काम में उपयोग होता हैं?

   (अ) बक्खर (द) गंडासा

   (ब) लिह हैण्ड हो (य) फावड़ा

   (स) पावर थ्रेशर (र) स्प्रेयर

17, खाद एवं उर्वरक
(Manures and Fertilizers)

खाद शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'खाद्य' से है जिसका अर्थ है भोजन जो खाया जावे। अंग्रेजी में खाद के लिये 'Manure शब्द है जो कि 'Manus' शब्द से निकला है जिसका शाब्दिक अर्थ है हाथ से काम करना, खनना। पूर्व में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता था जो वैज्ञानिक उन्नति के साथ इसका अर्थ 'हाथ से डाली हुई' से लिया गया है। वर्तमान में यह उन पदार्थों के लिये प्रयुक्त होता है जो खेत की उपजाऊ शक्ति में वृद्धि करते हैं जिनसे पौधे अपने पोषण के लिये आवश्यक तत्व ग्रहण करते हैं।

पौधे सजीव हैं। प्रत्येक जीवधारी के जीवित रहने के लिये भोजन की आवश्यकता होती है। शरीर के विभिन्न अंगों का निर्माण तथा इनकी क्रियाओं का संचालन भोजन में उपस्थित तत्वों से होता है, ये तत्व खाद्य पदार्थों से मिलते हैं। इसी भांति पौधों के जीवन के लिते भी खाद के रूप में खाद्य पदार्थ की आवश्यकता होती है।

'वे सब पदार्थ जो भूमि में मिलाये जाने पर उसकी उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं, खाद कहलाते हैं।'

'खाद का अभिप्राय है खाद्य पदार्थ जिससे पौधे अपने पालन-पोषण के लिये आवश्यक तत्व ग्रहण करते हैं।'

'जल को छोड़कर किसी पदार्थ का जब मृदा में समावेश किया जावे और वह मृदा की उर्वरता तथा पौधों मे बढ़ोत्तरी करे, खाद कहलायेगा।'

खाद तत्वों के ह्रास के कारण—

1. लगातार फसलें बोना—फसलें भूमि से आवश्यक तत्वों को ग्रहण करती रहती हैं जिससे भूमि में इन खाद्य तत्वों की कमी हो जाती है।

2. भू-क्षरण से—भूमि की ऊपरी सतह की उपजाऊ मिट्टी काफी मात्रा में प्रतिवर्ष वर्षा के पानी के साथ बह जाती हैं तथा तेज वायु से उड़ जाती है जिससे तत्वों में काफी कमी आ जाती है।

3. निक्षालन या रिसकर (Leaching)—भूमि से पोषक तत्व वर्षा के जल तथा सिंचाई के जल के साथ घुलकर भूमि की निचली तहों में चले जाते हैं। जो पौधों की पहुंच के बाहर होते हैं।

4. वीनाइट्रीकरण द्वारा (Denitrifacation)—भूमि से केवल नाइट्रोजन गैस के रूप में हानि होती है। रासायनिक क्रियाओं से नाइट्रेट के स्वतन्त्र नाइट्रोजन में बदलने से यह गैस के रूप में वायु मण्डल में उड़ जाती है।

5. जटिल यौगिकों का निर्माण—भूमि में ऐसे लवणों का निर्माण हो जाता है जिनसे पेड़-पौधे उग नहीं पाते हैं। भूमि में सोडियम सल्फेट, सोडियम कर्बोनेट लवणों की अधिक मात्रा पौधों के लिये अनुपयोगी रहती है।

अतः भूमि में किसी एक या अधिक ढंगों द्वारा इस कमी की पूर्ति करके उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं—

1. भूमि में पौधों के विभिन्न तत्वों की मात्रा में वृद्धि करके—नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश या अन्य किसी ऐसे पोषक तत्वो के मिलाने पर, जिनकी भूमि में कमी हो, भूमि की उर्वरता में सुधार होता है।

2. भूमि की भौतिक दशा में सुधार करके—भूमि की भौतिक दशा सुधारने तथा इसकी बुराइयों को दूर करने पर उपस्थित पोषक तत्व पौधों के लिये उपयोगी हो जाते हैं।

3. भूमि की जल धारण क्षमता में वृद्धि करके—पर्याप्त नमी उपलब्ध होने पर पौधे में उपस्थित पोषक तत्वों को सुचरु रूप से उपयोग में लाते हैं।

4. भूमि में खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करके—पर्याप्त मात्रा में जीवांश खादें मिलाने पर भूमि में उपस्थित अणु जीवाणु सक्रिय होकर भूमि की उर्वरता में वृद्धि करते है तथा आवश्यकतानुसार उर्वरको का प्रयोग किया जाता है।

5. दलहनी फसलें बोना—भूमि में दाल वाली फसलो के बोने से वायु मण्डल की नाइट्रोजन को स्थिर तथा संस्थापित करके उर्वरता को बढ़ाते हैं।

पौधों की वृद्धि के लिये आवश्यक भोज्य तत्व

पौधों की भोजन की आवश्यकता उस समय से प्रारम्भ हो जाती है जब कि पौधा अंकुरण के बाद बीज के संग्रहित भोजन को समाप्त कर चुकता है। पौधे पोषक तत्वों को भूमि से जड़ों द्वारा ग्रहण करते हैं।

परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि पौधों में लगभग 60 तत्व पाये जाते हैं जिनमें से केवल 16 तत्व ऐसे हैं जो पौधों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, जो निम्न हैं—

कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैग्नीशियम, गन्धक, लोहा, मैंगनीज, बोरान, तांबा, जस्ता, मौलीब्डेनम, क्लोरीन,

पौधों के आवश्यक तत्व

पौधे अपनी वृद्धि के लिये अधिक मात्रा में चाहते हैं	पौधे अपनी वृद्धि के लिये कम मात्रा में चाहते हैं	
मुख्य तत्व	वृहद् मात्रिक तत्व	सूक्ष्म मात्रिक तत्व
वायु या जल से प्राप्त	भूमि से प्राप्त होते हैं	भूमि से मिलते हैं
1. कार्बन (C) 2. हाइड्रोजन (H) 3. ऑक्सीजन (O)	1. नाइट्रोजन (N) 2. फास्फोरस (P) 3. पोटाश (K) 4. कैल्सियम (Ca) 5. मैगनीशियम (Mg) 6. गन्धक (g)	1. लोहा (Fe) 2. मैंगनीज (Mn) 3. बोरान (Bo) 4. तांबा (Cu) 5. जस्ता (Zn) 6. मोली ब्डेनम (Mo) 7. क्लोरीन (Cl)

कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन पौधों का 95 से 99·5% तक भाग बनाते हैं। इनमें से कार्बन और ऑक्सीजन को पौधे वायु से कार्बनडाई आक्साइड के रूप में लेता है तथा हाइड्रोजन भूमि जल से प्राप्त होता है। शेष 13 पोषक तत्वों को भूमि से ग्रहण करता है जिनमें N, P, K Ca, Mg तथा S की पौधों की वृद्धि के लिये अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता होती है।

जबकि शेष 7 तत्वों को पौधा अपेक्षाकृत सूक्ष्म मात्रा में चाहता है परन्तु सूक्ष्म मात्रिक तत्व भी पौधों के लिये वृहद तत्वों की भांति महत्व के हैं।

इनके अतिरिक्त, पौधो के लिये कुछ और तत्व कोबाल्ट, सोडियम, सिलिकन, आयोडीन तथा वेनेडियम लाभदायक होते हैं परन्तु इनका पौधो की वृद्धि पर विशेष प्रभाव नही पड़ता है तथा इनको पौधे भूमि या अन्य पदार्थों के उपयोग से प्राप्त कर लेता है।

इन तत्वों को उपलब्धता के आधार पर निम्न भागों मे वर्गीकृत किया जाता है—

1. प्रथम वर्ग-संरचना तत्व (Frame Work Elements)—इस वर्ग में आक्सीजन, कार्बन, हाइड्रोजन आते हैं जो पौधों की शरीर संरचना करते हैं। पौधो को ये वायु तथा जल से प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं।

2. द्वितीय वर्ग-मुख्य तत्व (Major Nutrients)—इस वर्ग में नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश तत्व आते हैं जिनकी अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है।

इनकी पूर्ति उर्वरकों से की जाती है जिससे इन्हे उर्वरक तत्व (Fertilizer Element) भी कहते हैं।

3. तृतीय वर्ग-भूमि सशोधक तत्व (Soil Amendments)—इस वर्ग मे कैल्सियम, मैग्नीशियम तथा गन्धक तत्व आते हैं। इनकी पूर्ति चूने के पत्थर, डोलोमाइट तथा उर्वरकों से होती है। ये भूमि मे अम्लीय एवं क्षारीय दशा प्रदर्शित करते हैं। इन्हें चूना तत्व (Lime Elements) भी कहते हैं।

4. चतुर्थ वर्ग-सूक्ष्म मात्रिक तत्व (Micro or Minor or Trace Elements)—इस वर्ग में लोहा, मैंगनीज, बोरान, तांबा, जस्ता, मालीब्डेनम तथा क्लोरीन तत्व आते है जिनकी बहुत कम मात्रा पौधो के लिये आवश्यकता होती है परन्तु पौधो के लिये बहुत महत्वपूर्ण हैं।

पौधों पर खाद तत्वों का प्रभाव

प्रत्येक खाद पौधों पर अपना प्रभाव डालती है। यह प्रभाव उनमें उपस्थित खाद्य तत्वो के प्रकार तथा स्वभाव के अनुसार होता है। अत: खाद के अध्ययन के लिये इनमें उपस्थित खाद तत्वों के कार्य तथा इनके प्रभाव की जानकारी होना अति आवश्यक है।

1. कार्बन (Carbon)—

प्रभाव—(i) पौधों की कोशिकाओं के निर्माण में अत्यधिक मात्रा मे आवश्यक है।

(ii) कार्बनडाई ऑक्साइड (CO_2) तथा पर्णहरित (Cholorophyl) प्रकाश की उपस्थिति मे पौधों को प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) क्रिया से भोजन निर्माण करता है। अत: कार्बन भोजन निर्माण में आवश्यक तत्व है।

स्रोत—पौधे इसे वायु मण्डल से प्रचुर मात्रा मे ग्रहण कर लेते है जिससे इसकी कमी नही हो पाती है। विभिन्न रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप प्राप्त (CO_2) भी पौधे ग्रहण कर लेते है।

2. हाईड्रोजन (Hydrogen)—

प्रभाव—(i) हाइड्रोजन ऑक्सीजन के साथ क्रिया करके जल निर्माण करते है जो पौधो का अत्यन्त आवश्यक तत्व है।

(ii) पौधो की वृद्धि तथा विकास के लिये आवश्यक है।

(iii) कार्बन के साथ क्रिया करके जल की सहायता से कार्बनिक पदार्थ बनाते है।

स्रोत—वायुमण्डल तथा जल से प्रचुर मात्रा मे प्राप्त हो जाता है।

आक्सीजन (Oxygen)—

(1) पौधो की श्वसन क्रिया के लिये आवश्यक है।

(2) पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया से प्राप्त ऑक्सीजन पानी का मुख्य अंग है।

(3) जड़ों के विकास के लिये भूमि में उपस्थित विभिन्न जीवाणुओं की सक्रियता आवश्यक है। जीवाणुओं की सक्रियता के लिए आक्सीजन आवश्यक है।

स्रोत– वायुमण्डल से प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है।

ये तत्व पौधों की शारीरिक संरचना तथा इनकी विभिन्न क्रियाओं के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं।

4. नाइट्रोजन (Nitrogen)—

अनुकूल प्रभाव 1. नाइट्रोजन सभी जीवित पदार्थों का आवश्यक अंग होता है। यह प्रोटीन तथा पर्णहरित का ही भाग है।

2. पौधों को गहरा रंग प्रदान करता है।

3. पौधों की वानस्पतिक वृद्धि (शाखा, पत्ती, तना) अधिक होती है।

4. भूमिगत जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि करता है।

5. चारे तथा दानों में प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाती है।

6. रस तथा गूदे को उत्पन्न करके मूली, सलाद, बन्द गोभी आदि के गुणों में वृद्धि करता है।

7. अनाज की फसलों के दाने को गूदेदार बनाता है तथा प्रोटीन की मात्रा को बढ़ाता है।

8. नाइट्रोजन से पौधों द्वारा फास्फोरिक अम्ल तथा पोटास के स्वांगीकरण में सहायता मिलती है।

अभाव का प्रभाव—1. पौधों की उचित वृद्धि नहीं हो पाती है और वे आकार में छोटे रह जाते हैं।

2. पौधों के पत्ते पीले तथा पीतरक्तता आ जाती है और ये बाद में सूख जाते हैं। पत्तों का सूखना निचले भाग से प्रारम्भ होकर ऊपर की ओर बढ़ता है।

3. फूल की पंखुड़ी झड़ जाती है तथा कलियां भी नष्ट हो जाती हैं।

4. दाने पतले तथा सिकुड़े हुये हो जाते हैं।

5. फसलें समय से पूर्व पक जाती हैं।

अत्यधिक मात्रा का प्रभाव—1. पौधों की वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है जिससे फसल देर से पकती है।

2. पौधों के तने अधिक लम्बे होने से कमजोर हो जाते हैं जिससे पौधों के गिरने का भय रहता है।

3. कीटों तथा रोगों का प्रकोप अधिक होता है।

4. दाना तथा भूसे का अनुपात घट जाता है जिससे उपज कम मिलती है।

5. फसलों तथा सब्जियों के गुणों में कमी आ जाती है और इनका भण्डारण अधिक समय तक नहीं किया जा सकता है।

6. गन्ने में चीनी का अनुपात कम हो जाता है।

पूर्ति के स्रोत—फसलों में नाइट्रोजन की कमी के लक्षण प्रकट होने पर तुरन्त ही किसी नाइट्रोजन प्रद उर्वरक का प्रयोग करें। यूरिया एक अच्छा उर्वरक है। शीघ्र लाभ हेतु 3 से 5% यूरिया का पर्ण-छिड़काव आवश्यकतानुसार 1 से 2 बार करें परन्तु कुछ विशेष सावधानी बरतें।

5. फास्फोरस (Phosphorus)—

अनुकूल प्रभाव—1. पौधों की जड़ों का विकास तथा वृद्धि शीघ्र होती है जिससे छोटे पौधे भी भूमि में दृढ़ तथा स्थिर होते हैं।

2. पौधों में शाखायें बढ़ जाती हैं जिससे बालियाँ अधिक लगती हैं।

3. खाद्यान्नों तथा अन्य फसलों के गुणों में सुधार होता है।

4. पौधों की कोशिकाओं का पर्याप्त विकास तथा पुष्ट शाखाओं के होने से पौधों की रोग-प्रतिरोधकता बढ़ जाती है।

5. दाने का अनुपात बढ़ जाता है।

6. फलीदार फसलों की जड़ों में अधिक संख्या में ग्रंथियों के होने से नाइट्रोजन स्थिरीकरण अधिक होता है।

अभाव का प्रभाव—1. पौधों की वृद्धि कम होती है जिससे ये आकार में छोटे रह जाते हैं।

2. प्रारम्भ में पत्तियाँ थोड़ी पीली पड़ने लगती हैं और अधिक कमी से पत्तियों की शिकायें बैंगनी या लाल रंग की हो जाती हैं।

3. दानों का आकार छोटा रह जाता है जिससे उपज में कमी आ जाती है।

4. तम्बाकू और कपास के पत्ते पर धुंधले रंग के, सेब में काँसे के रंग तथा आलू में धूसर रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। अवस्था से पूर्व पौधे काफी नष्ट हो जाते हैं।

5. दाने तथा चारे का गुण घट जाता है।

पूर्ति के स्रोत—खड़ी फसल में फास्फोरस की कमी से बचाव के लिये कोई विधि अभी तक ज्ञात नहीं हो सकती है क्योंकि इस अवस्था में उर्वरक प्रयोग से कोई लाभ नहीं है। अतः फसल बोने से पूर्व मृदा परीक्षण तथा फसल की मांग के अनुसार उर्वरकों का प्रयोग करें।

6. पोटाश (Potash)—

अनुकूल प्रभाव—1. पौधों की कोशिकाओं के निर्माण तथा विभाजन में सहायक होता है।

2. पर्णहरित अधिक बनता है जिससे अधिक कार्बोहाइड्रेट बनाकर पौधे दृढ़ हो जाते हैं।

3. पौधों में ओज (Tone) तथा पुष्टता (Vigour) आ जाती है।

4. पौधों में रोग प्रतिरोधी क्षमता बढ़ जाती है।

5. दाना मोटा तथा गूदेदार हो जाता है।

6 भूमिगत फसलों की वृद्धि में सहायक होता है।

7. नाइट्रोजन तथा फास्फोरस के प्रभावों को संतुलित करता है।

8. भूमि की भौतिक दशा में सुधार करके पिण्ड बनाने की प्रवृत्ति को रोकता है क्योंकि भूमि का कैल्सियम कार्बोनेट पोटेशियम कार्बोनेट मे बदल जाता है जिसकी पिण्ड बनने की प्रवृत्ति नही होती है।

9. भूमि तल से जल वाष्पन तथा कोशिका जल की हानि कम होती है।

अभाव का प्रभाव—1. पौधों की वृद्धि और विकास अच्छा नही होता है।

2. पर्णहरित कम बनने से CO_2 की स्टार्च में परिणति नहीं होती है।

3. पत्तियों के किनारे सूखे और झुलसे दिखाई देते हैं तथा पत्तियों की सतह पीली हो जाती है।

4. पौधों में फल कम तथा देरी से लगते हैं।

5. पौधों में रोगो का आक्रमण अधिक होता है।

6. टमाटर पर धब्बे, मक्का के दाने कम पड़ना तथा धान की पत्तियो पर नीलापन आ जाता है जिससे बाली मे दाने नहीं पड़ते हैं।

पूर्ति के स्रोत—फसल बोआई से पूर्व मृदा-परीक्षण कराकर आवश्यक उर्वरक डालें। साधारणतया उत्तरी भारत की मिट्टियों में इस पोषक तत्व की कमी कम मिलती है फिर भी स्थान तथा फसल की आवश्यकतानुसार उर्वरक का प्रयोग करें।

मृदा-संशोधक

7. कैल्सियम (Calcium)—

अनुकूल प्रभाव—1. स्वस्थ कोशिका भित्ति (Cell wall) के निर्माण में आवश्यक है।

2. पौधों के निर्माण में पोटेशियम तथा कैल्सियम का कार्य प्रतिपूरक है।

3. यह प्रोटीन गुणों तथा पोटेशियम कार्बनिक गुणों का आधारक है।

4. फूल तथा फल बनने की क्रिया को प्रोत्साहित करता है।

5. यह अविलेय पोटाश लवणों को प्राप्य रूप में सम्मोधित करके भूमि की भौतिक दशा को ठीक करता है तथा कार्बनिक अम्लों के विषैले प्रभाव को दूर करता है।

6. फलीदार पौधों के जीवाणु, जो वायुमण्डल से नाइट्रोजन को जड़ों की ग्रंथि में बांधते हैं, की क्रियाशीलता बढ़ जाती है।

अभाव का प्रभाव 1. पौधो का विकास अच्छा नही होता है।

2. पौधों के तने मोटे तथा काष्ठीय (Woody) नहीं हो पाते है।

3. मूल तंत्र का विकास न होकर ठूंठ-सा रह जाता है और प्रात: सड़ जाता है।

4. पत्तियों का आकार छोटा और विकृत हो जाता है। किनारे कटे-फटे जिन पर ऊत्तक क्षय के धब्बे हो जाते हैं।

5. उपयोगी जीवाणुओं की वृद्धि रुक जाती है।

6. भूमि की भौतिक तथा यांत्रिक दशा खराब हो जाती है।

7. *अनेक उपयोगी तत्वों की प्राप्यता कम हो जाती है जिससे फसलें कमजोर हो जाती हैं।*

पूर्ति के स्रोत—इसकी कमी की पूर्ति हेतु अम्लीय भूमि, जिनका मृदा समु कम होता है, में चूना (कैल्सियम कार्बोनेट) तथा क्षारीय भूमि, जिनका पी. एच. मान अधिक होता है, जिप्सम (कैल्सियम सल्फेट) प्रयोग करें। अन्य उर्वरकों से भी फसलों को प्राप्त हो जाता है। चूने का प्रयोग प्रति वर्ष न करके 3–5 वर्ष के अन्तर पर करना अच्छा रहता है।

8. मैग्नीशियम (Magnesium)—

अनुकूल प्रभाव—1. पर्णहरिमा में 2·7% मैग्नीशियम होता है जिससे पर्णहरिन निर्माण में सहायक है।

2 स्टार्च की गति में सहायक होता है।

3. फास्फोरस के ग्रहण तथा स्वांगीकरण मे सहायक है।

4. तेल तथा वसा निर्माण मे सहायक है।

5. मृदा उर्वरता बनाये रखने के लिये भूमि में उपस्थिति आवश्यक है।

अभाव का प्रभाव—1. कमी के लक्षण से पुरानी पत्तियों पर धारियां बन जाती है।

2. पत्तियां के किनारे व शिरायें लाल रंग की हो जाती हैं।

3. पत्तियां पीली होकर अन्दर की ओर मुड़ जाती हैं।

4. पत्तियों के किनारों तथा शिराओ पर हरितमाहीन होकर वे गिर जाती हैं।

5. पौधो की वृद्धि रुक जाती है जिससे उपज में कमी आ जाती है।

6. पालक, शलजम, तम्बाकू तथा मक्का पर इसकी कमी का सर्वाधिक प्रभाव होता है।

पूर्ति के स्रोत—डोलोमाइट, [illegible] में (मैग्नीशियम 20%) है, को मृदा-परीक्षण के अनुसार भूमि मे प्रयोग करें। इससे भूमि के विकार ठीक हो जाते हैं। विभिन्न

मैग्नीशियम उर्वरक मैग्नीसाइट, पोटेशियम मैग्नीशियम सल्फेट, मैग्नीशियम सल्फेट, मैग्नीशियम-अमोनियम फास्फेट, आदि के अलावा पशु-पक्षियों की विष्ठा का प्रयोग किया जा सकता है।

9. गंधक (Sulphur)—

अनुकूल प्रभाव—1. पौधों की वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है।

2. पर्णहरित के निर्माण मे सहायक होता है।

3. फलीदार फसलों की ग्रंथियों के निर्माण एवं विकास के लिए आवश्यक है।

4. जड़ों का अच्छा विकास होता है।

5. अनेक फसलें जैसे, तम्बाकू, चुकन्दर, अल्फाल्फा की उपज बढ़ जाती है।

6. आलू की फसल में तनागलन, कलंकिका रोग नहीं होता है।

7. सरसों के तेल, प्याज तथा लहसुन की गंध इसी के यौगिक के कारण होती है।

अभाव का प्रभाव—प्रायः पौधे में गंधकहीनता कम पाई जाती है। पर्याप्त गंधक हीनता के लक्षण नाइट्रोजन हीनता की भाँति हैं।

पूर्ति के स्रोत—प्राय: पौधे भूमि मे गंधक ग्रहण कर लेते हैं तथा पत्तियाँ कुछ मात्रा में वायु की SO_2 से कार्बनिक गंधक यौगिक बना लेते हैं। गंधक वाले उर्वरकों से मिल जाता है फिर भी आवश्यकतानुसार चूर्ण गंधक को नाइट्रेट उर्वरक के साथ प्रयोग करे। उदयपुर संभाग में इसकी कमी से फसलो में 'पीलिया रोग' हो जाता है जिससे तीन वर्ष के अन्तर पर बोआई से एक माह पूर्व 250 किलो जिप्सम या गंधक या हरा कसीस का प्रयोग करें।

सूक्ष्म पोषक तत्व—पौधो की स्वस्थ वृद्धि के लिए इन तत्वों की अल्प मात्रा की आवश्यकता है। ये पौधे के विकास को उद्दीप्त करते है और इन्हें रोगों से सुरक्षित रखते हैं। इसकी बड़ी अल्प मात्रा की आवश्यकता है। एक लाखवें भाग मे 0·03 भाग या इससे सान्द्रण पर्याप्त है। इनकी मात्रा एक लाखवें भाग में 0·2 से अधिक होने पर ये पौधों के लिये विषैले हो जाते हैं। अतः मृदा में सूक्ष्म विश्लेषण पर ही इनको प्रयोग करें।

10. लोहा (Iron)—

अनुकूल प्रभाव—1. कोशिका विभाजन के लिये आवश्यक तत्व है।

2. पर्णहरि का अंश न होने पर भी इसके निर्माण में सहायक होता है।

3. अन्य पोषक तत्वों के पोषण मे सहायता करता है।

4. प्रोटीन निर्माण मे सहायक है।

5. लोहे से पौधों में होने वाली आक्सीकरण, रिडक्शन आदि प्रतिक्रियायें पौधों के विकास एवं प्रजनन के लिये आवश्यक हैं।

अभाव का प्रभाव—1. इसकी कमी से 'पर्णीना' (Chlorosis) रोग हो जाता है जो पर्णहरित के अभाव का सूचक है।

2. नई पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं परन्तु पत्ती का सिरा, किनारा और शिरायें अन्त तक हरी बनी रहती हैं।

3. पत्तियाँ मुड़कर सूख जाती हैं।

4. क्षारीय भूमियों में इसकी कमी अधिक दिखाई देती है।

5. विभिन्न फसलों तथा नाशपाती, सेब, जामुन, बेर, नारंगी, नींबू आदि फलों में इस तत्व के अभाव में पीतता रोग हो जाता है।

पूर्ति के स्रोत—खड़ी फसल में जल में घुलनशील लोहे के किसी भी लवण का प्रयोग करें। साधारणतया फेरस सल्फेट का 0·4% का घोल प्रयोग किया जाता है। ठोस फेरस सल्फेट 10 से 30 किग्रा प्रति हेक्टर भूमि में मिला दें।

बड़े वृक्षों में लोहे की कंटियाँ (कील) ठोकने से पीतता रोग का निवारण हो जाता है। लोहे के लवणों का इन्जेक्शन वृक्षों में लगाना अधिक लाभप्रद तथा व्यावहारिक सिद्ध हुआ है।

11 मैंगनीज (Manganese)—

अनुकूल प्रभाव—1. पर्णहरित के निर्माण में सहायक है।

2. पौधों के तन्तुओं में आक्सीकरण तथा अवकरण (Reduction) क्रियाओं के लिये उत्प्रेरक कार्य करता है।

3. कुछ फसलें जैसे धान, गेहूँ, मक्का तथा टमाटर की उपज बढ़ाते है।

4. वायु-संचार की कमी से होने वाले प्रभाव को दूर करता है।

5. नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्शियम आदि तत्वों के स्वांगीकरण को बढ़ाता है।

अभाव का प्रभाव—1. पौधों में धूसर धब्बा (Grey Spot) रोग हो जाता है जिससे पत्तों पर हरे धब्बे हो जाते हैं जिनके किनारो पर लालिमा होती है। धीरे-धीरे धब्बा बढ़कर पूरे पत्ते को नष्ट कर देता है।

2. पूरा पौधा सूख जाता है।

3. इस तत्व रहित मिट्टी में उगे घास-पातो को पशुओं को खिलाने पर हड्डियों का विकास रुक जाता है तथा अन्य रोग हो जाते हैं।

पूर्ति के स्रोत—मैंगनीज सल्फेट जैसे घुलनशील लवण का पर्ण छिड़काव लाभप्रद रहा है। इसे भूमि मे भी प्रयोग कर सकते हैं।

12. बोरान (Boran)

अनुकूल प्रभाव—1. पौधो में कोशिका-विभाजन तथा प्रोटीन संश्लेषण में महत्वपूर्ण भाग होता है और कोशिका भित्ति का आवश्यक अंग है।

2. कार्बोहाइड्रेट के उपापचन और स्थानान्तरण मे सहायक है तथा पेक्टिन का निर्माण करता है।

3. पौधों की जड़ों द्वारा कैल्शियम के पोषण तथा क्रियाशीलता को बढ़ाता है।

4. पोटेशियम तथा कैल्सियम के अनुपात पर नियन्त्रण रखता है।

5. नाइट्रोजन के पोषण में सहायक है।

6. दाल वाली फसलों के पौधों की जड़ों में 'वैस्कुलर सिस्टम' की सहायता करता है जिससे शाकाणु सहयोगी बने रहते हैं।

अभाव का प्रभाव—1. पौधों की वृद्धि रुक जाती है।

2. पौधों के तन्तु बिखर जाते हैं जिससे पौधों में दरारें पड़ जाती हैं।

3. पत्तियों का हरापन कम हो जाता है।

4. तम्बाकू की कलियाँ हल्के रंग की होकर मर जाती हैं।

5. फूल गोभी में कुछ रंग आना (पीला पड़ना), शलजम में भूरा रंग आना तथा अल्फाल्फा का पीला पड़ना इसकी कमी का द्योतक है।

पूर्ति के स्रोत—पौधों पर बोरेक्स या बेरिक अम्ल का 0·2% घोल का छिड़काव करें। भूमि में 10 से 20 किग्रा प्रति हेक्टर सुहागा 2–3 बार में मिलायें।

13. तांबा (Copper)—

अनुकूल प्रभाव—1. पौधों के विकास तथा प्रजनन के लिए आवश्यक तत्व है। अधिकांश पौधों में इसकी मात्रा एक लाख भाग में 20 भाग होती है।

2. लोहे तत्व के उपयोग में सहायक है।

3. अनेक हीनता सूचक रोगों को नियन्त्रित करता है।

4. पर्णहरित संश्लेषण में सहायक है।

अभाव का प्रभाव—1. पूरे पौधे हरिमाहीन हो जाते हैं।

2. पत्तियों के अग्रभाग (अंतिम किनारे) सूखकर नष्ट हो जाते हैं जिससे उपज में कमी आ जाती है।

3. नींबू, नारंगी के पौधों से 'मारी रोग' (Die Back), कृष्णकरण (Reclamation) रोग हो जाते हैं।

4. खुबानी, बेर, सत्तालू में पीतता रोग हो जाता है।

अधिकता का प्रभाव—

तांबे की मात्रा अधिक होने पर पौधों पर विषैला प्रभाव पड़ता है। अम्लीय मृदा में इसके प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता है।

पूर्ति के स्रोत—खड़ी फसल में नीला थोथा (कॉपर सल्फेट) के घोल का छिड़काव लाभप्रद रहा है। इसके लिये 10 किग्रा नीला थोथा, 10 किग्रा बुझा हुआ चूना, 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। मृदा-परीक्षण के अनुसार 10 से 20 किग्रा तूतिया का चूर्ण या उसे उर्वरक के साथ मिलाकर प्रयोग किया जा सकता है।

14. जस्ता (Zinc)—

अनुकूल प्रभाव—1. पर्णहरित के निर्माण और पौधों की वृद्धि में सहायक है।

2. विभिन्न हार्मोन्स निर्माण में सहायक है।

3. पौधों में एन्जाइम्स की क्रिया को उत्प्रेरित करते हैं।

अभाव का प्रभाव 1. पौधों की लम्बाई कम हो जाती है और पत्तियां मुड़ जाती हैं।

2. नींबू वर्ग के पौधों में 'चितकबरे पत्ते' का रोग हो जाता है जिससे पत्तों के सिरो के बीच भाग पर पीले-पीले धब्बे पड़ने से चितकबरे दिखाई देते है।

3. फलदार वृक्षों में फूल और फल नही बनते हैं।

4. कपास, लोबिया, बाजरे में हीनता रोग हो जाते है।

5. धान में 'खेरा रोग' हो जाता है।

पूर्ति के स्रोत—जिंक सल्फेट का छिड़काव फसलों पर कमी के लक्षण दिखते ही करें। छिड़काव के लिये 5 किग्रा जिंक सल्फेट, 2·5 किग्रा बुझा चूना का 1000 लीटर का घोल प्रति हेक्टर की दर से छिड़कें, आवश्यकतानुसार 7 दिन बाद पुनः छिड़कें।

मृदा-परीक्षण के अनुसार जिंक सल्फेट का 10 से 40 किग्रा चूर्ण प्रति उर्वरक की भांति प्रयोग करें। जस्ते का भूमि पर विषैले प्रभाव की आशंका के कारण घोल का छिड़काव अच्छा रहता है।

15 मालीब्डेनम (Molybdenum) –

अनुकूल प्रभाव – 1. यह पौधों की आक्सीकरण क्रियाओं के संचालन को ठीक करता है।

2. नाइट्रोजन संस्थापन के लिये आवश्यक है।

3. इसकी उपस्थिति से लोहे की उपलब्धता बढ जाती है।

4. उपज में वृद्धि करता है।

अभाव का प्रभाव—1. इसकी कमी के लक्षण बहुत कुछ नाइट्रोजन और गंधक की कमी के लक्षणों की भांति है।

2. बालियों में दाना छोटे आकार का बनता है।

3. फसल देर से पकती है।

4. इसकी हीनता से नींबू में 'पीले दाग का रोग, फूल गोभी में 'ह्विपटेल' रोग हो जाते है।

पूर्ति के स्रोत—मृदा परीक्षण करायें। अम्लीय भूमि में चूना ($CaCO_3$) प्रयोग से इसकी कमी दूर हो जाती है। विशेष परिस्थिति में 0·5 से 1·5 किग्रा अमोनियम मालीब्डेट से भूमि उपचार करें। इसकी 400-500 ग्राम मात्रा का 800-1000 लीटर का घोल फसलों पर छिड़कें। सोडियम मालीब्डेट को बीज में मिलाने पर संतोषप्रद परिणाम मिले हैं।

16. क्लोरीन (Chlorine)—

अनुकूल प्रभाव—1. पौधों में फास्फोरस और गंधक से इसकी मात्रा अधिक रहती है।

2. प्रोटीन निर्माण में सहायक है।

3. पौधों के उत्तकों के विनाशकारी सूखने को रोकती है।

4. फसलें शीघ्र तैयार होती हैं।

5. वाष्पोत्सर्जन की दर कम हो जाती है।

6. कपास, आलू, तम्बाकू, टमाटर, शर्करा, चुकन्दर, गाजर, पात गोभी आदि की वृद्धि के लिये आवश्यक है।

अभाव का प्रभाव—1. जड़ों की वृद्धि रुक जाती है।

2. पत्तियों का रंग लाल भूरा हो जाता है।

3. पत्तियाँ सड़ने लगती हैं और पौधा भी सूख जाता है।

4. फूल गोभी में सुगंधी कम हो जाती है।

5. बरसीम की पत्तियाँ छोटी और मोटी हो जाती हैं तथा सिरों में कटाव हो जाता है।

पूर्ति के स्रोत—क्लोराइड युक्त नाइट्रोजन या पोटेशियम उर्वरकों से इनकी पूर्ति की जा सकती है।

बाजार में सूक्ष्म पोषक तत्व 'माइक्रान' के व्यापारिक नाम से चूर्ण तथा द्रव रूप में प्राप्त होते हैं जिनको पौध घर में भूमि तैयार करते समय, बीजों को उपचार करके तथा घोल का छिड़काव तथा फल वृक्षों में सूची वेध (Injection) के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

खाद एवं उर्वरकों का वर्गीकरण

(Classification of Manures and Fertilizers)

खाद एवं उर्वरक दो विभिन्न वस्तुयें होने पर भी इनका मुख्य उद्देश्य मृदा की उर्वरता बढ़ाकर उपज में वृद्धि करना है। इनको दो मुख्य वर्गों में विभाजित करते हैं—

(1) कार्बनिक खाद (2) अकार्बनिक खाद

(1) कार्बनिक खाद (Organic Manures)—इस वर्ग में जन्तुओं तथा वनस्पतियों से प्राप्त पदार्थों द्वारा तैयार की हुई सभी खादें शामिल हैं, जैसे-गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद, खलियाँ आदि। इनको निम्न तीन वर्गों में विभाजित करते हैं।

(अ) भारी कार्बनिक खाद—इनमें कार्बनिक पदार्थ अधिक तथा पोषक तत्वों की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है। जैसे—गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी, खाद।

(ब) हल्की कार्बनिक खाद—इनके पोषक तत्वों की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक और कार्बनिक पदार्थ कम होता है; जैसे-खलियाँ।

(स) प्राणी जात खाद—ये खादें प्राणियों के अवशिष्ट पदार्थों से बनाई जाती हैं, जैसे-मछली की खाद, रक्त की खाद, सोन खाद आदि।

(2) अकार्बनिक खाद (Inorganic Manures) –ये रासायनिक यौगिक एवं मिश्रण होते हैं जो अकार्बनिक पदार्थों से कारखानों में कृत्रिम विधि से तैयार किये जाते हैं जिनमें तत्वों की निश्चित मात्रा होती है। इनको 'उर्वरक' (Fertilizer) भी कहते हैं। इनको निम्न वर्गों में बांटते हैं—

(अ) नाइट्रोजनप्रद उर्वरक—सोडियम नाइट्रेट, अमोनियम सल्फेट, कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट, यूरिया आदि।

(ब) फास्फोरसप्रद उर्वरक—सुपर फास्फेट, हड्डी का चूरा आदि।

(स) पोटाशप्रद उर्वरक—म्यूरेट ऑफ पोटाश, पोटेशियम सल्फेट आदि।

(द) यौगिक उर्वरक—डाई अमोनिया फास्फेट आदि।

(य) मिश्रित उर्वरक—ग्रोमोर, सुफला आदि।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. खाद किसे कहते है, इसका भूमि में प्रयोग करना क्यों आवश्यक है?
2. भूमि से खाद तत्वों की हानि किस प्रकार होती है, इसका संरक्षण किस प्रकार किया जा सकता है?
3. पौधों के आवश्यक भोज्य तत्वों का वर्गीकरण कीजिये, ये पौधों को किस प्रकार प्राप्त होते हैं?
4. नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश तत्वों का पौधों पर प्रभाव, कमी के लक्षण तथा इनकी प्राप्ति के साधन बताइये।
5. भूमि संशोधक तत्वों का पौधों की वृद्धि में क्या महत्व है, इनको किस प्रकार उपयोग में लाया जाता है?
6. सूक्ष्म-मात्रिक तत्व प्रमुख तत्वों की भांति महत्वपूर्ण, इस पर विवेचना करते हुये बोरॉन, जस्ता तथा क्लोरीन के प्रभाव को बताइये।
7. खाद एवं उर्वरकों का वर्गीकरण उदाहरण सहित करिये।

———

18. कार्बनिक या जैविक खादें

(Organic Manures)

---

(1) गोबर की खाद (Farm Yard Manure)—गोबर या प्रक्षेत्र खाद, हमारे देश में प्राचीन काल से प्रयोग की जाती रही है। इस खाद में पौधे के सभी पोषक तत्त्व पाये जाते हैं। कृषकों के लिये यह अत्यन्त मूल्यवान खाद है जो आसानी से उपलब्ध हो जाती है।

परिभाषा—गोबर की खाद पशुओं, पक्षियों के ठोस तथा द्रव मल-मूत्र को, किसी शोषक पदार्थों का बिछावन पेड़-पौधों की पत्तियाँ, रेत व लकड़ी का बुरादा आदि से मिलाकर तैयार की जाती हैं।

गोबर की खाद के प्रमुख अवयव—गोबर की खाद के मुख्य तीन अवयव हैं—

(i) पशुओं का गोबर—पशुओं का ताजा गोबर बहुत से पदार्थों का जटिल मिश्रण है। इसमें बिना पचे व अघुलनशील पदार्थों के अलावा वसा, स्टार्च, काष्ठीय तन्तु, सेल्यूलोज तथा अन्य पदार्थ होते हैं। इनके अघुलनशील स्थिति में होने से विच्छेदन होने पर ही पोषक तत्त्व उपलब्ध अवस्था में आते हैं।

(ii) पशुओं का मूत्र—मूत्र पशुओं के पचे हुए भोजन पदार्थ तथा शरीर के तन्तुओं के व्यर्थ पदार्थ होते हैं जिसमें जल 94%, घुलनशील ठोस 4% तथा यूरिया 2% पाया जाता है। यूरिया का निर्माण रक्त में शोषित प्रोटीन से होता है। इसमें नाइट्रोजन युक्त व्यर्थ पदार्थ तथा अन्य लवण पाये जाते हैं।

(iii) पशुओं की बिछावन—पशुओं के नीचे नमी (मूत्र) आदि को शोषित करने के लिए बिछावन का प्रयोग करते हैं जो मूत्र की गैस और मूत्र के साथ खाद का कुछ अंश शोषित करते हैं। बिछावन से खाद के सड़ने में सहायता मिलती है क्योंकि इनसे ढेर में वायु का संचार अच्छा होता है। बिछावन में भूसा, घास, लकड़ी का बुरादा, छिलके, पीट काई के अलावा पेड़-पौधों की सूखी पत्तियां काम में लाई जाती हैं।

गोबर की खाद को प्रभावित करने वाले कारक

(i) **पशुओं का आहार**—पशुओं को जितना पौष्टिक चारा-दाना खिलाया जायेगा उनका गोबर-मूत्र भी उतना पौष्टिक होगा। यदि पशु के आहार में नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश की मात्रा अधिक रहती है तो गोबर में निसंदेह इनकी मात्रा भी अधिक रहेगी।

(ii) **पशुओं का बिछावन** पशुओं के मूत्र आदि को शोषित करने के लिए विभिन्न पदार्थों को फर्श पर बिछाली के रूप में प्रयोग करते हैं जिनकी रासायनिक रचना अलग-अलग होती है। अतः बिछावन के साथ खाद की रचना भी बदल जाती है।

(iii) **पशुओं की जाति** – भेड़-बकरी की मैंग्नी की खाद अन्य पशुओं के मल-मूत्र से अधिक शक्तिशाली होती है। कुक्कुटों की खाद पौधों के पोषक तत्त्वों की दृष्टि से सर्वोत्तम है।

(iv) **पशुओं की आयु**—पशुओं की आयु बढ़ने के साथ उनकी पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है जिससे अधिकतर तत्व मल-मूत्र के साथ बाहर आ जाते हैं जबकि युवा पशुओं को शरीर निर्माण के लिए अधिक तत्वों की आवश्यकता होती है जिससे इनके मल-मूत्र में पोषक तत्वों की कमी होती है।

औसतन पशु अपने खाये भोजन से 75–80% नाइट्रोजन, 80% फास्फोरस, 85-90% पोटाश तथा 40-50% जीवांश पदार्थ अपने मल-मूत्र के रूप में त्याग देते हैं।

(v) **पशुओं का कार्य**—विभिन्न पशुओं के अलग-अलग कार्य होने से उनकी पोषक तत्त्वों की आवश्यकता भी अलग-अलग होती है जिसका खाद की रचना पर प्रभाव पड़ता है। दुधारु पशु और हल खींचने वाले पशुओं को बराबर मात्रा में खली देने पर दुधारु पशुओं के मल में शक्ति से कार्य करने वाले पशुओं की अपेक्षा तीन गुना नाइट्रोजन और फास्फोरस तथा दस गुना पोटाश पाया जाता है।

(vi) **खाद बनाने का ढंग**—वैज्ञानिक ढंग से सुरक्षित रखकर बनी खाद में अपेक्षाकृत अधिक शक्ति होगी जबकि घूर विधि से बनी खाद के आवश्यक पोषक तत्व धूप और वर्षा से नष्ट हो जाते हैं। अतः पक्के गड्ढे में संग्रह करके इन हानियों से बचा जा सकता है।

गोबर की खाद तैयार करने की विधि—

गोबर की खाद तैयार करने की तीन प्रमुख विधियां हैं—

1. ढेर में इकट्ठा करना
2. गड्ढों में भरना
3. स्वतन्त्र बाक्स में भरना

1. गोबर की खाद ढेर में इकट्ठा करना (Heap System)—इस विधि को 'घूर विधि' भी कहते हैं। पशुओं के दिन-प्रतिदिन के गोबर, राख, पत्ती आदि को पशुशाला के एक कोने या किसी स्थान पर ढेर में इकट्ठा करते रहते हैं। खाद के ढेर वर्षा और धूप में खुले रहने से काफी मात्रा उपस्थित तत्वों की क्षति होती है। तेज धूप में अमोनिया आदि तत्व उड़ जाते हैं तथा वर्षा के पानी से पोटाश आदि तत्व घुलकर बह जाते हैं। इस प्रकार लगभग 30 से 40% घुलनशील पोषक तत्वों की हानि होती है।

अतः यह विधि अवैज्ञानिक तथा कई दृष्टि से हानिकर है।

2. गोबर की खाद गड्ढे में भरकर तैयार करना (Pit System)—खाद के पोषक तत्वों की क्षति को रोकने के लिए गड्ढे बनाकर खाद तैयार की जाती है, इसके लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखते हैं—

(i) गड्ढों के लिए स्थान–खाद के गड्ढे के लिए ऊंचा स्थान, जहाँ पर वर्षा आदि का पानी न भरता हो, चुनते हैं। ये गड्ढे आबादी क्षेत्र से दूर हों जिससे मनुष्यों एवं पशुओं में बीमारी फैलने का भय न हो।

(ii) गड्ढों की आकार—2·4 × 1·8 × 1·2 मीटर अथवा 3·75 × 1·2 मीटर आकार के गड्ढे अधिक उपयुक्त हैं।

(iii) गड्ढों का संख्या—साधारण किसान जिसके पास 4 पशु हों तो 2·4 × 1·8 × 1·2 मीटर आकार के 3 गड्ढे पर्याप्त है। इससे अधिक पशु रखने पर 3·75 × 2·4 × 1·2 मीटर आकार के 3 गड्ढे पर्याप्त होते हैं।

(iv) गड्ढों की खुदाई– आवश्यक माप के गड्ढों को खोदकर इसकी मिट्टी से गड्ढे के चारों ओर कम से कम 30-45 सेमी. ऊंचा तथा 60 सेमी. चौड़ी मजबूत मेड़ बना देते हैं जिससे वर्षा का बाहरी पानी गड्ढे में न आये। जल का स्तर ऊँचा होने पर गड्ढे को पक्का करना अच्छा है।

(v) गड्ढों की भराई—इन गड्ढों में पशुओं के मल-मूत्र की मिट्टी, कूड़ा-करकट आदि पदार्थ भरते रहते है। पशुओं की बिछाली प्रति सप्ताह डालते हैं। जब गढढा मुँह तक पूरा भर जावे तो इसे समतल करके 15 सेमी. मोटी मिट्टी की तह से ढ़क दें। यह मिट्टी की तह गड्ढों को धूप तथा वर्षा के प्रवेश से बचाती है और अमोनिया गैस जो गड्ढे से उड़ती है, इसे मिट्टी सोखकर खाद की गुणता बढ़ाती है। इस प्रकार अन्य गड्ढों को भरते रहते हैं। खाद लगभग गड्ढों में 9 माह में सड़कर तैयार हो जाती है।

ग्रीष्म ऋतु में खाद के सड़ने के लिए पर्याप्त नमी की आवश्यकता होती है इसलिए आवश्यकतानुसार पानी छिड़कते हैं तथा छप्पर डालकर धूप से बचाव करते हैं।

वर्षा ऋतु में कच्चे गढ्ढे अच्छे नहीं रहते हैं क्योंकि नमी की अधिकता से खाद अच्छी तरह नहीं पड़ जाती है तथा पोषक तत्वों के रिसकर नष्ट होने का भय रहता है। पक्के गढ्ढे या कच्चे गढ्ढों का फर्श पक्का कर देना चाहिये।

(3) स्वतन्त्र बाक्स विधि (Loose System)—इस विधि में ·90 मीटर गहरा, 2·7 मीटर चौड़ा तथा आवश्यकतानुसार प्रति पशु 1·5 मीटर लम्बा पक्का गढ्ढा बनाते हैं जिसके एक किनारे सीढ़ियाँ होती हैं जो पशुओं के आने-जाने के लिये होती है। गढ्ढे के ऊपर धूप तथा वर्षा से बचाव हेतु छप्पर होता है। गढ्ढे के भीतर हटाये जाने वाली चारे की नांदें होती हैं जिनमें पशुओं को चारा खिलाते हैं।

गढ्ढों में पशुओं के नीचे पत्ती, पुआल, बचा चारा आदि पदार्थों की सूखी तह बिछा देते हैं, पशु इन्हीं पर खड़े होकर चारा खाते हैं। इनका मल-मूत्र बिछाली पर गिरता है जिसको प्रति दिन फैला देते हैं। समय-समय पर आवश्यकतानुसार नई बिछाली की तह बिछा दी जाती है। इस प्रकार गढ्ढा लगभग 6 माह में भर जाता है। इस समय नीचे की सड़ी खाद निकाल लेते हैं और ऊपर की बिना सड़ी खाद बिछावन के काम आती है।

इस विधि को आसानी से अपना सकते है क्योंकि इसमें कम स्थान की आवश्यकता होती है। पशुओं के मल-मूत्र को उठाकर लाने का श्रम बचता है। साथ ही पशु के मल-मूत्र का उत्तम उपयोग होता है।

परन्तु इस विधि में यह दोष है कि खाद के अच्छी तरह से समान रूप में सड़ने से दुर्गन्ध तथा मक्खियां आदि फैलती हैं जो मनुष्य तथा पशुओं के स्वास्थ्य के लिये अहितकर है।

दक्षिण भारत के कई राज्यों में इसका प्रयोग कई वर्षों से सफलता से किया जा रहा है।

गोबर की खाद में उपस्थित तत्व—	
नाइट्रोजन	0·5—1·5%
फास्फोरस	0·4—0·8%
पोटाश	0·5—1·9%
चूना	0·5—4·0%

गोबर की खाद के प्रयोग की विधि—गोबर की खाद के अच्छी तरह सड़ जाने पर इसका रंग गहरा कत्थई हो जाता है, इससे किसी भी प्रकार की गंध नहीं आती है तथा मसलने पर बारीक हो जाती है। कच्ची खाद डालने से दीमक का प्रभाव अधिक समय तक होता है।

खाद के सड़ने पर खाद को प्रयोग करें। विधि को निश्चित करने के लिये मृदा की किस्म, फसल तथा खाद की मात्रा का ध्यान रखते हैं। खेत मे खाद डालने की दो विधियाँ हैं—

(1) खेत में खाद की पहिले बड़ी ढेरियाँ लगाते हैं जो बाद मे फैला द जाती हैं।

(2) गाड़ी से सीधे खेत में खाद बिखेरना।

खेत में खाद फैलाकर जुताई या गहरी गुड़ाई करके मिट्टी मे अच्छी तरह मिला देना चाहिये। खाद डालने के समय खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिये जिससे यह अच्छी तरह सड़कर पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध कर सके।

गोबर की खाद के प्रयोग का समय—गोबर की सड़ी हुई खाद को एक फसल के काटने के बाद और दूसरी फसल की बोग्राई के बीच में डालते हैं। फसल बोग्राई से लगभग 1–1½ माह पहले डालकर मिट्टी मे मिला देते हैं। जिससे खेत में अच्छ तरह घुल-मिल जायें।

गोबर की खाद की मात्रा—खाद की मात्रा मृदा की किस्म, फसल तथा भूमि में उपलब्ध तत्वों पर निर्भर करती है। साधारणतया 200–250 क्विटल प्रति हेक्टर खाद देते है। सब्जी में 500–1000 क्विटल प्रति हेक्टर तक इसकी मात्रा डालते हैं।

गोबर की खाद की उपयुक्तता—साधारणतया सभी प्रकार की फसलों के लिये उपयुक्त है। सभी धान्य, रेशे वाली, तिलहन वाली फसलें तथा सब्जियों के लिए अच्छी है।

गोबर की खाद का प्रभाव—भूमि मे खाद का प्रभाव कई वर्ष तक रहता है। खाद का 50% नाइट्रोजन, 25% फास्फोरस व पोटाश प्रथम वर्ष उपयोग में आता है। शेष नाइट्रोजन दूसरी और तीसरी वर्ष तक समाप्त हो जाता है परन्तु अन्य तत्व कई वर्षों तक काम आते हैं।

सभी प्रकार की भूमि तथा परिस्थितियों मे खाद का प्रभाव अच्छा रहता है। भूमि के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों पर प्रभाव पड़ता है।

मृदा पर भौतिक प्रभाव—1. भारी मृदा की संरचना ठीक करती है।
2. हल्की मिट्टी के कणों को आपस में बाध देती है जिससे कटाव कम होता है।
3. मृदा में वायु संचार बढ़ जाता है।
4. मृदा की जल धारण और सोखने की क्षमता बढ़ जाती है।
5. भूमि का रंग गहरा हो जाता है जिससे ताप का स्तर सुधरता है।
6. पौधों का विकास अच्छा होता है।

रासायनिक प्रभाव—1. मृदा मे कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है।
2. पौधों को पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा मे मिलते है।
3. भूमि के अनुपलब्ध तत्वों की उपलब्धता बढ जाती है।
4. भूमि की क्षार विनिमय क्षमता बढ़ जाती है।
5. भूमि के विषैले पदार्थ उदासीन हो जाते हैं।

जैविक प्रभाव—1. जीवाणुओं की संख्या तथा क्रियाशीलता बढ़ जाती है।
2. नाइट्रोजन का स्थिरीकरण अधिक होता है।

3. नाइट्रीकरण तथा ग्रावसीजन की क्रिया से जटिल नत्रजनीय यौगिक सरल रूप में (ग्रमोनिया व नाइट्रेट्स) बदल जाते हैं जिनको पौधे ग्रहण करते हैं।

4. मृदा मे पोषक तत्वों को पौधो को प्रदान करते है।

इन ग्रच्छे प्रभाव के ग्रलावा गोबर की खाद के कुछ दोष भी है—

1. गोबर की खाद के साथ खरपतवारों के बीज खेत मे पहुँच जाते है।

2. पौधों को पोषक तत्व धीरे-धीरे प्राप्त होते हैं।

3. खाद की खेत तक ढुलाई, बिखेरने ग्रादि में ग्रधिक समय एवं श्रम लगता है।

2. कम्पोस्ट (Compost)

सर्वप्रथम 1921 में हचिन्सन एवं रिचर्ड्स ने रोथमस्टेट (इंग्लैण्ड) फार्म पर किए प्रयोगों से ऐसी शक्तिशाली खाद बनाई जो गोबर की खाद की भाँति थी।

सामान्य किसान कम संख्या में पशु होने से घास-फूस ग्रौर पुग्राल ग्रादि जैविक पदार्थों को सड़ा-गलाकर खाद तैयार कर सकता है जो गोबर की खाद से सस्ती एवं उत्तम है।

कम्पोस्ट को कृत्रिम खाद कहते हैं क्योंकि सभी वानस्पतिक ग्रौर पशुग्रो से प्राप्त पदार्थों से जीवाणु ग्रौर फफूँदी की क्रिया से तैयार होती है।

घास-फूस, पेड़-पौधों की पत्तियां ग्रौर घर से कूड़ा-करकट के बैक्टीरिया ग्रौर फंजाई द्वारा सड़ने से तैयार पदार्थ, 'कम्पोस्ट' है। इसके बनाने के ढग को 'कम्पोस्टिंग' कहते हैं।

कम्पोस्ट बनाने की ग्रावश्यक वस्तुएँ—

1. पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ—फार्म के बेकार पौधे-पत्तियां, घास-फूस, ज्वार, मक्का के डंठल, सड़े-गले छप्पर, ग्रगोले व सूखी पत्तियां, सदाबहार (बेहया) पौधों के डंठल, पशुशाला में बिछावन, घर, फार्म, खलिहान ग्रादि का, कूड़ा-करकट, राख, छिली, सूखी जलकुम्भी, पशुग्रो की नांद में बचा चारा ग्रादि।

2 प्राकृतिक पदार्थ (Starter)—कम्पोस्ट मे जैविक पदार्थों के विच्छेदन की क्रिया को प्रारम्भ करने में प्रयुक्त किया जाता है। जिस प्रकार दूध जमाने में थोड़ा दही प्रयोग करते है उसी भांति इनको थोड़ी मात्रा में डाली जाती है।

पशुग्रो का गोबर-मूत्र, पशुशाला का बिछावन, मानव का मल-मूत्र व नाले के गंदे पदार्थ, ऐंडको-चूर्ण तथा कुछ ग्रकार्बनिक पदार्थ ग्रमोनियम सल्फेट, सोडियम नाइट्रेट, कैल्शियम साइनामाइड ग्रादि।

(3) नमी—जीवाणुग्रो की वृद्धि एवं क्रिया को सुचारु रूप से बढ़ाए रखने के लिए उचित नमी ग्रा जाती है तथा कम नही होने पर सड़ने की क्रिया मन्द हो जाती है।

4. वायु संचार—वायवीय जीवाणुग्रों की क्रियाशीलता के लिए वायु ग्रावश्यक है जिससे जैविक पदार्थ का सड़ना प्रारम्भ हो सके। वायु की कमी से सड़ना धीरे-धीरे होता है जिसके लिए 10-15 दिन मे ढेर को पलटते रहते हैं।

5. नत्रजन उर्वरक तथा चूने का पत्थर—प्रायः कम्पोस्ट में नत्रजन की कमी होती है तथा कुछ नत्रजन जीवाणु भी वृद्धि के लिए काम में लेते हैं जिससे अम्लीयता बढ़ जाती है और जीवाणुओं की क्रिया मन्द हो जाती है। अतः नत्रजन उर्वरक, चूने का पत्थर (कैल्सियम कार्बोनेट) मिला देते है।

कम्पोस्ट बनाने की विधियाँ—देश के विभिन्न इन्दौर, बैंगलौर, पूना आदि केन्द्रों पर कम्पोस्ट बनाने पर अनुसंधान किया गया जिससे इनके निर्माण की कई सरल विधि विकसित की गई। इससे इसका प्रयोग दिनों-दिन बढ़ता गया। निम्न विधियाँ प्रचलित है—

1. एडको विधि
2. उत्प्रेरित कम्पोस्ट विधि
3. इन्दौर विधि
4. बैंगलौर विधि
5. वर्षा तथा ग्रीष्म ऋतु में कम्पोस्ट बनाना

(1) एडको विधि (Adco Method)—यह पुरानी विधि है जिसके आविष्कारक हृचिन्सन और रिचर्ड्स जिसमें एक विशेष प्रकार का 'एडको चूर्ण' प्रयोग करते हैं। जिसको पाउडर बनाने वाली कम्पनी (Agricultuarl Development Company) के नाम के कारण पुकारा जाता है।

एडको चूर्ण कचरे का विघटन करता है। इस चूर्ण के संगठन के रहस्य की जानकारी किसी को नही है। फाउलर के अनुसार एडको चूर्ण में अमोनियम सायनामाइड और यूरिया के समान पदार्थ हैं। कौलिसन के अनुसार इसमें अमोनियम सल्फेट, सुपरफास्फेट, पुटेशियम क्लोराइड चूने का पत्थर होता है।

खाद तैयार करना—इसमें कूड़ा-करकट ढेर के रूप में रखकर कम्पोस्ट (Heap System) बनाते हैं। 10 वर्ग गज क्षेत्र में घास-फूस, पुआल या अन्य कूड़े-करकट की 30 सेमी मोटी तह एक समान बिछा कर इसे पानी से तर कर देते है। भीगे पदार्थ पर प्रति 100 किग्रा सूखे पदार्थ में 7 किग्रा की दर से एडको चूर्ण मिला दिया जाता है।

इसी भाँति और तह रखते जाते है जब तक इसकी ऊँचाई 2-10 मीटर (7 फीट) हो जाती है। तीन सप्ताह तक आवश्यकतानुसार जल छिड़कते रहते हैं। छठे सप्ताह में तीव्र गति में सड़ान न होने पर इसमें पर्याप्त पानी छिड़ककर पलटाई कर देते हैं।

भारत जैसे गर्म देशो में यह विधि उपयुक्त नहीं है क्योंकि अधिक ताप के कारण नमी मे कमी आ जाने से विच्छेदन रुक जाता है तथा मिश्रण भी आसानी से नहीं मिलता है।

(2) उत्प्रेरक कम्पोस्ट विधि (Activaled Compost Method)--बंगलौर में सन् 1922 में 'फाउलर एवं रेज' ने यह विधि विकसित की जिसमें कूड़ा-करकट, घास-फूस आदि गड्ढे में एकत्रित करते हैं।

कुछ समय बाद गड्ढे से कूड़ा-करकट निकालकर भूमि के ऊपर 7'×7'× 2' के ढेर में लगाते हैं फिर 40-50 किग्रा ताजे गोबर के घोल से भिगो देते हैं। यथासमय ढेर को जब छिड़ककर नम करके पलटते रहते हैं जो विच्छेदन होने पर भुरभुरा गहरे रंग का हो जाता है।

इस विच्छेदित पदार्थ में उत्प्रेरक पदार्थ की उत्पत्ति होने से इससे अधिक मात्रा में कम्पोस्ट तैयार की जा सकती है। इसकी एक तिहाई मात्रा को दूसरे ढेर में मिलाकर गोबर के पतले घोल से भिगोकर कम्पोस्ट बनाई जा सकती है।

(3) इन्दौर या हावर्ड विधि (Indore Compost Method)—कम्पोस्ट निर्माण की इस प्रसिद्ध विधि का सन् 1831 में, इन्स्ट्रीट्यूट आफ प्लाण्ट इण्डस्ट्रीज, इन्दौर में हावर्ड और वैंड ने प्रारम्भ किया। इसमें गोबर की अल्प मात्रा को चालू पदार्थ के रूप में प्रयोग किया जाता है। कम्पोस्ट बनाने में यह विधि अधिकता से काम लाई जा रही है।

गड्ढों का आकार—इस विधि में 30 फीट लम्बे, 14 फीट चौड़े तथा 2 फीट गहरे गड्ढे काम में लाते हैं। गड्ढों को एक ओर ढालू रखते हैं जिससे खाद निकालने में सुविधा होती है। पशुओं की संख्या और आवश्यकतानुसार 2 से 6 या अधिक गड्ढे बनाते है। 30 फीट की लम्बाई में 6 गड्ढे बनाते हैं जिससे प्रत्येक गड्ढा 5 फीट का हो जाता है।

गड्ढों की भराई—गड्ढे के धरातल मे कार्बनिक बेकार पदार्थों की 3" (7.5 सेमी) तह बिछाते हैं। इसके ऊपर मूत्र से सनी मिट्टी और राख छिड़क देते हैं फिर उसे ऊपर 5 सेमी मोटी गोबर और बिछाली की तह रखकर अच्छी तरह पानी से 2-3 बार तर तक कर देते है। इस प्रकार गड्ढे को 80 से. मी. की ऊँचाई तक तहें लगाते हुए भरते रहते हैं। इसे नम रखने के लिए प्रति सप्ताह पानी छिड़कते हैं।

प्रथम गड्ढे के भरने पर दूसरे गड्ढे को भरना प्रारंभ कर देते हैं। गड्ढे को भरते समय प्रथम गड्ढे को खाली रखा जाता है।

खाद की पलटाई—खाद को अच्छी तरह सड़ाने के लिए समय-समय पर पलटाई करते हैं। जिससे जीवाणुओं और कवकों द्वारा सड़ने की क्रिया के लिए पर्याप्त वायु तथा जल मिल सके।

प्रथम पलटाई गड्ढे भरने के दो सप्ताह बाद की जाती है जिसमें यह खाद पहिले वाली गड्ढे में भर जाती है। इस प्रकार तीसरे की दूसरी में और छठवें गड्ढे की खाद पांचवें में आ जाती है और छठवां गड्ढा खाली हो जाता है।

प्रत्येक पलटाई में खाद को नम करते हैं। दूसरी पलटाई में पहिली के 2 सप्ताह बाद इसके विपरीत चलते हैं। तीसरी पलटाई खाद के तीन माह पुरानी होने पर करते हैं। इस समय खाद गहरे रंग की होकर भुरभुरी हो जाती है। इस बार खाद को गड्ढे से बाहर निकालकर धरती की सतह पर रख देते हैं। इसे ढेर में निचली सतह 3 मीटर, ऊपरी सतह 2.70 मीटर तथा 1.05 मीटर ऊँचाई में इकट्ठा करके एक माह के लिए छोड़ देते हैं। इसके बाद खाद को खेतों में प्रयोग कर सकते हैं।

इस प्रकार तैयार कम्पोस्ट खाद में 1.0% नाइट्रोजन, 5% फास्फोरस और 3% पोटाश पाया जाता है।

बंगलौर विधि—इसे 'आचार्य विधि' भी कहते हैं। बंगलौर के भारतीय विज्ञान संस्थान के आचार्य ने कम्पोस्ट बनाने की विधि विकसित की। इस विधि में पलटाई न होने से अधिकता से प्रयुक्त की जाती है।

शुष्क ऋतु में—कूड़े-करकट को 7 मीटर × 1.2 मीटर × 1.0 मीटर अथवा 10 मीटर × 2 मीटर × 1.2 मीटर के गड्ढे में भरते हैं। गड्ढों के तल पर कूड़े-करकट की 15 सेमी. मोटी तह बिछाकर जल से तर कर देते है। उसके ऊपर 5 सेमी गोबर तथा पेशाब की मिट्टी की तह बिछाकर एक सेमी मिट्टी बिछा देते हैं। इसी क्रम में तह बिछाते और तर करते हुए गड्ढा को भूमि की सतह से 45-60 सेमी ऊँचाई तक भर देते हैं। अंत में ढेर को मिट्टी की 2-5 से.मी. मोटी तह से ढक देते हैं। खाद 8-9 माह में अच्छी तरह सड़ गल कर तैयार हो जाती है।

वर्षा के दिनों में—3 × 3 मीटर के चबूतरे पर उक्त विधि से कूड़े-करकट को 1.2 मीटर की ऊँचाई तक एकत्रित करते हैं। बाद में ढेर को 5 से.मी मोटी मिट्टी की तह से ढक देते है।

गर्मी और जाड़े में कम्पोस्ट बनाने की विधि

गड्ढों का आकार—कम्पोस्ट बनाने के लिए तीन 2.5 मीटर लम्बे, 2 मीटर चौड़े और एक सिरे पर 1 मीटर तथा दूसरे सिरे पर 1.2 मीटर गहरे गड्ढे प्रयोग मे लाते हैं। गड्ढों को सुविधानुसार छोटा-बड़ा कर सकते हैं परन्तु गहराई 1 मीटर से अधिक नही रखते है।

गड्ढों की भराई—गड्ढे मे सबसे नीचे सूखी पत्तियां खरपतवार की 15

सेमी तह बिछाकर गोवर तथा पेशाब की 5 सेमी, मोटी तह फैला देते हैं। इसके ऊपर कचरे तथा घास फूस की 8 सेमी तह फिर राख, मल मूत्र फैला कर उसे कूड़े-करकट से ढक देते हैं।

इसी तरह गड्ढे को भूमि की सतह से 30 सेमी की ऊँचाई तक भर देते हैं। गड्ढे को भरते समय इसे तीन बराबर भागों में बांट कर कम गहराई वाले किनारे से भरना शुरू करते हैं। यह तिहाई भाग लगभग एक माह में भर जाता है और पूरा गड्ढा तीन मास में भरेगा। पहिले भाग में तीन माह, दूसरी में दो माह तथा तीसरे भाग में एक माह पुरानी खाद होती है। खाद को भरने के 3 सप्ताह बाद पहली और छ. सप्ताह बाद दूसरी पलटाई करते हैं। फावड़े से खाद पलटते समय इसे ऊपर से नीचे एवं नीचे की ऊपर करें तथा दाब कर न भरें। आवश्यकतानुसार थोड़ा जल भी छिड़कें। कम्पोस्ट की पलटाई से अन्दर वायु का प्रवेश अच्छी तरह होता है। जिससे खाद अच्छी तरह से 4-5 माह में सड़कर प्रयोग के योग्य हो जाती है। प्रत्येक गढ्ढे में 25 क्विण्टल खाद बनती है।

वर्षा ऋतु में कम्पोस्ट बनाने की विधि—इस ऋतु में कम्पोस्ट गड्ढे में बनाकर किसी ऊंचे स्थान पर बनाते हैं जहां पानी न भरता हो।

चबूतरे का आकार—यह चबूतरा यथा संभव पशुशाला के पास हो। ऊंचे स्थान पर 2.5 मीटर लम्बा, 2 मीटर चौड़ा तथा 1.5 सेमी ऊँची चबूतरा बनाते हैं।

खाद की भराई—चबूतरे को चार बराबर भागो में बांट कर दिन प्रतिदिन का कूड़ा-करकट बारी-बारी से प्रत्येक भाग पर डालते रहते है जब तक प्रत्येक टुकड़ा 1 मीटर ऊँचा न हो जाये।

खाद की पलटाई—प्रथम बारिस के जोर से होने पर ढेर को फावड़े से पलट दें। जिससे सूखा और गीला भाग भली-भांति मिल कर शीघ्र सड़ने लगता है।

पहली पलटाई के एक माह बाद दूसरी, दूसरी के एक माह बाद तीसरी करने से वायु का आवागमन अच्छा हो जाता है। वर्षा कम या न होने के दिन पलटाई करें जिससे खाद्य पदार्थ बहकर नष्ट न होवे।

एक वर्ष में एक पशु से लगभग 10-15 क्विण्टल कम्पोस्ट प्राप्त होती है।

खाद में उपस्थित पोषक तत्व—खाद में पोषक तत्वो की प्रतिशत मात्रा विभिन्न विधियों तथा विभिन्न पदार्थों पर निर्भर करती है। अच्छी तरह बनाई गई कम्पोस्ट में 0·6% नाइट्रोजन, 1·5% फास्फोरस तथा 2·3% पोटाश होता है।

खाद प्रयोग विधि एवं समय—यह खाद गोबर की कृत्रिम खाद होती है तथा अच्छी सड़ी गोबर की खाद के समान है। जिन फसलों मे गोबर की खाद प्रयोग की जाती है इसका प्रयोग कर सकते है। खाद देने की विधि एवं समय गोबर की खाद के समान है।

खाद का प्रभाव—

भौतिक प्रभाव—1. भूमि की संरचना सुधरती है। चिकनी मिट्टी भुरभुरी तथा बलुई मिट्टी सघन हो जाती है।

2. मृदा की जलशोषण तथा धारण क्षमता बढ़ जाती है।

3. वायु का संचार बढ़ जाता है।

4. मृदा की ऊष्मा शोषण क्षमता बढ़ जाती है।

5. लवणीय तथा क्षारीय भूमि को कृषि योग्य बनाया जा सकता है।

रासायनिक प्रभाव—1. पौधों के सभी पोषक तत्व मृदा में बढ़ जाते हैं।

2. पौधों को पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है।

3. मृदा की क्षारीयता को कम करता है।

4. खाद के विच्छेदन से कार्बन डाई ग्रावसाइड बनती है जो पानी से मिलकर कार्बनिक ग्रम्ल बनाती है जो फास्फेट को घुलनशील बनाता है।

जैविक प्रभाव—1. कम्पोस्ट में ग्रनेक फफूंदी एवं जीवाणु पाये जाते हैं। जिससे इनकी सख्या में वृद्धि होती है।

2. जीवाणुग्रों की नाइट्रीकरण, ग्रमोनियाकरण तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्रियाग्रो में वृद्धि होती है।

3 कम्पोस्ट में पादप हार्मोन ग्रधिक होते हैं जिससे पौधों की वृद्धि ग्रधिक होती है।

(3) हरी खाद (Green Manure)

देश में कार्बनिक पदार्थ जैसे गोबर का बहुत-सा भाग कंडों या उपलो को ईंधन के रूप में जला दिया जाता है ग्रौर शेष मात्रा, खाद के रूप में प्रयोग की जाती है। खलियों से पशुग्रो के भोजन की पूर्ति भी नही हो पाती है जिससे खेती में इनका प्रयोग नही किया जाता है। ग्रत: भूमि मे कार्बनिक तथा नाइट्रोजन स्तर बढाने के लिए हरी खाद का प्रयोग ग्रच्छा है।

परिभाषा—"ग्रविच्छेदित ग्रर्थात् बिना गले-सड़े हरे पौधों (दलहनी या ग्रदलहनी) या इसके भागों को जब मृदा की नत्रजन या जीवांश की मात्रा बढ़ाने के लिये खेत में दबा दिया जाता है तो प्राप्त खाद, हरी खाद कहलाती है।"

'हरी खाद वह खाद है जो भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने वाली फसलों को हरी दशा या पकने के निकट पहुँचने की ग्रवस्था में खेत मे जोतकर दबा देने से प्राप्त होती है।

हरी खाद के लिए फसलों का चुनाव—हरी खाद के लिए ग्रच्छी फसल के चुनाव मे निम्नलिखित गुणों का होना ग्रावश्यक है—

(i) फसल शीघ्र बढ़ने वाली ग्रधिक वानस्पतिक भाग वाली हो।

(ii) फसल के वानस्पतिक भाग मुलायम हो जो सड़ जायें।

(iii) फसल गहरी जड़ वाली हो तथा जल की आवश्यकता कम हो।

(iv) फसल के बीज आसानी से सस्ती दर में उपलब्ध हो सके।

(v) फसल को आसानी से हर प्रकार की भूमियो तथा जलवायु में उगाया जा सके।

(vi) फसल की जड़ों में ग्रंथियां अधिक हों जिससे वायुमण्डल की नाइट्रोजन अधिक मात्रा स्थिर हो सके।

(vii) फसल कीट एवं रोग अवरोधी हों।

(viii) फसल कई उद्देश्यों की पूर्ति करती हो तथा फसल-चक्र में उचित स्थान रखती हो।

(ix) फसल भूमि पर अंतिम प्रभाव अच्छा छोड़ती हो।

(x) फसल की बीजोत्पादन क्षमता अधिक हो।

हरी खाद के लिए फसलें—इसके लिये दलहनी तथा अदलहनी फसलों का प्रयोग कर सकते हैं। मुख्य फसलें निम्न प्रकार हैं—

(1) खरीफ की फसलें—

(अ) दलहनी फसलें सनई (Crotolaria juncea), ढैंचा (Seasbania aculeata), मूंग, मोठ, उड़द, लोबिया, ग्वार, कुल्थ आदि।

(ब) अदलहनी फसलें—मक्का, ज्वार, सूरजमुखी, कीडोजीरा।

(2) रबी की फसलें -

(अ) दलहनी फसलें -सेंजी, मटर, बरसीम, मसूर, मेथी, खिसारी।

(ब) अदलहनी फसलें—राई, सरसों, शलजम, मूली।

विदेशों में अमरीका तथा यूरोप की मृदाओं में औसत कार्बन 3%, नत्रजन 010-0·17·/. तक पाया जाता है जबकि हमारे देश में औसत कार्बन 0·07./· तथा नत्रजन 0·03·/. तक मिलता है। दलहनी एवं अदलहनी फसलें मृदा में जीवांश पदार्थ देती है। दलहनी की जड़ों में पाये जाने वाले राइजोबियम जीवाणु वायु की स्वतन्त्र नाइट्रोजन को एकत्रित करती है जबकि अदलहनी फसलें नहीं। इससे दलहनी फसलें यहां की स्थिति मे उगाना अच्छा रहता है।

हरी खाद की फसलों को उगाना—हरी खाद की फसलों से अधिक लाभ के लिए इसकी विभिन्नकर्षण क्रियाओं का ज्ञान आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित सुझावों को ध्यान देना चाहिए—

भूमि – चिकनी एवं लवणीय भूमि मे ढैंचा, बरसीम तथा बलुई व कम उर्वर भूमि में मूंग, ग्वार, उर्द आदि फसलें बोयें।

भूमि की तैयारी—हरी खाद के लिए बीज बोने के लिए [illegible] । या दो जुताइयां पर्याप्त हैं।

बोने का समय—खरीफ की फसलें वर्षारंभ जोताई में बो दी जाती हैं। सिंचाई की सुविधा होने पर रबी की फसलों की कटाई के बाद अप्रेल-मई-जून में पलेवा करके फसलों की बोआई करते हैं।

रबी की फसलें मटर, बरसीम, अक्टूबर, मसूर, दिसम्बर, सैंजी जनवरी में बोई जाती है।

बीज दर—सनई 40–60 किग्रा, ढैंचा-30 किग्रा, लोबिया 50 किग्रा, सैंजी-25 किग्रा, बरसीम-20 किग्रा प्रति हैक्टर की दर से बोया जाता है।

बोने की विधि—बीज को छिटककर बोकर पाटा लगा दिया जाता है।

खाद—दलहनी फसलों की वृद्धि के लिए 25–50 किग्रा फास्फोरस तथा अदलहनी फसलों में 40–60 किग्रा. प्रति हेक्टर की दर से फास्फोरस देना अच्छा रहता है।

सिंचाई—वर्षा समय पर न होने पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करें।

फसल को भूमि में दबाना—प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकला है कि हरी खाद की फसलों की पलटाई का सर्वोत्तम समय फूल आने की स्थिति है। इस समय वानस्पतिक वृद्धि पूरी हो जाती है तथा ये भाग मुलायम, रसयुक्त होती हैं जिससे इसको दबाने पर विघटन शीघ्रता से होता है तथा कार्बन : नाइट्रोजन अनुपात भी कम होता है। सनई की फसल में लगभग 50 दिन, ढैंचा में 40 दिन बाद यह अवस्था आती है।

खड़ी फसल को पाटा या ग्रीन मेन्योर ट्रेम्पलर की सहायता से गिरा देते हैं तथा गिरी और मिट्टी पलटने वाला हल चलाकर फसल को दबा देते है।

विभिन्न हरी खाद की फसलों से प्राप्त पदार्थ

क्रमांक	फसल का नाम	औसत हरा पदार्थ किग्रा/हैक्टर	जल की मात्रा	नत्रजन की मात्रा %	नत्रजन की मात्रा किग्रा/हैक्टर
1.	सनई	212 00	75·0	0·43	83·8
2.	ढैंचा	200·00	78 2	0·43	75·5
3.	मूंग	80·00	75·0	0·5[illegible]	38·0
4.	उड़द	120·00	83 0	0·41	42·7
5.	लोबिया	150·00	86 0	0·49	56.7
6.	ग्वार	200·00	75 0	0 40	55·7
7.	मटर	201·00	83 0	0·36	67·1
8.	मसूर	56·00	65 0	0·70	36·0
9.	मैथी	116·00	82·0	0·33	38·2
10.	बरसीम	155·00	87 0	0·43	60·9

अगली फसल की बोआई के 5–6 सप्ताह पूर्व पलटाई करनी चाहिए क्योंकि हरी खाद की फसल मिट्टी में दबाने के 4–6 सप्ताह में पूर्ण सड़ाव हो पाता है। नमी की कमी या वर्षा न होने पर सिंचाई करें तथा दो बार विपरीत दिशा में जुताई करें जिससे पौधा पूरी तरह सड़-गल कर मिट्टी में मिल जावे।

हरी खाद से लाभ—1. जैव-पदार्थ की प्राप्ति।

2. नाइट्रोजन की प्राप्ति।

3. भूमि में पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ती है तथा उनका संरक्षण करती है।

4. भूमि की ऊपरी सतहों पर पौधों के भोजन तत्वों का संकेन्द्रण करती है।

5. पौधों के भोजन तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि होती है।

6. भूमि की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक दशा में सुधार होता है जिससे संरचना, मृदा-ताप, वायु-संचार तथा जल धारण शक्ति में सुधार होता है।

7. खर पतवारों की रोकथाम करते हैं।

8. रासायनिक खादो के प्रयोग से उत्पन्न विकारों को दूर करता है।

9. भूमि-क्षरण से जल तथा वायु से क्षरण को रोकती है।

10. भूमि में उपयोगी जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि तथा इनकी सक्रियता बढ़ जाती है।

11. उपज में वृद्धि होती है।

12. कृषकों को आसानी से सस्ते मूल्य पर खाद उपलब्ध हो जाती है।

हरी खाद के प्रयोग में सावधानियाँ—1. सिंचाई का प्रबन्ध होने पर फसल को गर्मी में या बरसात की पहली वर्षा होते ही खाद के बीज बो देने चाहिये।

2. हरी खाद के तैयार होते ही उसे खेत में जोतकर भली प्रकार मिला देना चाहिए।

3. हरी खाद की पलटाई और अगली फसल के बोने में अन्तर इतना हो कि हरी खाद का विघटन भलीभांति हो जाये।

4. हरी खाद के लिए मुलायम अंगों वाली फसलें चुनें विशेषकर शुष्क क्षेत्रों में, क्योंकि कड़े भागों की सड़न नमी के अभाव में नहीं हो पाती है।

5. दलहन वाली हरी खाद की फसल में फास्फोरस उर्वरक डालने से जीवाणुओं की सक्रियता अधिक होती है और नाइट्रोजन का संस्थापन अधिक होता है।

6. शुष्क-क्षेत्रों में हरी खाद की फसल को छोटी अवस्था में, जब पौधे कोमल हों, दबाना अच्छा रहता है जिससे सड़ने की क्रिया भली-भांति हो जाती है।

हरी खाद के कम प्रयोग होने के कारण—यद्यपि हरी खाद भूमि की दशा को सुधारकर उपज में वृद्धि करती है फिर भी कृषक इसका प्रयोग कम ही करते हैं, इसके अग्रलिखित कारण हैं—

1. कृषकों की शिक्षा, ज्ञान का अभाव।
2. कृषकों का प्राचीन कृषि पद्धति अपनाये रहने का स्वभाव।
3. वर्षा की कमी तथा सिंचाई साधनों का अभाव।
4. उन्नत कृषि यंत्रों की कमी।
5. पशुओं के चारे तथा भोजन की कमी।
6. अनुसंधानों के परिणामों के प्रचार की कमी।
7. प्रदर्शन फार्मों का अभाव।

(4) खलियां (Oil Cakes)

तिलहन वाली फसलों को पेरकर (Crushing) तेल प्राप्त करने के बाद बचा पदार्थ, खली कहलाता है। खलियों में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स और खनिज पदार्थ बचे रहते हैं।

अधिकतर खलियां पशुओं के आहार के काम आती हैं जिससे इनका खाद के रूप में प्रचलन कम है। सिर्फ वे ही खलियाँ, जैसे नीम, महुआ आदि जिन्हें पशु नहीं खाते हैं, खाद के रूप में प्रयोग की जाती हैं।

पोषक तत्व—खलियों में पौधों के आवश्यक तत्व प्रचुर मात्रा में होते हैं जो विभिन्न खलियों में भिन्न-भिन्न होता है। इनसे प्राप्त नाइट्रोजन का 70-80% भाग शीघ्र ही पौधों को प्राप्त होता है। इसमें तेल की मात्रा होने पर इसके नत्रजनीय पदार्थों का विघटन धीरे-धीरे होता है।

प्रयोग विधि—खलियों को बारीक पीसकर फसल बोने से 15 से 25 दिन पूर्व बिखेरकर जुताई करके खेत में भली-भाँति मिला देते हैं। खलियों के विच्छेदन के लिये भूमि में पर्याप्त नमी तथा वायु का होना आवश्यक है। कन्दवाली फसलें आलू तथा रबी की सब्जी में इनका प्रयोग अधिक होता है। दीर्घकालीन फसलें जैसे गन्ना, कपास आदि में खड़ी फसल प्रयोग में कर सकते हैं। खलियों की मात्रा भूमि की किस्म, जलवायु तथा फसल के अनुसार साधारण तौर पर 10-30 क्विण्टल प्रति हेक्टर प्रयोग कर सकते हैं।

खलियों का प्रभाव—1. खेत में पर्याप्त नमी होने पर खलियों के देने पर यह फूलकर मिट्टी को पोली तथा भुरभुरा करती है।

2. भूमि में रंध्राकाश की मात्रा बढ़ जाती है जिससे वायु संचार बढ़ जाता है।

3. जड़ों का विकास अच्छा होता है तथा भूमिगत फसलों की वृद्धि अच्छा होने से अधिक उपज प्राप्त होती है।

4. अंकुरित बीजों के सम्पर्क में खलियों का आना सदैव हानिकारक होता है।

5. खलियों का अवशिष्ट प्रभाव 3–4 वर्षों तक होता है ।

6. नीम की खली भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने के साथ दीमक से रक्षा करती है ।

जैव पदार्थों का पौधों के भोज्य पदार्थ के रूप में परिणत होना

भूमि में जीवांश की पूर्ति जन्तुओं के अवशिष्ट पदार्थों के अतिरिक्त वनस्पतियों से की जाती है । जो सड़ने-गलने पर पौधों के भोज्य पदार्थों में बदल जाते हैं। ये पदार्थ विभिन्न दशाओं में पाए जाते है जो जीवाणुओं के द्वारा जटिल रचना से सरल रूप में बदल जाते हैं जब कि कुछ का विघटन कठिनाई से हो पाता है ।

जैव पदार्थों मे नाइट्रोजन युक्त और नाइट्रोजन विहीन गूढ़ पदार्थ शामिल हैं जिन पर विभिन्न जीवाणु, फफूंदी अपना कार्य करके इनको सरल रूप में परिवर्तित कर देते हैं किन्तु जीवाणुओं का कार्य सबसे महत्वपूर्ण है ।

(Nitrogenous Malters)
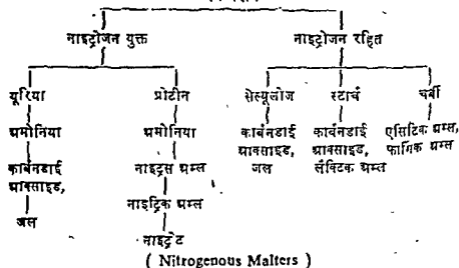
(अ) नाइट्रोजन युक्त पदार्थ—इसमें मूत्र एवं प्रोटीन वाले भाग हैं ।

1. मूत्र (Urea)—पशुओं के मूत्र में यूरिया के रूप में नाइट्रोजन रहता है एक प्रकार के जीवाणु यूरो बैक्टीरिया यूरिया को अमोनियम कार्बोनेट में और फिर अमोनियमा, कार्बनडाई आक्साइड और जल में बदल देते हैं ।

$$CO\ (NH_2)2 + 2H_2O \rightarrow (NH_4)_2CO_3$$

$$(NH_4)_2CO_3 \rightarrow 2NH_3 + CO_2 + H_2O$$
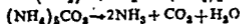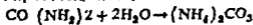
2 प्रोटीन (Protein)—यह नाइट्रोजनयुक्त प्रोटीन है जो खादों और जीवांशों म अधिकता से मिलता है जिसका विघटन गलने (Decay) और सड़ने

(Putrefaction) से होता है । ये दोनों क्रियाएँ साथ-साथ चलती हैं । गलना बाहर तथा सड़ना भीतर, जहां आक्सीजन की कमी होती है परन्तु उचित नमी व वायु मिलने पर सड़ना रुककर, गलन क्रिया होने लगती है । प्रोटीन का सड़ना तीन प्रकार से होता है—

(i) अमोनीकरण (ii) नाइट्रीकरण (iii) विनाइट्रीकरण

अमोनीकरण (Amonification)—इसमें प्रोटीन अमोनिया में बदल जाता है ।

नत्रजन चक्र

नाइट्रोजन चक्र (Nitrogen Cycle)

नाइट्रोजन पौधों का मुख्य भोज्य पदार्थ है जिसको मिट्टी से घोल के रूप में लेते हैं । जीवांश पदार्थ इस नाइट्रोजन का स्रोत है जो सभी जीवधारियों और वनस्पतियों के भागों तथा इनके विसर्जित पदार्थों के सड़ने-गलने से प्राप्त होती है ।

जैव पदार्थ में अनेक जीवाणु फफूंदी आक्सीजन लेकर सड़न-गलन पैदा करती हैं जिससे ह्यूमस पदार्थ से अमोनिया-नाइट्राइट-नाइट्रेट बनते हैं ।

यह नाइट्रेट मिट्टी के चूने एवं अन्य खनिज तत्वों से मिलकर एक लवण बनाते हैं जो पानी में घुलकर पौधों के भोजन के रूप में काम आता है । इस प्रक्रिया में कुछ नाइट्रोजन बेकार हो जाती है । यह अमोनिया के रूप में वायु मण्डल में चली जाती है तथा हानिकर जीवाणुओं द्वारा नाइट्रेट या नाइट्राइट पुनः नाइट्रोजन में परिवर्तित कर प्रयोग कर ली जाती है ।

वायवीय जीवाणु, जो एजोटोबैक्टर (Agotobactor) कहलाते हैं; वायु-मण्डल से मिश्रित नाइट्रोजन लेकर भूमि में स्थापित करते हैं । दाल वाली फसलों की जड़ों में पाये जाने वाले लाभदायक जीवाणु, राइजोबियम (Rhizobium) वातावरण की नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करके भूमि में स्थापित करते हैं ।

इस प्रकार यह नाइट्रोजन चक्र भूमि से वातावरण और वातावरण से भूमि में सदैव चालू रहता है । इस चक्र का वानस्पतिक जगत में अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है ।

इस चक्र में जीवाणुओं की वृद्धि एवं क्रियाशीलता के लिए जैव पदार्थ, जल, हवा, ताप चूना तथा धातु तत्व की उपस्थिति आवश्यक है अन्यथा इनकी अनुपस्थिति में अनेक दोष पैदा हो जाते हैं ।

बैसिलस सबटेलिस और माइकाइडस प्रोटीन विशेष प्रकार के जीवाणुओं की क्रिया के कारण अमोनिया में बदल जाता है । ये जीवाणु उचित नमी तथा अच्छे वायु संचार से प्रोटीन को अमोनिया में बदल देते हैं जबकि इनके अभाव में अवायवीय जीवाणु कार्य करके प्रोटीन को पेप्टोन, एमीनो अम्ल तथा दुर्गन्धयुक्त गैसों को पैदा करते हैं । हवा की अनुपस्थिति में अधिक मात्रा में अमोनिया बनती है ।

नाइट्रीकरण (Nitrification)—जीवांश के अमोनीकरण के बाद यह क्रिया होती है जिससे नाइट्रोसोमोनास और नाइट्रोकोकस जीवाणु वायुमंडल से आक्सीजन लेकर नाइट्रस अम्ल और अंत में नाइट्रिक अम्ल बनाते हैं।

$$2NH_3 + 3O_2 \rightarrow 2HNO_2 + H_2O$$
नाइट्रस अम्ल
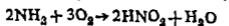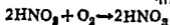
$$2HNO_2 + O_2 \rightarrow 2HNO_3$$
नाइट्रिक अम्ल

इस क्रिया में बना नाइट्रिक अम्ल भूमि में पाये जाने वाले क्षार कैल्शियम मैग्नीशियम से मिलकर उनके नाइट्रेट बनाती है।

नत्रजन चक्र

विनाइट्रीकरण (Deni trification)—यह क्रिया नाइट्रीकरण क्रिया के ठीक विपरीत है। जो एक विशेष प्रकार के जीवाणु द्वारा सम्पादित की जाती है जो आक्सीजन की कमी या अल्प मात्रा मे काम करती है। इसके लिए जीवांश तथा नाइट्रेट का होना आवश्यक है और खाद वर्षा के जल से पूर्ण संतृप्त हो।

(ब) नाइट्रोजनरहित पदार्थ (Non nitrogenous Matters)

इसमें कार्बोहाइड्रेट, चर्बी तथा कुछ लवण होते हैं। कार्बोहाइड्रेट में शीघ्र सड़ने वाले चीनी, (Sugar) और माड़ी (Starch) हैं तथा देर से सड़ने वाले सेलुलोज हैं।

चीनी और माड़ी का सड़ाव—ये गोबर में अधिक होता है। चीनी मे शीघ्र घुलनशील होने से पौधों के शीघ्र उपयोग में आती है। माड़ी कुछ देर मे घुलती है। वायवीय (Aerobic) और अवायवीय (Anoerobic) दोनो जीवाणु क्रिया करके पानी, CO_2; ब्यूटायरिक तथा लैक्टिक अम्ल आदि पदार्थों में बदल देते हैं। यदाकदा हाइड्रोजन स्वतंत्र होकर निकलती है।

चर्बी का सड़ाव—यह आक्सीजन की उपस्थिति मे शीघ्र सड़ती है जबकि कमी में कम। बैसिलाई और माइक्रोकोकाई जीवाणु क्रिया करके ग्लिसरीन, मिथाइल अल्कोहल, एसिटिक अम्ल, ब्यूटायरिक अम्ल आदि का निर्माण करते है।

सेलूलोज का सड़ाव—यह पौधों की कोशिकाओं, हरे तथा सूखे चारे में मिलता है जो पशुओं के मल में बाहर जाता है। इसका सड़ाव देर मे होता है। इसमें एक्टीनोमाइसीटीस, स्पाइरोचीटा साइट्रोफागा जीवाणु आक्सीकरण द्वारा सेलूलोज का विघटन कार्बनडाई आक्साइड और जल में होता है। आक्सीजन की कमी में हाइड्रोजन, मीथेन तथा कार्बनडाई आक्साइड आदि पदार्थ बनते हैं। सड़ाव की क्रिया आक्सीजन की उपस्थिति में तीव्रगति से होता है।

जीवाणुओं की सक्रियता के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ—ये कृषि मे महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं जिससे खनिज और जैवपदार्थ घुलनशील होकर पौधों के

भोजन के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। ये सभी प्रकार की मिट्टियो मे पाए जाते हैं परन्तु शुष्कार्द्र प्रदेशों में अधिक होते हैं। एक ग्राम मिट्टी में इनकी संख्या लगभग 10-12 करोड़ होती है। शुष्क तथा ठंडे प्रदेशों में अपेक्षाकृत कम होते हैं जीवाणुओं की वृद्धि निम्न बातों से प्रभावित होती है—

आक्सीजन—वायवीय जीवाणुओं की वृद्धि एवं काम के लिए आक्सीजन आवश्यक है। जबकि अवायवीय जीवाणु आक्सीजन की कमी में भी कार्य करते हैं परन्तु ये हानिकर गैस तथा रासायनिक पदार्थों का निर्माण करते हैं जिनको पौधे उपयोग में नहीं लाते हैं। कभी-कभी नाइट्रेट का विनाइट्रीकरण करके नत्रजन को स्वतंत्र करते हैं जो वायुमंडल में चली जाती है।

तापक्रम—खाद के सड़ाव के लिए अनुकूल तापक्रम आवश्यक है। नाइट्रीकरण के लिए 70° से 110° के (21° से 43° से ग्रे) ताप सर्वोत्तम है। अधिकांश जीवाणु 110°–160° फा० (43° से 71° से. ग्रे.) ताप पर मर जाते हैं तथा कम ताप पर जीवाणु काम नही कर पाते है।

नमी—जीवाणुओं की वृद्धि एवं कार्य के लिए उपयुक्त नमी की मात्रा आवश्यक है। अधिक जल होने पर इनकी कार्य शक्ति मंद हो जाती है क्योंकि इससे तापक्रम कम हो जाता है।

अम्लीयता—अम्लीय मिट्टी में जीवाणुओं की कार्यशीलता मंद हो जाती है। उदासीन या हल्की क्षारीय मिट्टी में जीवाणुओं की वृद्धि के लिए अनुकूल है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पशुओं के मल-मूत्र की खाद बनाने की विधि का वर्णन करो। अशुद्ध रीति से खाद संचय करने से क्या हानियाँ हैं, इनको किस प्रकार रोकेंगे ?
2. कम्पोस्ट क्या है और किन चीजों से बनाई जाती है ? इनमें कम्पोस्ट बनाने की विधि बताइये।
3. कम्पोस्ट तथा गोबर की खाद में क्या अन्तर है ? कम्पोस्ट बनाने की विधि का वर्णन करिये।
4. हरी खाद से क्या समझते हैं, इसके लिये प्रयुक्त फसलों में क्या विशेषतायें होनी चाहिये ? सनई की हरी खाद देने की विधि का वर्णन करो।
5. खली की खाद की उपयोगिता बताइये तथा खाद के रूप में प्रयुक्त होने वाली खलियों का वर्णन तालिका के रूप में करिये।
6. जीवांश खादों के भूमि पर प्रभाव को बताइये।
7. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
   (क) नाइट्रोजन चक्र।
   (ख) नाइट्रोजन रहित पदार्थ का परिवर्तन।

19. अ-कार्बनिक खादें

(Inorganic Manures)

इनको रासायनिक उर्वरक (Chemical Fertilizers), कृत्रिम खादें, (Artificial Manures), व्यापारिक खादें (Commercial Manures) भी कहते हैं। इनको निम्नलिखित प्रमुख वर्गों में विभाजित करते हैं—

(अ) नाइट्रोजन प्रद उर्वरक

(ब) फास्फोरस प्रद उर्वरक

(स) पोटाश प्रद उर्वरक

(द) मिश्रित उर्वरक

(य) यौगिक उर्वरक

(अ) नाइट्रोजन प्रद उर्वरक (Nitrogenous Fertilizers)—ये उर्वरक चार प्रकार के होते हैं—

1. नाइट्रिक नाइट्रोजन (NO_3) युक्त नाइट्रेट-सोडियम नाइट्रेट ($NaNO_3$) कैल्सियम नाइट्रेट [$Ca(NO_3)_2$], ये भूमि पर क्षारीय प्रभाव डालते हैं।

2. अमोनिक नाइट्रोजन, (NH_3) युक्त अमोनिक यौगिक-अमोनियम सल्फेट [$(NH_4)_2SO_4$], अमोफास, ये भूमि पर अम्लीय प्रभाव डालते हैं।

3. नाइट्रिक और अमोनियम नाइट्रेट युक्त यौगिक-अमोनियम नाइट्रेट (NH_4NO_3), कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट इनमें नाइट्रोजन अमोनिया तथा नाइट्रेट के साथ मिलता है।

4. नाइट्रोजन को एमाइड के रूप में प्रदान करने वाले यौगिक—ये सड़कर अमोनिया आयन देते हैं। भूमि के जीवाणुओं की क्रिया के फलस्वरूप अमोनियम एवं नाइट्रेट में परिवर्तन हो जाते हैं। कैल्सियम सायनामाइड ($CaCN_2$), यूरिया [$CO(NH_2)_2$],

सोडियम नाइट्रेट ($NaNO_3$)

इसे 'चिली का शोरा' कहते हैं क्योंकि यह पीरू, चिली और बोलीविया के वर्षा रहित प्रदेश में अधिक मात्रा में मिलता है। वर्तमान में देश के सिंदरी उर्वरक कारखाने में इसे वायु के नाइट्रोजन तथा नमक के सोडियम से भी तैयार किया जाता है।

निर्माण विधि—व्यापारिक रूप में इसे खनिज कालिके (Caliche) से बनाया जाता है। यन्त्रों से कालिके निकालकर बिजली से स्थानान्तरित किया जाकर निम्न ताप पर घुलाया जाता है। सोडियम नाइट्रेट के प्रबल विलयन को आठ टंकियों में बहाया जाता है जिनमें तीन उष्मा-विनिमायक लगते रहते हैं। इस बहाव से मणिभ ऐसे रूप में निकलते हैं कि इनको सीधे बोरे में भरकर भेजा जा सकता है।

यह भूरे सफेद रंग का कणयुक्त चूर्ण होता है जो पानी में पूर्ण घुलनशील है और पौधों को सीधा प्राप्त होता है। भूमि मे डालने के बाद कोई परिवर्तन नहीं होता है। नाइट्रोजन 10% होता है।

प्रयोग विधि—खड़ी फसलों में पौधों की जड़ों के पूर्ण विकसित होने पर आवश्यकतानुसार प्रयोग करें। खाद को जड़ों के समीप प्रयोग करें अन्यथा पत्तियों पर गिरने से झुलस सकती है। समान वितरण के लिये दुगुनी महीन मिट्टी मिलावें।

वर्षा काल में पूरी मात्रा को 2–3 बार मे देने से संकर्षण रीति से होने वाली क्षति में कमी हो जाती है। बीज बोने से पूर्व या ड्रिल से प्रयोग कर सकते हैं, दूसरी बार टॉप-ड्रेसिंग के रूप में जड़ के समीप दें। खाद देने के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करें।

इसके विषैल प्रभाव के कारण चारे को पशुओं के प्रयोग कुछ दिन बाद खिलावें। फसल पर 2–3 दिन मे प्रभाव दिखाई देने लगता है।

उर्वरक से लाभ—1. जल में विलेय होने से इसका नाइट्रोजन पौधों को शीघ्र प्राप्य होता है।

2. मिट्टी के पोटेशियम का स्थान ग्रहण करने से इसके बुरे प्रभाव को रोकता है।

3. मृदा मे लाभदायक जीवाणुओं की वृद्धि करता है।

4. मिट्टी के कैल्सियम तथा मैग्नीशियम के संरक्षण में सहायक होता है।

5. धान्य फसलों पर उत्तम प्रभाव डालता है, चुकन्दर मूल्यवान है तथा पत्ती वाली शाक-सब्जी के लिये भी अच्छा है।

उर्वरक का प्रभाव—1. मृदा संरचना पर प्रभाव—उर्वरक के बार-बार प्रयोग से सोडियम कार्बोनेट की मात्रा बढ़ जाने से भूमि की भौतिक दशा

हो जाती है जो चूने के प्रयोग से ठीक नहीं हो पाती है। अतः इसे अमोनियम सल्फेट के साथ प्रयोग करना अच्छा रहता है।

2. मृदा-उर्वरता का प्रभाव—मृदा के दूसरे आयन्स का विनिमय करके सोडियम स्थान ले लेता है जिससे उर्वरता में काफी कमी आ जाती है। फास्फेटिक तथा पोटाशिक उर्वरकों के साथ प्रयोग करें।

अमोनियम सल्फेट $(NH_4)_2SO_4$

यह सफेद या मटमैले दानेदार शक्कर की भाँति या मणिभीय ठोस आकार का रासायनिक पदार्थ है जिसमें 20·6% नाइट्रोजन होता है। इसे सरलता से प्रयोग में ला सकते हैं। जल में विलेय है परन्तु भण्डारण में आर्द्र वायु की नमी का अवशोषण करके पिण्ड बन जाता है जिससे बोरे गल जाते हैं।

निर्माण विधि—यह कोयले के भंजक आसवन की क्रिया के उपजात के रूप में प्राप्त होता है। भारत में सिंदरी कारखाने में कृत्रिम रूप से उर्वरक तैयार किया जाता है। इसमें वायु के नाइट्रोजन और जल के हाइड्रोजन से अमोनिया बनाते हैं इसे गंधकाम्ल में ले जाने पर उर्वरक तैयार हो जाता है। अम्ल मँहगा होने से जिप्सम का प्रयोग होता है।

$$4NH_3 + 2H_2SO_4 \rightarrow (2NH_4)_2SO_4$$
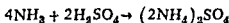
प्रयोग विधि—इसे फसल बोआई से पूर्व तथा खड़ी फसल में प्रयोग किया जा सकता है। फसल बोने से पूर्व छिड़कें। खड़ी फसल में प्रयोग के तुरन्त बाद सिंचाई करें जिससे उर्वरक का समान वितरण हो सके। गन्ने की फसल में बोआई तथा मिट्टी चढ़ाने के समय तथा धान की रोपाई के तीन सप्ताह बाद देना अच्छा रहता है।

उर्वरक का प्रभाव—1. उर्वरक के बार-बार प्रयोग से मृदा में अम्लीयता बढ़ जाती है जिससे नाइट्रीकरण मंद हो जाता है और पौधे नहीं उगते हैं।

2. मिट्टी की संरचना में अन्तर आ जाने से भौतिक दशा खराब हो जाती है क्योंकि तल की बंधी नहीं रहती है।

3. पौधे के पोषक तत्त्व उन्मुक्त (Free) होकर जल-निकास में सकर्षण द्वारा बाहर निकल जाते हैं जिससे पौधों का विकास नहीं हो पाता है।

अमोनियम सल्फेट तथा नाइट्रेट में तुलना

अमोनियम सल्फेट	सोडियम नाइट्रेट
1. खेत में प्रयोग के बाद भूपन (Nitrification) के बाद शीघ्रता से कार्य करता है जिससे एक सप्ताह बाद प्रभाव दिखाई देता है।	1. प्रयोग के 2-3 दिन बाद प्रभाव दिखाई देने लगता है।

2. मिट्टी में अम्लीय प्रभाव छोड़ता है इस से आवश्यकतानुसार चूने का प्रयोग करें।	2. भूमि पर क्षारीय प्रभाव छोड़ता है और मिट्टी की अम्लीयता कम करता है।
3. इसमें 20 प्रतिशत नाइट्रोजन होता है।	3. लगभग 15 प्रतिशत नाइट्रोजन होता है।
4. भूमि की भौतिक दशा पर प्रभाव नहीं डालती है।	4. बलुई मिट्टी की भौतिक दशा को खराब कर देता है।
5. वर्षा वाले प्रदेशों में प्रयोग करना लाभकर है।	5 वर्षा वाले प्रदेशों में खाद के बह जाने की सम्भावना रहती है।

अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट $[2NH_4NO_3(NH_4)_2SO_4]$

यह अमोनियम सल्फेट और नाइट्रेट ऑफ अमोनियम का मिश्रण होता है जो सफेद लम्बे दाने के अलावा गोल रूप में मिलता है परन्तु तब इसका रंग मटमैला सफेद होता है। इसमें 26% नाइट्रोजन होता है जिसमें $\frac{3}{4}$ भाग (19·5%) अमोनिया तथा शेष $\frac{1}{4}$ भाग (6·5%) नाइट्रोजन के रूप में होती है। पानी में घुलनशील होने से पौधे शीघ्र ग्रहण कर लेते है। कम आर्द्रताग्राही होने से भण्डारण में पिण्ड नहीं बनते हैं।

प्रयोग विधि—इसे बोआई से पूर्व, बोआई के समय तथा खड़ी फसल में किसी भी समय प्रयोग किया जा सकता है परन्तु बीज के साथ न मिलावें।

उर्वरक का प्रभाव—यह सभी फसलों के लिये उपयोगी है तथा सभी भूमियों में इसका प्रयोग किया जा सकता है। अमोनियम सल्फेट की अपेक्षा कम (आधी) अम्लीयता पैदा करता है जिससे क्षारीय भूमि में सफलता से प्रयोग कर सकते हैं।

यूरिया $CO(NH_2)_2$

यह कार्बनिक यौगिक भी है परन्तु वर्तमान में कृत्रिम रूप से बनाया जाता है।

निर्माण विधि—अमोनिया तथा कार्बन डाइ आक्साइड के ऊँचे दाब पर प्रतिक्रिया कराकर अमोनियम कार्बोनेट बनता है जिससे जल के एक अणु निकलने पर यूरिया बनती है।

$$2NH_3 + CO_2 \rightarrow H_2NCOONH_4 \text{ (अमोनिया कार्बोनेट)}$$

$$NH_2COONH \rightarrow CO(NH_2)_2 + H_2O$$
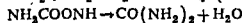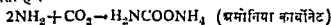
विलयन को निर्वात में उद्वाष्पक मे सान्द्रित करके फिर प्रकोष्ठ में फुहारे के रूप मे छोड़ने से ठोस यूरिया की छोटी गोलियां प्राप्त होता है।

यह सफेद रवेदार साबूदाने की भांति गोल होती है जो जल में बहुत अधिक विलेय है। नमी के अत्यधिक संवेदनशील होने से भण्डारण कमेठिनाई

कठिनाई होती है। इसके लिए किसी क्रियाशील पदार्थ का पर्त चढ़ा देते है। ऊँचे ताप (55° सेग्रे) पर यह अमोनिया और कार्बनडाई ऑक्साइड में विच्छेदित हो जाती है।

सर्वाधिक 46% नाइट्रोजन प्राप्त होता है जिससे अपेक्षाकृत सस्ता है।

प्रयोग विधि—इसको बोने से पूर्व, बाद, खड़ी फसल मे तथा पूर्ण छिड़काव में प्रयोग किया जाता है। बोआई के समय बीज में मिलाने से बीजांकुर के जलने का भय रहता है। खेत में पर्याप्त नमी की अवस्था मे प्रयोग करें।

यूरिया के घोल का पत्तियों पर छिड़काव काफी लाभप्रद एवं सस्ता रहता है। एक हेक्टर के लिये 37·5 किग्रा. यूरिया का 250 गैलन का घोल पर्याप्त है। घोल को पत्तियों पर चिपकने के लिये 'टीपोल' या सिर्फ पाउडर मिला दें। आवश्यकतानुसार पुनः 15-20 दिन के अन्तर पर छिड़काव अपरान्ह या सायंकाल करें। इसके साथ कीटनाशक दवा को मिलाया जा सकता है।

उर्वरक का प्रभाव—सभी प्रकार के धान्यो, घासों, शाक-भाजी, फलो में प्रयोग लाभप्रद रहा है। भूमि पर अम्लीय प्रभाव छोड़ता है जो अमोनियम सल्फेट से एक-तिहाई है।

ऐसी भूमि जहाँ पानी भरा रहता है इसका प्रयोग उत्तम रहता है क्योंकि इनका नत्रजन मिट्टी में संस्थापित होने से नीचे बहकर या रिसकर नष्ट होने से बच जाता है।

कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट (CAN)

भारत में नांगल और राउरकेला के कारखानो में बनता है। यह ज्वार जैसे आकार की छोटी-छोटी गोली रूप में होने से 'ज्वार खाद' के नाम से पुकारा जाता है। इसे साधारण भाषा में 'किसान खाद' भी कहते हैं।

इसमें 20% नाइट्रोजन होता है। बाजार में 'सोना' नाम से 25% नत्रजन वाली कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट मिलती है।

प्रयोग विधि—इसे फसल बोने से पूर्व प्रयोग करना अच्छा रहता है।

उर्वरक प्रभाव—उर्वरक में कैल्सियम (चूना) होने से भूमि की भौतिक दशा को ठीक रखता है भूमि पर किसी तरह का प्रभाव नहीं छोड़ता है बल्कि अम्लीय तथा उदासीन भूमियों के लिये अच्छा उर्वरक है।

नाइट्रोजन-उर्वरकों का चुनाव

फसल, जलवायु, वर्षा तथा मृदा की किस्म के अनुसार रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करना आवश्यक है—

1. क्षारीय भूमि जिसमें कैल्सियम, सोडियम तथा मैग्नीशियम अधिक है, अम्लीय प्रभाव छोड़ने वाले उर्वरक अमोनियम सल्फेट, यूरिया का प्रयोग करें।

2. अम्लीय भूमि में कैल्शियम अमो. नाइट्रेट, कैल्सियम सायनामाइड उर्वरक प्रयोग करें।
3. जिन स्थानों पर अधिक वर्षा होती है उर्वरक का एक ही बार में प्रयोग करना होता है, वहाँ यूरिया और अमोनियम उर्वरक का प्रयोग लाभप्रद है क्योंकि इनके मिट्टी में संस्थापित हो जाने से बहने तथा विनाइट्रीकरण से ह्रास नहीं होता है।
4. कम वर्षा वाले क्षेत्रों तथा प्रतिकूल मौसम में शीघ्र प्रभाव डालने वाले नाइट्रेट उर्वरक अच्छे रहते हैं।

(ब) फास्फोरसप्रद उर्वरक (Phosphatic Fertilixers)

इनको निम्नलिखित आधारों पर वर्गीकृत किया जाता है—

(क) (घुलनशीलता के आधार पर—

(i) जल में घुलनशील – सुपर फास्फेट।

(ii) साइट्रिक अम्ल में घुलनशील—हड्डी की खाद, बेसिक स्लैग रॉक फास्फेट।

(ख) उपलब्ध साधनों के आधार पर—

(1) प्राकृतिक –हड्डी, रॉक, फास्फेट।

(2) कृत्रिम विधि से प्राप्त—सुपर फास्फेट, ट्राई कैल्सियम फास्फेट।

(3) उप पदार्थ से प्राप्त – बैसिक स्लैग।

हड्डी की खाद (Bone Meal)—

हड्डी में मुख्यतया ट्राई कैल्सियम फास्फेट के रूप में 45–55% फास्फोरस होता है, जो निम्न प्रकार से तैयार हो जाता है—

(1) अस्थि चूर्ण (हड्डी का चूरा)—हड्डियों को पीसकर चूरा तैयार किया जाता है जिसमें वसा पदार्थों के होने से प्रयोग करने पर धीरे-धीरे विच्छेदन होता है और पौधों को शीघ्र प्राप्त नहीं होता है। चिपचिपा और विशेष अरुचिकर गंध होने से प्रयोग में कम लाते हैं। इसमें नाइट्रोजन 2 से 4% तथा फास्फोरस 22 से 25% होता है।

(2) भाप से उपचारित अस्थि चूर्ण—हड्डी को 15 से 20 वायुमण्डलीय दाब में वाष्पन विधि में हड्डी से वसायुक्त पदार्थ अलग करके हड्डी को महीन चूर्ण में पीसा जाता है। हल्का होने से बारीक मिट्टी या बुरादे में मिलाकर उपयोग में लाते हैं। इसमें नाइट्रोजन 3 से 5% तथा फास्फोरस 43–50%होता है। हड्डी से प्राप्त स्नेहयुक्त पदार्थ से सरेस तैयार किया जाता है। अस्थिचूर्ण को आकार के अनुसार निम्नलिखित तीन भागों में बाँटते हैं—

(i) बोन मील—जब चूर्ण का 80% भाग 3 मिमी. आकार की जाली से छन जाता है।

(ii) बोन डस्ट—जब अस्थि चूर्ण का 80% भाग 1 मिमी. आकार की जाली से छन जाता है।

(iii) बोन फ्लोर – जब अस्थि चूर्ण का 80%भाग 1 मिमी. से कम आकार की जाली से छन जावे।

प्रयोग विधि—बोन फ्लोर सर्वाधिक उपलब्ध खाद है जो बलुई भूमि के लिए उपयोगी है। इसे बोआई से पूर्व तथा बोआई के समय दिया जाता है। खड़ी फसल में बुरकाव नहीं किया जाता है। धान्यों, सब्जियों, चारे तथा दलहनी फसलों में प्रयोग करना लाभदायक है।

उर्वरक का प्रभाव—जीवांशयुक्त भूमि में प्रयोग अच्छा सिद्ध हुआ है। अम्लीय तथा अच्छे जल निकास भूमि में लाभप्रद है परन्तु भारी भूमि तथा चूना युक्त भूमि में विशेष लाभप्रद नही है। प्रभाव धीरे-धीरे होने से भूमि पर 3 वर्ष तक प्रभाव डालता है।

सुपर-फास्फेट (Super Phasphate)—

बाजार में उपलब्ध सुपर फास्फेट धूसर रंग का चूर्ण होता है जो अंशतः जल में विलेय होता है। इसकी गंध अम्लीय होती है। जिस सुपर फास्फेट में फास्फोरस 16 से 18% होता है वह जल में विलेय होने में अच्छा है।

निर्माण विधि– यह आर्द्र तथा भ्राष्ट्र विधि से तैयार किया जाता है।

आर्द्र विधि मे खनिज फास्फेट पर गधकाम्ल की प्रतिक्रिया कराने पर सुपर फास्फेट का निर्माण होता है।

भ्राष्ट्र विधि मे खनिज फास्फेट (ट्राइकैलसियम फास्फेट) को रेत और कोक के साथ मिलाकर भ्राष्ट्र में उच्च ताप पर गर्म करते हैं जिससे फास्फोरस वाष्पीकृत होकर निकल जाता है और इसका स्थान सिलिका ले लेता है जो कैलसियम सिलिकेट पिघले धातुमल के रूप में निकल जाता है और फास्फोरस आक्सीकृत होकर P_2O^5 बनाता है जो पानी में घुलकर फास्फोरिक अम्ल बनाता है।

$[Ca_3(PO_4)_2] + CaCO_3 + Isio_0 — ICasiO_3 + 3P_2O_5 + CaCO_3$

$P_2O_5 + 3H_2O — 3H_3PO_4$
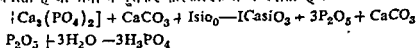
इस फास्फोरस अम्ल में 30% वास्तविक अम्ल होता है जो खाद के अतिरिक्त अन्य कामों में उपयोग आता है। इसके उपजात कैल्सियम सिलिकेट श्वेत में चूने के स्थान पर प्रयोग किया जाता है।

यह तीन रूपों में पाया जाता है—

सुपर फास्फेट एकल —16-20% फास्फोरस

सुपर फास्फेट द्विगुण—30-35% फास्फोरस

सुपर फास्फेट त्रिगुण—45-50% फास्फोरस।

प्रयोग विधि—उर्वरक में अम्ल होने से शुष्क रूप में नहीं होता है जिससे

बिखेरने में असुविधा होती है। फसल बोने से पूर्व इसे बिखेरकर मिट्टी में भलीभांति मिला देना चाहिए। इसके घुलने पर देने के स्थान से अधिक आगे नहीं बढ़ पाता है। इससे जड़ों के समीप प्रयोग करें। इसका प्रभाव कई वर्षों तक देखा जाता है।

यह सभी प्रकार की फसलें रेशे वाली, जड़ वाली, फल, दाल वाली मसाले वाली फसलों के लिये लाभप्रद है परन्तु चना, मटर तथा दाल वाली फसलों पर अच्छा प्रभाव डालती है। खड़ी फसल में नमी अधिक होने पर छिड़का जा सकता है परन्तु यह विधि अधिक प्रचलित नही है।

उर्वरक का प्रभाव—उर्वरक पानी में घुलनशील है परन्तु मिट्टी में डालने पर घुलकर यह अघुलनशील रूप में स्थिर हो जाता है जिससे यह पौधों को धीरे-धीरे प्राप्त होता है। इसमें कैल्सियम की मात्रा होने से भूमि की प्रतिक्रियाओं को कम प्रभावित करता है। भूमि की अम्लीयता को कम करता है इससे इसका प्रभाव सम-भावी होता है। भूमि की अम्लीयता अधिक होने पर पौधे इसका उपयोग नही कर पाते हैं। भूमि में जीवांश खाद के प्रयोग करने पर संस्थापित फास्फेट मुक्त होकर पौधों को प्राप्य हो जाता है।

(स) पोटाशप्रद उर्वरक (Potashic Fertilxers)—

देश की अधिकांश भूमियों में पोटाश पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है परन्तु कुछ विशेष भूमियों तथा फसलो में पोटाश की आवश्यकता होती है। बलुई भूमि में पोटाश की कमी रहती है। तम्बाकू, आलू, प्याज, टमाटर, चारे वाली फसलें तथा फल-वृक्षों में पोटाश देने से अधिक उपज मिलती है।

पुटेशियम सल्फेट (K_2SO_4)—

यह सफेद रंग का महीन चूर्ण होता हे जो पोटाश उर्वरको मे अच्छा है। जल में घुलनशील होने से पौधों को तुरन्त उपलब्ध हो जाता है। इसमें 50% पोटाश पाया जाता है।

निर्माण विधि—यह पोटेशियम क्लोराइड और सोडियम सल्फेट से तैयार किया जाता है। पुटेशियम क्लोराइड और मैग्नीशियम सल्फेट के द्विगुण लवण को पानी में घुलाकर इसमें सान्द्र पोटेशियम क्लोराइड विलयन डालते हैं जिससे पुटेशियम सल्फेट अवक्षिप्त हो जाता है। विलयन से निस्तारण द्वारा सल्फेट को अलग करके, सुखाकर, छानकर, पीस कर बोरियों में बन्द कर दिया जाता है।

प्रयोग विधि—इसका प्रयोग बोआई से लगभग दो सप्ताह पूर्व छिटककर भलीभांति मिला दें। खड़ी फसल में भी प्रयोग कर सकते हैं। यह तम्बाकू, आलू आदि फसलों तथा फल वृक्षों में पुटेशियम क्लोराइड की अपेक्षा अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ है क्योंकि पुटेशियम क्लोराइड की क्लोरीन की मात्रा ये सहन नही कर पाते हैं और इनके गुण खराब हो जाते हैं। पुटेशियम क्लोराइड की अपेक्षा मंहगा होने से अपेक्षाकृत कम प्रयोग किया जाता है।

उर्वरक का प्रभाव—भूमि पर कोई प्रभाव नहीं डालते हैं। भूमि में मात्रा कम होने से यह जल के साथ बह जाती है।

पोटेशियम क्लोराइड (KCl)

इसे 'म्यूरेट ऑफ पोटाश' भी कहते हैं। इनके मणिभ छोटे-छोटे धूसर या गुलाबी धूसर रंग के होते हैं जो आर्द्रताग्राही नहीं हैं परन्तु जल में शीघ्र घुलनशील है जिससे पौधों को शीघ्र प्राप्त होता है। इससे पोटाश 60% प्राप्त होता है।

निर्माण-विधि—अमरीकी तथा फ्रांसीसी विक्षेप से प्राप्त सिल्वर नाइट या जर्मन विक्षेप से प्राप्त कार्नेलाइट और कठोर लवण से मैग्नीशियम क्लोराइड या सल्फेट निकाल देने पर पोटेशियम क्लोराइड प्राप्त होता है।

नमक से भी उत्प्लावन विधि से पोटेशियम क्लोराइड पृथक करके प्राप्त होता है।

प्रयोग विधि—इसे सदैव ही फसल बोने से पूर्व देना चाहिए। पौधों से पार्श्वत में 5 सेमी. की दूरी पर देने से यह पौधो के सीधे संसर्ग में नहीं आ पाता है। पौधे पर खाद गिरने से वे जल जाते हैं। इसे अकेले या अन्य उर्वरकों के साथ मिलाकर दे सकते हैं। आलू तथा जो की फसल के लिये अच्छा है। अपेक्षाकृत सस्ता होने से अधिक प्रयोग में आता है।

उर्वरक का प्रभाव—क्लोराइड होने से भूमि में अम्लता को बढ़ा सकता है परन्तु विलेय होने से मिट्टी से जल्दी निकल जाता है जिससे मिट्टी पर प्रभाव नहीं पड़ता है। भूमि में रिसकर नष्ट नहीं होता है क्योंकि मृदा-कणों द्वारा रोकने से पौधों को शीघ्र प्राप्त हो जाता है। क्लोरीन होने के कारण तम्बाकू के लिये अच्छा नहीं समझा जाता है।

फास्फोरस तथा पोटाश उर्वरकों का चुनाव—

1. साधारण मिट्टी से इन तत्वों की पूर्ति के लिए उनके उर्वरक एकाकी या तीनों उर्वरकों का मिश्रण बनाकर प्रयोग करें परन्तु आर्थिक दृष्टि मुख्य आधार हो।
2. फास्फोरस उर्वरक में इस तत्व की उपलब्धता का ध्यान रखा जाता है, शीघ्र लाभ के लिए सुपर फास्फेट का प्रयोग करें
3. शुष्क तथा अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों की सिंचित भूमि में अमोनियम फास्फेट का प्रयोग करें क्योंकि यह नाइट्रोजन देकर फास्फोरस को सन्तुलित करता है।
4. पोटाश उर्वरकों के जल में घुलनशील होने से मितव्ययता पर ध्यान देते हैं। फसल पर तत्व के प्रभाव का ध्यान रखते हैं। तम्बाकू के लिये उर्वरकों में क्लोरीन तथा मैग्नीशियम का होना आवश्यक है।
5. तर क्षेत्रों की भूमि (जो मृदा-जल से बिगड़ गई है) में पोटाश उर्वरकों

देने से भूमि सुधार तथा तत्वों के पौधों की कार्यक्षमता में सन्तुलन करते हैं ।

6. लगातार काफी मात्रा में सुपर फास्फेट देने से भूमि में फास्फोरस का भण्डार प्राप्य अवस्था में हो जाता है ।

(ब) यौगिक उर्वरक (Compound Fertilizers)—

ये रासायनिक या अकार्बनिक पदार्थ जो एक से अधिक तत्वों को पौधों को उपलब्ध कराते हैं इन्हें यौगिक उर्वरक कहते हैं । वर्तमान में इनको अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाता है, निम्नलिखित प्रमुख उर्वरक हैं—

मोनो अमोनियम फास्फेट, डाइअमोनियम फास्फेट, एमोफास 'ए' और 'बी', अमोनियम सुपर फास्फेट आदि ।

(स) मिश्रित उर्वरक (Mixed Fertilizers) —

यदि दो या इससे अधिक उर्वरक आपस में मिला दिये जायें तो इन्हें 'मिश्रण' कहते हैं । मिश्रण में तत्वों का प्रतिशत अलग-अलग होता है । कुछ मिश्रण कारखानों में बनाये जाते हैं और कुछ आवश्यकतानुसार किसान स्वयं बना लेते हैं ।

(अ) तत्वों की उपलब्धता के आधार पर वर्गीकरण —

(i) अपूर्ण मिश्रित उर्वरक—जिस उर्वरक मिश्रण में केवल दो प्रमुख पोषक तत्व विद्यमान होते हैं, उसे अपूर्ण मिश्रित उर्वरक कहते हैं जैसे ग्रोमोर, सुफला धूसर आदि ।

(ii) पूर्ण मिश्रित उर्वरक—जिस मिश्रित उर्वरक में तीन प्रमुख पोषक तत्व नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश उपलब्ध हो, उसे मिश्रित उर्वरक मिश्रित कहते हैं । जैसे सुफला पीली, सुफला गुलाबी, इफको आदि ।

(ब) मिश्रित उर्वरक निर्माण की दृष्टि से दो भागों में बांटे जाते हैं—

(1) फैक्टरी निर्मित उर्वरक मिश्रण—इन उर्वरकों में तत्वों का अनुपात निश्चित होता है जो विभिन्न फसलों के लिये अलग-अलग होते हैं । अधिकांश उर्वरक मिश्रण के रूप में प्राप्त होते हैं । इनके ग्रेड अलग होते हैं ।

(2) स्वयं मिश्रित उर्वरक तैयार करना – घर पर भी मिश्रित उर्वरक तैयार कर उपयोग किया जा सकता है । उर्वरकों को उचित अनुपात में मिलाने से अच्छा उर्वरक तैयार होता है । मिश्रण बनाने के लिए भूमि में पोषक तत्वों की कमी, उर्वरक में उपलब्ध तत्व तथा इनका फसलों, भूमि तथा भण्डारण में हुये प्रभाव का भी ध्यान रखा जाता है ।

(स) विशिष्टता के आधार पर वर्गीकरण—

मिश्रित उर्वरकों को रासायनिक यौगिकों का निश्चिय अनुपात नहीं होता है फिर भी ये प्रमाण विशिष्ट के अनुसार बनाए जाते हैं जिनमें आवश्यक तत्व की मात्रा प्रतिशत के अनुसार होती है। ये दो प्रकार के होते हैं—

(1) उच्च विश्लेषण उर्वरक (High analysis fertilizers)—इनमें प्रमुख पोषक तत्वों का अनुपात 14 से अधिक होता है जैसे 5-10-5 का मिश्रण तत्वों की उच्च विश्लेषण उर्वरक होगा।

(2) निम्न विश्लेषण उर्वरक—इनके तीनों तत्वों का प्रतिशत 14 से कम होता है जैसे 2-8-2 का मिश्रण निम्न विश्लेषण उर्वरक होगा।

मिश्रित उर्वरकों से लाभ—

1. श्रम एवं समय की बचत होती है।
2. यह अपेक्षाकृत सस्ता पड़ता है क्योंकि अलग-अलग उर्वरक मंगवाकर डालने से यातायात और वितरण में व्यय बढ़ जाता है।
3. इससे थोड़ी मात्रा में पोषक तत्व फसलों को मिल जाते है।
4. मिश्रित उर्वरक में पौधों के सभी पोषक तत्वों के कारण ये संतुलित होते है।
5 कम मात्रा में दिए जाने वाले उर्वरक मिश्रण बनाकर समान रूप से दिए जा सकते हैं।
6. जिन उर्वरको को खेत में अकेले प्रयोग करने में असुविधा होती है, उनको मिश्रित उर्वरकों के रूप में आसानी से डाले जा सकते है।

मिश्रत उर्वरकों से हानि—

1. फसल मे तत्व की कमी होने पर इनको उपयोग में नही ला सकते हैं।
2. मिश्रित उर्वरकों को देखने से मिश्रण मे मिले पदार्थों का ज्ञान नही हो पाता है तथा पोषक तत्वों का अनुपात सही नही होता है।
3. उर्वरकों के देने का समय एवं ढग भिन्न होता है जिससे मिश्रण प्रयोग में कठिनाई होती है।
4. मिश्रित उर्वरकों की कीमत का सही अनुमान नही लगाया जा सकता है।

मिश्रित उर्वरक बनाना—

मिश्रण बनाते समय यह आवश्यक है कि उपलब्ध उर्वरक की क्या विशेषतायें हैं और इनमें तत्वों की मात्रा कितनी है। मिश्रण बनाने के अनुसार उर्वरकों को तीन भागों में बांट सकते हैं—

1. वे उर्वरक जिनका मिश्रण बनाकर काफी समय तक भण्डारण किया जा सकता है।

2. वे उर्वरक, जिनका मिश्रण बनाकर 2-3 दिन से अधिक नहीं रखा जा सकता है।

3. वे उर्वरक, जिनका मिश्रण नहीं बनाया जा सकता है।

उर्वरक मिश्रण बनाने के लिए चिकनी लकड़ी के 5×3×5 मीटर आकार का तख्ता काम मे लाते हैं जिसका किनारा ·6 से ·9 मीटर ऊँचा होता है। मिलाने के लिए कुदाल या पंजे को काम मे लाते हैं। एक से दो टन उर्वरक एक साथ मिलाते हैं। उर्वरकों को तख्ते पर फैलाकर कुदाल से मिलाने के बाद 30 डिगरी पर खड़ी तार की जाली की चलनी छानकर बोरों में भर लेते हैं। यह घर पर बना मिश्रण बाजार के मिश्रण उर्वरक से अच्छा तथा सस्ता पड़ता है। इसे सीमेण्ट या लकड़ी के बने गच (कोठी) मे सुरक्षित रखा जा सकता है।

उर्वरकों को आपस में मिलाने की सावधानी—

1. राख और कैलसियम साइनामाइड को अमो० सल्फेट के साथ न मिलावें क्योंकि इससे अमोनिया उड़ जाता है।
2. चूना और राख फास्फोरस खादों से न मिलायें क्योंकि इससे फास्फोरिक अम्ल पौधो को उपलब्ध नही होता है।
3. नम फास्फोरिक खाद को सोडियम नाइट्रेट के सम्पर्क में न रखें अन्यथा नाइट्रिक एसिड धीरे-धीरे स्वतन्त्र हो जाता है।
4. कैल्सियम साइनामाइड में चूना होने से इसे फास्फोरस खाद से नहीं मिलावें।

मिश्रित उर्वरकों का प्रयोग—भूमि में एक से अधिक तत्वों की आवश्यकता होने पर ही मिश्रित उर्वरक प्रयोग करे। उर्वरक की मात्रा भूमि की प्रकृति तथा फसल की किस्म पर निर्भर करती है। उर्वरकों का प्रयोग बोआई से पूर्व, बोआई के समय कर सकते हैं। धान की पौध रोपाई से पूर्व आधा उर्वरक तथा शेष पौध रोपाई के कुछ समय बाद देना अच्छा रहता है। बीज तथा पौधों के उर्वरक के सीधे संस्पर्श से बचाना चाहिए।

इन प्रमुख उर्वरकों के अतिरिक्त भूमि में कुछ और पदार्थ प्रयुक्त किए जाते हैं जिनकी उपयोगिता इनसे किसी भी रूप मे कम नही होती है। निम्नलिखित उर्वरक प्रमुख हैं—

1. **सूक्ष्म पोषक तत्त्व उर्वरक**—फसलों को प्रमुख पोषक तत्त्वों के अतिरिक्त कुछ अन्य तत्त्वों की आवश्यकता होती है जो पौधों के विकास को उद्दीप्त करती है और रोगो के प्रभाव से सुरक्षित रखती है। इनकी मिट्टी के सूक्ष्म विश्लेषण के बाद ही मात्रा निश्चित की जाती है। फसलों पर इन तत्त्वों की कमी के लक्षण दिखाई देने पर तथा निरोध के रूप में पूर्व में ही प्रयोग करना चाहिए। जैसे बोरेक्स, कॉपर सल्फेट, मैंग्नीज सल्फेट, जिंक सल्फेट आदि।

चित्र—मिश्रित उर्वरक बनाना

2. भूमि संशोधक—किसी-किसी मिट्टी में पौधों के सभी पोषक तत्वों के उपलब्ध होने पर भी उपज अच्छी प्राप्त नहीं होती है तो ऐसी भूमि के संशोधन की आवश्यकता होती है। इन पदार्थों के प्रयोग से भूमि की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक दशा में सुधार होता है और उपज में वृद्धि होती है। जैसे—चूना, जिप्सम, नमक आदि।

भूमि उत्प्रेरक—कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जो पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक नहीं लेकिन इनमें प्रयोग करने पर पौधों में वृद्धि तेजी से होने लगती है। जैसे सोडियम, कोवाल्ट आदि।

उर्वरकों का भण्डारण—उर्वरकों को बोरे में बन्द करके भेजा जाता है। सामान्य तौर पर बोरे 50 किग्रा. के होते हैं। बोरे जूट के, जिनके अन्दर प्लास्टिक की पर्त लगी होती है, या पॉलीथीन के बने होते हैं। कृषकों की आवश्यकता की पूर्ति हेतु उर्वरकों का अच्छी तरह भण्डारण तथा उपयोग किया जावे जिससे उर्वरक की क्षमता अधिकतम बनी रहे।

उर्वरकों का भण्डारण करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें—

1. उर्वरकों को आवश्यकतानुसार फसल बोआई के 1 से 2 माह पूर्व क्रय करके रख लें क्योंकि कभी-कभी बोआई के समय ये उर्वरक उपलब्ध नहीं हो पाते हैं।
2. उर्वरकों की बोरियां फटी न हो तथा ऐसी बोरियों को अलग रखें।
3. उर्वरकों को शुष्क एवं हवादार कक्ष में रखें।
4. अलग-अलग उर्वरकों के चट्टे अलग-अलग लगायें तथा बोरियों का मुंह एक-दूसरे के सामने रखें।
5. फर्श पर बिछावन के रूप मे भूसा, धान की भूसी, पुआल आदि बिछा कर या लकड़ी के तख्ते लगाकर बोरियो के चट्टे लगायें जिससे नमी का प्रभाव कम हो।
6. बोरियों को दीवार से स्थान छोड़कर लगायें तथा प्रत्येक चट्टे के चारों ओर स्थान छोड़ दें जिससे वायु का आवागमन होता रहे और उर्वरक सही दशा में रहे।
7. आर्द्रताग्राही उर्वरकों को फर्श पर पॉलीथीन बिछाकर भण्डारण करें जिससे वातावरण तथा फर्श की नमी का प्रभाव न पड़े।
8. उर्वरकों को आवश्यकतानुसार निकालने के बाद तुरन्त मुंह बन्द कर देना चाहिए।

कार्बनिक तथा अकार्बनिक खादों में भेद

कार्बनिक (जीवांश)	अकार्बनिक (रासायनिक)
1. इन खादों में कार्बन अंश रहता है।	1. इनमें कार्बन का अंश नही रहता है।
2. ये पूर्ण खादें हैं क्योंकि इनमें पौधों के सभी तत्व उपस्थित रहते हैं।	2. ये अपूर्ण खादें हैं क्योंकि ये एक या दो तत्वों को प्रदान करती हैं।
3. इनमें पौधों के खाद्य तत्व धीरे-धीरे कुछ समय बाद प्राप्त होता है। इनका प्रभाव कई वर्ष तक रहता है।	3. इनमें खाद्य तत्व बहुत शीघ्र प्राप्त होने लगता है।
4. खाद्य तत्वों का प्रतिशत अपेक्षाकृत काफी कम पाया जाता है।	4. इनमे खाद्य तत्वों का प्रतिशत अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है।
5. ये भूमि की भौतिक दशा को सुधार कर उसकी संरचना तथा जल धारण की क्षमता बढ़ाते है।	5. कैल्शियम उर्वरकों को छोड़कर अन्य खादों के लगातार प्रयोग से भूमि की भौतिक दशा खराब होने की आशंका रहती है। अमोनियम सल्फेट अम्लीय तथा सोडियम नाइट्रेट क्षारीय प्रभाव डालता है।
6. जैविक पदार्थों के विघटन से प्राप्त कार्बनिक अम्ल अघुलनशील पोषक तत्वों को पौधों की उपलब्ध अवस्था में बनाने में सहायक होता है।	6. इनके प्रयोग से हानि हानिकर लवण उत्पन्न हो जाते हैं। अमोनियम सल्फेट के लगातार प्रयोग से मृदा मे चूने की कमी होने से उसका स्वतन्त्र अम्ल लोहे तथा एल्यूनियम के यौगिक बनाकर विषैला प्रभाव छोड़ता है।
7. इनके प्रयोग से मिट्टी की जल धारण शक्ति बढ़ जाती है और फसलें जल की कमी को सहन कर सकती हैं।	7. इनके प्रयोग से जल धारण शक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
8. भूमि का जल निकास अच्छा रहता है।	8. लगातार इनके प्रयोग में जल-निकास खराब हो जाता है। चिकनी मिट्टी

कार्बनिक (जीवांश)	अकार्बनिक (रासायनिक)
	में सोडियम नाइट्रेट से अपूर्णन होने से जल-निकास खराब हो जाता है।
9. जीवांश की उपस्थिति में लाभदायक जीवाणुओं की वृद्धि होती है।	9. इसका जीवाणुओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
10. इनके प्रयोग से मृदा में वायु संचार ठीक होता है जिससे जीवाणु सक्रिय रहते हैं।	10. मृदा वायु सचार पर कोई प्रभाव नही पड़ता है।
11. पौधों की वृद्धि के लिए सहायक पदार्थ आक्सीमोन्स पाये जाते हैं।	11. इनमें ऑक्सीमोन्स नही पाये जाते हैं।
12. जीवांश खादें पौधों में सन्तुलित वृद्धि करती हैं।	12. ये खादें किसी विशेष प्रकार का प्रभाव दिखलाती हैं। जैसे नाइट्रोजनप्रद उर्वरको से वानस्पतिक वृद्धि होती है।
13. भूमि के कार्बन तथा नाइट्रोजन के अनुपात को ठीक रखती हैं।	13. इनका कोई प्रभाव नहीं होता है
14. ये अपेक्षाकृत सस्ती होती हैं तथा अधिक मात्रा में प्रयोग की जाती हैं। साथ ही स्थान भी अधिक घेरती हैं।	14. ये महगी होती हैं तथा अपेक्षाकृत कम मात्रा मे प्रयोग की जाती हैं और थोडा स्थान घेरती हैं।
15. इसके प्रयोग में विशेष सावधानी की आवश्यकता नहीं होती है।	15. इनमे प्रयोग में विशेष सावधानी रखनी पड़ती है अन्यथा भारी हानि हो सकती है।

विभिन्न खादों में मुख्य भोज्य तत्वों की प्रतिशत मात्रा

क्रमांक	खाद	पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा		
		नाइट्रोजन (N)	फास्फोरिक अम्ल (P_2OS)	पोटाश (K_2O)
	(1) जीवांश खाद			
	(अ) भारी कार्बनिक खादें			
1.	गोबर की खाद	0 50	0 25	0·50
2.	कम्पोस्ट (शहरी)	1 40	1 00	1·40
3.	कम्पोस्ट (ग्रामीण)	0 60	1·50	2·30
	(ब) हल्की कार्बनिक खादें			
1.	अण्डी की खली	4·30	1·80	1·30
2.	अलसी की खली	5·50	1·50	1·30
3.	तिल की खली	6·20	2·00	1·20
4.	सरसों की खली	5 50	1·70	1·20
5.	नीम की खली	5·20	1·00	1 40
6.	महुआ की खली	2·50	1·80	1·80
7.	नारियल की खली	3·00	1·80	1 80
8.	मूंगफली की खली (छिलका सहित)	4·50	1·70	1·50
9.	मूंगफली की खली (छिलका रहित)	7·30	1·50	1·30
10.	बिनौले की खली (छिलका रहित)	6·40	2·90	2·10
11.	बिनौले की खली (छिलका सहित)	3·90	1·80	1·60
	(स) प्राणीजात खादें			
1.	मछली की खाद	8·50	6·00	—
2.	सूखा रक्त	10 00	1;50	1·00
3.	खुर व सींग की खाद	15 00	—	—
4.	हड्डी का चूर्ण (अपक्व)	3—4	20—25	—
5.	हड्डी का चूर्ण (वाष्पोचारित)	1—2	25—30	—
6.	हड्डी की भस्म	1—2	30—40	—
	(2) अकार्बनिक खादें			
	(अ) नाइट्रोजनप्रद उर्वरक			
	(i) अमोनियम उर्वरक			
1.	अमोनियम सल्फेट	20·00	—	—

क्रमांक	खाद	N%	P_2O_5%	K_2O%
1	2	3	4	5
2.	अमोनियम क्लोराइड	26 00	—	—
3.	अमोनियम द्रव	20–25	—	—
4.	अमोनिया गैस	82 00	—	—
	(ii) नाइट्रेड उर्वरक			
5.	कैल्शियम नाइट्रेट	15 00	—	—
6.	सोडियम नाइट्रेट	16·00	—	—
	(iii) नाइट्रेट एवं अमोनिया उर्वरक			
7.	कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट	20 00	—	—
8.	अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट	26 00	—	—
9.	अमोनियम नाइट्रेट	33·00	—	—
	(iv) अमाइड उर्वरक			
10.	यूरिया	46·00	—	—
11.	कैल्शियम साइनामाइड	40·00	—	—
	(ब) फास्फोरसप्रद उर्वरक (i) जल में घुलनशील			
1.	सुपर फास्फेट (एकल)	—	16·00	—
2.	सुपर फास्फेट (द्विगुण)	—	30–32	—
3.	सुपर फास्फेट (त्रिगुण)	—	45–48	—
	(ii) साइट्रिक अम्ल में घुलनशील			
4.	बेसिक स्लैग (भारतीय)	—	3—5	—
5.	बेसिक स्लैग (यूरोपीय)	—	11–16	—
6.	रॉक फास्फेट	—	30–32	—
7.	डाई कैल्शियम फास्फेट	—	35–40	—
8.	कैल्शियम मेटा फास्फेट	—	63–00	—

1	2	3	4	5
	(स) पोटाशप्रद उर्वरक			
1.	पुटेशियम सल्फेट	—	—	45·50
2	पुटेशियम क्लोराइड (म्यूरेट पोटाश)	—	—	60 62
3.	पुटेशियम कार्बोनेट	—	—	65·00
4	पुटेशियम मैग्नीशियम कार्बोनेट	—	—	20·00
5.	पुटेशियम मैग्नीशियम सल्फेट	—	—	21·30
6.	पुटेशियम सोडियम नाइट्रेट	—	—	15·00
7.	बिटर्न पोटाश	—	—	7·00
8	लकड़ी की राख	—	—	4·8-5·00
	(द) यौगिक उर्वरक			
1.	मोनो-अमोनियम फास्फेट	11 00	45·00	—
2.	डाइ-अमोनियम फास्फेट	18 00	46·00	—
3	एमोफास 'ए'	11 00	45·00	—
4.	एमोफास 'बी'	16 00	20·00	—
5	नाइट्रोफास्फेट	16·00	13·00	—
6.	पोटेशियम नाइट्रेट	13·00	—	45 00
7.	पोटेशियम फास्फेट	—	32·00	30·00
8.	अमोनियम सुपर फास्फेट	4 00	18·00	—
9	यूरिया अमोनियम फास्फेट	28 00	28·00	—
10	यूरिया अमोनियम फास्फेट	22·00	22·00	—
	(य) मिश्रित उर्वरक			
	(i) अपूर्ण मिश्रित उर्वरक			
1.	स्टेरामील एस. पी एम.	7·00	10 00	—
2.	यू. पी. उर्वरक मिश्रण नं. 1	16 00	9·00	—
3.	यू. पी. उर्वरक मिश्रण नं. 2	12 00	6·00	—
4.	ग्रोमोर	28·00	28·00	—
5.	सुफला (धूसर)	20 00	20·00	—
	(ii) पूर्ण मिश्रित उर्वरक—			
1.	स्टेरामील एस बी. एल.	7·00	10·00	5·00
2.	स्टेरामील एस. बी. एल.	7·00	10 00	10 00.
3.	यू. पी. उर्वरक मिश्रण नं. 3	12 00	6 00	6 00
4.	यू. पी. उर्वरक मिश्रण नं. 4	8 00	8 00	8·00
5	एन. पी. के. काम्पलैक्स	14 00	14 00	14·00
6.	सुफला (पीला)	18 00	18 00	9·00
7.	सुफला (गुलाबी)	15 00	15 00	15·00
8.	इफको— श्रेणी–1	10 00	26·00	26 00
	श्रेणी–2	12 00	32 00	16·00
	श्रेणी–3	14·00	36·00	12.00
9.	मद्रास फर्टिलाइजर्स ---	17 00	17·00	17 00
10.	ग्रोमोर स्पेशल	14 00	35·00	14·00

खाद एवं उर्वरकों के प्रयोग करने की विधि
(Methods of Application of Manures Fertilizers)

खादों का पूर्ण उपयोग तभी समझा जाना चाहिए जबकि पौधे उन्हें अच्छी प्रकार प्रयोग कर सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए खादों के प्रयोग की प्रभावकारी विधि का जानना अत्यन्त आवश्यक है। खादों के देने की विभिन्न विधियाँ निम्नलिखित हैं—

(1) ठोस रूप में

1. छिटकवां विधि (Broad Casting)
   (i) बोआई के समय छिटकना (Basal Dressing)
   (ii) खड़ी फसल में छिटकना (Top Dressing)
2. स्थापन विधि (Placement)
   (i) हल दुस्तर स्थापन (Plough Sole Placement)
   (ii) गहन स्थापन (Deep Placement)
   (iii) अधोभूदा स्थापन (Sob-Soil Placement)
3. विशेष स्थान पर उर्वरक देना (Localized Placement)
   (i) स्पर्श स्थापन (Contact Placements)
   (ii) पट्टी स्थापन (Band Placements)
   (iii) चोटी स्थापन (Hill Placement)
   (iv) गोली का अनुप्रयोग (Pallet Applications)
   (v) पौधों के समीप स्थापन (Side Placements)

(2) द्रव के रूप में
   (i) प्रारम्भिक उर्वरक विलयन (Starter Solution)
   (ii) पर्ण छिड़काव (Folier Application)
   (iii) उर्वरक घोल का सीधे भूमि में प्रयोग
   (iv) सिंचाई के जल के साथ द्रव उर्वरकों का प्रयोग
   (v) सूचो-वेध ढंग
   (vi) बीजों को तत्वों के घोल मे डुबोना
   (vii) बीजों के ऊपर तत्वों की पर्त चढ़ाना

(1) ठोस रूप में—

1. छिटकवां विधि—इस विधि से खाद तथा उर्वरकों की पूरी मात्रा भूमि पर छिटक दी जाती है। वितरण की क्रिया भूमि तैयारी के समय, बीज बोआई से पूर्व तथा खड़ी फसलो में की जाती है। उर्वरकों के प्रयोग के करने के समयानुसार इन विधियों को दो भागों में बाँटा जाता है—

(i) बोआई के समय छिटकना (Bassal Dressing)—फसल बोने से पूर्व खाद व उर्वरकों को भूमि पर छिटक दिया जाता है जिससे यह भूमि पर अच्छी तरह मिल जाये। इसमें अधिक मात्रा में खादों की आवश्यकता होती है।

भूमि में बोआई के समय खाद का प्रयोग निम्नलिखित स्थिति में किया जाता है—

(अ) भूमि में अधिक नाइट्रोजन तत्व ग्रहण करने वाली फसलें, चारे की ज्वार, मक्का बोने पर नाइट्रोजन का अत्यधिक अभाव हो जाता है। तो नाइट्रोजनप्रद उर्वरकों को इसी विधि से प्रयोग करते हैं।

(ब) अम्लीय तथा साधारण भूमि में अघुलनशील फास्फोरस उर्वरक-बोन मील तथा साइट्रेट में घुलनशील फास्फोरस उर्वरक-बेसिक स्लेग, कैल्शियम फास्फेट का इसी विधि से प्रयोग करते हैं।

(स) भूमि में पोटाश की कमी होने पर उर्वरकों का इसी विधि से प्रयोग करते हैं। परन्तु फास्फोरस तथा पोटाश उर्वरकों की गतिमान शक्ति कम होने से ये मृदा में स्थिर हो जाते हैं जिससे कूंड मे प्रयोग करना चाहिए।

(द) जीवांश खादों का प्रयोग सदैव छिटकवां विधि से बोआई से बहुत पहले, खेत की तैयारी के समय करते हैं। गोबर, कम्पोस्ट, हरी खाद को बोने से 1 से 2 माह पूर्व देते हैं। खलियों को बारीक पीसकर लगभग 15 दिन पूर्व डालना अच्छा है। शीरा तथा प्रेस मड को 2 से 3 माह पूर्व डालें जिससे ये अच्छी तरह सड़-गलकर खाद्य तत्व पौधों को उपलब्ध हो सकें।

(य) भूमि संशोधक के रूप में जिप्सम को बोआई से कुछ माह पूर्व छिटक कर अच्छी तरह मिट्टी में मिला देना चाहिए।

(ii) खड़ी फसल में छिटकना (Top Dressing)—नाइट्रेट रूप में नाइट्रोजन प्रदान करने वाले सोडियम नाइट्रेट, अमोनियम नाइट्रेट, कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट आदि उर्वरकों को फसल में छिटककर दिया जाता है जिससे पौधे इसे शीघ्र उपयोग करने लगते हैं।

फसल पर उर्वरक छिड़कते समय पत्तियाँ नम या गीली न हों क्योंकि इस स्थिति में पत्तियों के जलने या झुलसने का भय रहता है।

2. स्थापन विधि (Placement Method)—इस विधि से उर्वरको को भूमि में प्रयोग किया जाता है किन्तु प्रयोग के समय बीज तथा पौधे की स्थिति का ध्यान नहीं रखा जाता है। उर्वरकों का स्थापन निम्न विधियों [illegible] ते हैं—

(i) हल कूंड़ स्थापन (Plough [illegible]e [illegible] विधि में उर्वरक कूण्डों में डाला जाता है। दूसरी [illegible] हो [illegible] ाती है। फास्फोरस तथा पोटाशधारी [illegible] वि.

यह विधि वहां प्रयोग करते है जहां भूमि की ऊपरी सतह कुछ गहराई तक सूख जाती है जिससे उर्वरकों को निचली नम तहों में देने से पौधे शुष्क स्थिति ग्रहण कर सकें।

(ii) गहन स्थापन (Deep Placement)—इस विधि मे उर्वरक गहराई में जड़ क्षेत्र में डाला जाता है जिससे पौधो की वृद्धि के समय इसका पूर्ण उपयोग हो सके। पानी द्वारा बहने की सम्भावना कम रहती है।

धान की फसलों में अमोनियम सल्फेट, यूरिया, उर्वरको को लेव लगाते समय से पूर्व देने पर उर्वरक गहराई पर स्वयं पहुँच जाते हैं। फास्फोरस उर्वरक को इसमे देने से इसकी क्रियाशीलता बढ़ जाती है।

(iii) अधोमृदा स्थापन (Subsoil Placement)—इस विधि में उर्वरकों को यन्त्रों द्वारा भूमि की अधोमृदा में देते है। जिन स्थानो पर आर्द्रता अधिक होती है जिससे अधोमृदा अम्लीय होने से तत्वों की कमी हो जाती है। वहाँ यह विधि अपनायी जाती है जिससे तत्व पौधों की वृद्धि के समय उपलब्ध हो जाते है।

3. स्थानिक स्थापन (Localized Placement) - इस विधि मे उर्वरकों को भूमि में बीजों या पौधों के समीप दिया जाता है। उर्वरकों की कम मात्रा देने के लिए उर्वरकों को बीजों या पौधों के समीप पट्टियो या पाकेट्स के प्रयोग किया जाता है। निम्नलिखित विधियां अपनाई जाती हैं—

(i) स्पर्श स्थापन (Contact Placement) —इस विधि से उर्वरको तथा बीजों को एक साथ फर्टी ड्रिल से किया जा सकता है। पंक्ति में बोई जाने वाली फसलों—गेहूँ, जौ, बाजरा, कपास, आलू आदि के लिए अच्छी विधि है। बीज के साथ उर्वरक प्रयोग करने से बीजों को अंकुरण शक्ति के नष्ट होने की आशंका रहती है। विभिन्न फसलों मे उर्वरक प्रयोग के लिए विशेष प्रकार की ड्रिल बनाई गई है। इनका प्रयोग दहलनी फसलों मे न करें।

(ii) पट्टी स्थापन (Band Placement)—इसमें उर्वरकों को पौधों की पंक्ति के एक या दोनो ओर किया जाता है। पट्टी की गहराई तथा लम्बाई बीज या पौधों की दूरी पर निर्भर करती है।

(iii) चोटी स्थापन (Hill Placement)—जब पौधो की दूरी 1 मीटर से अधिक होती है तो उर्वरकों की पूरी या आवश्यक मात्रा बोआई के समय दे दी जाती है। यह विधि कपास, मक्का, आलू फसलों तथा फलदार वृक्षो में अपनायी जाती है।

(iv) गोली का अनुप्रयोग (Pallet Application)—धान की फसल में उर्वरकों को गोलियों के रूप में प्रयोग किया जाता है। उर्वरकों को 1 : 10 अनुपात में मिट्टी के साथ गोलियां बनाकर आवश्यकतानुसार पैराफीन की पर्त चढ़ा देते हैं।

गोलियों को पानी से भरे खेत में फेंक देते हैं जिससे ये नीचे बैठ जाती है और लवण पौधों को मिल जाते हैं। इनको पौधों के पास भी रख देते हैं।

(v) पौधों के समीप स्थापन (Side Placement)—पौधों के कुछ बड़े हो जाने पर उर्वरकों को दिया जाता है। उर्वरकों को हाथ से पौधों की पंक्ति के बीच या चारों ओर डाल देते हैं। विभिन्न फसलों, शाक-भाजी तथा फलदार वृक्षों में यह विधि अपनाते हैं।

(2) उर्वरकों का द्रव रूप में प्रयोग (Application of Fertilizers in liquid Form)—उर्वरकों का द्रव रूप में प्रयोग करना महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित विधियाँ है—

(1) चालक उर्वरक विलयन (Starter Solution Application)—उर्वरकों के घोल को पौधों की रोपाई के बाद प्रयोग करते है। खाद की सिंचाई के जल में अल्प मात्रा में घोलकर चालक घोल के रूप में प्रयोग करते हैं जिससे पौधों को शीघ्र पोषक तत्व मिल जाते है और उनकी प्रारम्भिक वृद्धि तेज हो जाती है।

(2) पर्ण-छिड़काव (Foliar application)—इस विधि में उर्वरकों के घोल या द्रव उर्वरकों या सूक्ष्म तत्वों के घोल को पौधों की पत्तियों पर छिड़कते हैं। छिड़कने के लिए विशेष प्रकार के यन्त्र, स्प्रेयर उपयोग में लाए जाते हैं। पौधों की पत्तियों द्वारा पौधे के योग्य सभी पोषक तत्वों का पोषण शीघ्र तथा पूर्ण होता है। फसलों पर यूरिया का छिड़काव अत्यधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसके लिए कुछ विशेष सावधानी रखनी पड़ती है—

(i) घोल की सांद्रता 3 से 5% से अधिक न हो!

(ii) यूरिया में बाई यूरेट की मात्रा ·5 से 1% से अधिक न हो।

(iii) अधिक तेज हवा या वर्षा के समय छिड़काव न करें।

(iv) छिड़काव समान रूप से करें।

(v) पौधों में फूल बनने के बाद छिड़काव न करें।

इन सावधानियों के ध्यान न रखने पर फसल में लाभ के स्थान पर हानि भी हो सकती है।

लाभ—(i) थोड़ी मात्रा में दिया जाने वाला उर्वरक समान रूप में दिया जा सकता है।

(ii) असमतल तथा बलुई भूमि, जिसमे उर्वरक का ह्रास जल्दी हो जाता है, में यह विधि अच्छी है।

(iii) सिंचाई की सुविधा न होने पर वहाँ उर्वरक प्रयोग का यही एक मात्र साधन है।

(iv) इस घोल में कीट व रोगनाशक दवाओं का प्रयोग करके दोहरा लाभ पा जा सकता है।

(v) पत्तियों पर छिड़काव से पौधों को तत्व शीघ्र मिल जाते हैं जिसका प्रभाव दुगुना और अधिक होता है।

पर्ण-छिड़काव को आवश्यकतानुसार 2 से 3 सप्ताह के अन्दर पुनः किया जा सकता है। नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश उर्वरकों के अलावा सूक्ष्म और लघु तत्वों का छिड़काव किया जा सकता है।

(3) उर्वरक घोल का सीधे भूमि में प्रयोग (Direct application of liquid fertilizers to the Soil)—इस विधि में नाइट्रोजन घोल तथा अन्य द्रव उर्वरक (जो दो या तीनों तत्वों को प्रदान करते हैं) को विशेष उपकरणों की सहायता से सीधे भूमि में प्रयोग किए जाते हैं। इसका प्रचलन अब बढ़ने लगा है।

(4) सिंचाई के जल के साथ द्रव उर्वरकों का प्रयोग (Application of liqu.d fertilizers through irrigation water)—इसमें उर्वरकों तथा द्रव उर्वरकों को जल की धारा में छोड़ देते हैं जो जल के साथ घुलकर पूरे खेत में फैल जाते हैं। भूमि की धरातल होने पर ही यह विधि अपनायें।

(5) सूची वेध ढंग (Injection Method)—फलदार वृक्षों के तनों में 1·5 मीटर की दूरी पर जाइलम (Xylem) में उर्वरक की सुई लगाते हैं। इससे फलों की संख्या तथा गुणों में वृद्धि होती है। इसमें सूक्ष्म तत्वों, विशेष पोषक तत्वों तथा फास्फोरिक उर्वरकों को प्रयोग किया जाता है।

(6) बीजों के तत्वों के घोल में डुबोना (Sinking Seeds with nuterient Solution)—इस विधि में सूक्ष्म तत्वों जैसे लौह आदि के यौगिकों के निश्चित सान्द्रता के घोल में निश्चित समय तक बीजों को डुबोकर बो दिया जाता है जिसका उपज पर अधिक प्रभाव पडता है। फास्फोरस को मृदा में देने की अपेक्षा यह विधि अच्छी है।

(7) बीजों के ऊपर तत्वों की परत चढ़ाना (Coating Seed with nutrient paste)—जिन भूमियों में सूक्ष्म तत्वों की कमी होती है वहाँ इस विधि से सूक्ष्म तत्वों तांबा, जस्ता, लोहा आदि के गाढ़े घोल को पर्त चढ़ा देते हैं जिससे सूक्ष्म तत्वों का वितरण समान हो जाता है और पौधों के शीघ्र उपयोग में आ जाती है।

प्रश्न

1. रासायनिक उर्वरकों का वर्गीकरण सोदाहरण करिए तथा इनके प्रयोग की विभिन्न विधियों का वर्गीकरण करिए।
2. नत्रजन प्रदान करने वाले 5 उर्वरकों के नाम, इनसे प्राप्त नत्रजन की मात्रा बताइए।
3. सुपर फास्फेट कितने प्रकार का होता है, इनका निर्माण कैसे किया जाता है?
4. पोटेशियम क्लोराइड तम्बाकू की फसल में देना अच्छा नहीं रहता है, क्यों?

5. फसलों में खादों एवं उर्वरकों को देने का समय एवं विभिन्न उचित विधियों का उदाहरण सहित वर्णन करिए।
6. मिश्रित उर्वरक क्या है, यह उर्वरक से किस प्रकार भिन्न होता है?
7. मिश्रित उर्वरकों से प्राप्त लाभ एवं हानि बताइए।
8. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—
   (अ) यूरिया तथा अमोनियम सल्फेट विधि
   (ब) सोडियम नाइट्रेट
   (स) कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट
   (द) उर्वरकों का चुनाव तथा प्रयोग में सावधानियाँ
   (य) सर्वाधिक उपयोग में आने वाले मिश्रित उर्वरक तथा इनमें तत्वों की मात्रा।

20. खाद की मात्रा का निर्धारण

(Determination of the Quantity of Manures)

खाद की मात्रा ज्ञात करने के लिए तीन बातों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक

फसल के लिए भोज्य तत्वों की कितनी आवश्यकता है ?
खाद में भोज्य तत्वों का प्रतिशत क्या है ?
कौन-कौन सी खाद उपलब्ध हैं ?

. जीवांश खादें उपलब्ध होने पर नाइट्रोजन की कम से कम आधी या 3/4 मात्रा इसी खाद से करें।

(1) उदाहरण—एक हेक्टर गेहूँ की फसल में 80 किग्रा. नाइट्रोजन की आवश्यकता है, किसान के पास अमोनियम सल्फेट उपलब्ध है, कितनी मात्रा की आवश्यकता होगी ?

हल – अमोनियम सल्फेट में 20% नाइट्रोजन होता है।

∵ 20 किग्रा. नाइट्रोजन 100 किग्रा. अमोनियम सल्फेट से मिलती है।

∴ 1 किग्रा. " $\frac{100}{20}$ किग्रा. " "

∴ 80 किग्रा. " $\frac{100 \times 800}{20}$ किग्रा. " "

उत्तर—अमोनियम सल्फेट = 400 किग्रा.

उर्वरक की मात्रा ज्ञात करने के निम्न सूत्र भी उपयोग में आ सकते हैं—

$$\text{अ (खाद की मात्रा)} = \frac{100 \times \text{ब}}{\text{स}}$$

जिसमें—अ—खाद की मात्रा
ब—फसल में दिए जाने वाले तत्व की मात्रा
स—खाद में तत्व की प्रतिशत मात्रा

इस प्रकार—

$$\text{अमोनियम सल्फेट की मात्रा} = \frac{100 \times 80}{20}$$

$$= 400 \text{ किग्रा.}$$

(2) उदाहरण—एक हेक्टर तम्बाकू की फसल के लिए 20 किग्रा नाइट्रोजन, 60 किग्रा. फास्फोरस तथा 75 किग्रा. पोटाश देनी है तो प्रत्येक व मात्रा बताइए जबकि उसके पास सोडियम नाइट्रेट, सुपर फास्फेट एकल, पुटेशियम सल्फेट उपलब्ध है।

हल—∵ सोडियम नाइट्रेट मे 15% नाइट्रोजन होता है।

∴ 20 किग्रा. नाइट्रोजन के लिए सोडियम नाइट्रेट की मात्रा

$$= \frac{100 \times 20}{15} \text{ किग्रा.}$$

$$= 133.33 \text{ किग्रा.}$$

∵ सुपर फास्फेट में 15% फास्फोरस होता है।

∴ 60 किग्रा. फास्फोरस के लिए सुपर फास्फेट की मात्रा

$$= \frac{100 \times 60}{15} \text{ किग्रा.}$$

$$= 400 \text{ किग्रा.}$$

∴ पुटेशियम सल्फेट में 50% पोटाश होता है।

∴ 75 किग्रा. पोटाश के लिए पुटेशियम सल्फेट की मात्रा

$$= \frac{100 \times 75}{50} \text{ किग्रा.}$$

$$= 150 \text{ किग्रा.}$$

कुल मिश्रण—सोडियम नाइट्रेट—133.33 किग्रा.

सुपर फास्फेट —400.00 किग्रा.

पोटेशियम सल्फेट—150.00 किग्रा.

(3) उदाहरण—एक हेक्टर गेहूँ की फसल के लिए 100 किग्रा. नाइट्रोजन, 60 किग्रा. फास्फोरस तथा 50 किग्रा. पोटाश देना है। कृषक के पास यूरिया, डाई अमोनियम फास्फेट तथा पुटेशियम क्लोराइड उर्वरक हैं, इनकी मात्रा बताइए।

हल—डाई अमोनियम सल्फेट उर्वरक में 18% N_2 तथा 40% फास्फोरस मिलता है जिससे—

1. फास्फोरस तत्व के लिए डी. ए. पी. की मात्रा ज्ञात करें।

2. डी. ए. पी. से प्राप्त नाइट्रोजन की मात्रा निकालें।

3. कुल नाइट्रोजन की मात्रा में डी. ए. पी. से प्राप्त नाइट्रोजन की मात्रा को घटायें।

4. इस नाइट्रोजन को यूरिया से गणना करके मात्रा निकालें।

अतः —

60 किग्रा. फास्फोरस के लिए डा. अ. फा. की मात्रा $= \frac{100 \times 60}{46}$ किग्रा.

डा. अ. फा. $= 130$ किग्रा.

130 किग्रा. डाई अमोनियम सल्फेट से प्राप्त नाइट्रोजन $=$

$\therefore$ 130 किग्रा. डा. अमो. फा. से 18 किग्रा. नाइट्रोजन मिलती है—

130 किग्रा. „ „ $= \frac{18 \times 130}{100}$ किग्रा नाइट्रोजन

नाइट्रोजन $= 23 \cdot 4$ किग्रा.

यूरिया से देय नाइट्रोजन $=$ कुल दी जाने वाली नाइट्रोजन — डी ए पी से प्राप्त नाइट्रोजन

$= 100 - 23 \cdot 4$

$= 86 \cdot 6$ किग्रा.

अतः यूरिया की मात्रा $= \frac{100 \times 86 \cdot 6}{46}$ किग्रा.

यूरिया $= 186 \cdot 5$ किग्रा.

पोटेशियम क्लोराइड की मात्रा $= \frac{100 \times 50}{60}$ किग्रा.

$= 83 \cdot 33$ किग्रा.

उत्तर—डाइ अमोनियम फास्फेट $= 130$ किग्रा.

यूरिया $= 186 \cdot 5$ किग्रा.

पोटेशियम क्लोराइड $= 83 \cdot 33$ किग्रा.

(4) उदाहरण – एक हेक्टर गन्ने की फसल के लिए 120 किग्रा. नाइट्रोजन की आवश्यकता है। गोबर की खाद, अण्डी की खली और अमोनियम सल्फेट उपलब्ध है। प्रत्येक खाद की मात्रा बताओ।

हल—गन्ने की फसल वर्ष भर रहती है। इससे नाइट्रोजन का 3 भाग जीवांश खादों से एवं एक भाग उर्वरक से देंगे।

अतः गोबर की खाद से दी जाने वाली नाइट्रोजन—60 किग्रा.
मण्डी की खली में दी जाने वाली नाइट्रोजन—30 किग्रा.
अमोनियम सल्फेट से दी जाने वाली नाइट्रोजन—30 किग्रा.

कुल—120 किग्रा.

गोबर की खाद में नाइट्रोजन का प्रतिशत 0·5 है।

अतः गोबर की खाद की मात्रा $= \frac{100 \times 10 \times 60}{5}$ किग्रा.

$= 12,000$ किग्रा.

अण्डी की खली में नाइट्रोजन का प्रतिशत 4·4 है

अतः, अण्डी की खली की मात्रा $= \frac{100 \times 10 \times 30}{4 \cdot 4}$ किग्रा.

$= 662$ किग्रा.

अमोनियम सल्फेट में नाइट्रोजन का प्रतिशत 20 है

अतः, अमोनियम सल्फेट की मात्रा $= \frac{100 \times 30}{20}$ किग्रा.

$= 150$ किग्रा.

उत्तर– गोबर की खाद = 120 क्विण्टल
अण्डी की खली = 6·82 क्विण्टल
अमोनियम सल्फेट = 1·50 क्विण्टल

(5) उदाहरण—एक हेक्टर मक्का की फसल में 60 किलोग्राम नाइट्रोज तथा 50 किग्रा. फास्फोरस देना है जिसके लिए अण्डी की खली तथा सुपर फास्फे (एकल) उपलब्ध हैं, प्रत्येक खाद की मात्रा ज्ञात करिए।

हल—1. अण्डी की खली में नाइट्रोजन 4·4% तथा फास्फोरस 1·8% होता है।

2. सुपर फास्फेट (एकल) में फास्फोरस होता है।

अतः, 60 किग्रा. नाइट्रोजन के लिए अण्डी की खली की मात्रा

$= \frac{100 \times 10 \times 60}{4 \cdot 4}$ किग्रा.

$= 1363$ किग्रा.

अण्डी की खली से प्राप्त फास्फोरस—

∴ 100 किग्रा. अण्डी की खली से 1·8 किग्रा. फास्फोरस मिलता है

$\therefore$ 1363 किग्रा. ,, ,, $\frac{18 \times 1363}{100 \times 10}$ किग्रा. फास्फोरस

$= \frac{24534}{1000}$ 24·5 किग्रा.

शेष फास्फोरस जो सुपर फास्फेट से दिया जाना है $= 50 - 24·5$
$= 25·5$ किग्रा.

सुपर फस्फेट की मात्रा $= \frac{100 \times 225}{15 \times 10}$

170 किग्रा.

उत्तर—अण्डी की खली = 1363 किग्रा.
सुपर फास्फेट = 170 किग्रा.

खाद के मिश्रण तैयार करना—

इच्छित खादों के मिश्रण तैयार करने के लिए निम्न बातों की जानकारी आवश्यक है—

1. कुल कितना मिश्रण तैयार करना है ?
2. मिश्रण में N.P.K. का क्या अनुपात है ?
3. कौनसी खाद उपलब्ध हैं ?
4. खादों में भोज्य तत्वों की क्या प्रतिशत है ?
5. पूरक (Filler) के रूप में कौनसा पदार्थ उपलब्ध है, (प्रायः चूना, बालू, तालाब की मिट्टी या लकड़ी का बुरादा प्रयोग किया जाता है) ।

(6) उदाहरण—एक किसान एक ऐसी खाद का मिश्रण बनाना चाहता है जिसमें 4·/. नाइट्रोजन, 8·/. पोटाश हो । निम्न खादें उपलब्ध हैं—

(अ) अमोनियम सल्फेट—20·/. नाइट्रोजन
सुपर फास्फेट एकल—15 /. फास्फोरस
म्यूरेट ऑफ पोटाश—60·/. पोटाश

एक मीटर टन खाद का मिश्रण बनाने में कितनी खादो की मात्रा चाहिए ?

हल—1. सर्वप्रथम एक टन में तत्वों की मात्रा ज्ञात की जावेगी—एक मीट्रिक टन मे नाइट्रोजन की मात्रा—

$\therefore$ 100 किग्रा. मिश्रण मे 4 किग्रा. नाइट्रोजन चाहिए ।

$\therefore$ 100 किग्रा. ,, $\frac{4 \times 1000}{100}$ किग्रा.

नाइट्रोजन = 40 किग्रा,

अतः गोबर की खाद से दी जाने वाली नाइट्रोजन—60 किग्रा.
अण्डी की खली में दी जाने वाली नाइट्रोजन—30 किग्रा.
अमोनियम सल्फेट से दी जाने वाली नाइट्रोजन—30 किग्रा.

कुल—120 किग्रा.

गोबर की खाद में नाइट्रोजन का प्रतिशत 0·5 है।

अतः गोबर की खाद की मात्रा $= \frac{100 \times 10 \times 60}{5}$ किग्रा.

$= 12,000$ किग्रा.

अण्डी की खली में नाइट्रोजन का प्रतिशत 4·4 है

अतः, अण्डी की खली की मात्रा $= \frac{100 \times 10 \times 30}{4 \cdot 4}$ किग्रा.

$= 682$ किग्रा.

अमोनियम सल्फेट में नाइट्रोजन का प्रतिशत 20 है

अतः, अमोनियम सल्फेट की मात्रा $= \frac{100 \times 30}{20}$ किग्रा.

$= 150$ किग्रा.

उत्तर- गोबर की खाद = 120 क्विण्टल
अण्डी की खली = 6·82 क्विण्टल
अमोनियम सल्फेट = 1·50 क्विण्टल

(5) उदाहरण—एक हेक्टर मक्का की फसल में 60 किलोग्राम नाइट्रोजन तथा 50 किग्रा. फास्फोरस देना है जिसके लिए अण्डी की खली तथा सुपर फास्फेट (एकल) उपलब्ध है, प्रत्येक खाद की मात्रा ज्ञात करिए।

हल—1. अण्डी की खली में नाइट्रोजन 4·4% तथा फास्फोरस 1·8% होता है।
2. सुपर फास्फेट (एकल) मे फास्फोरस होता है।

अतः, 60 किग्रा. नाइट्रोजन के लिए अण्डी की खली की मात्रा

$= \frac{100 \times 10 \times 60}{4 \cdot 4}$ किग्रा.

$= 1363$ किग्रा.

अण्डी की खली से प्राप्त फास्फोरस—

∴ 100 किग्रा. अण्डी की खली से 1·8 किग्रा. फास्फोरस मिलता है

हल—1. (अ) एक मीट्रिक टन में अनुपात के अनुसार दी जाने वाली नाइट्रोजन, फास्फोरिक अम्ल तथा पोटाश की मात्रा की गणना करें।

2. गणना से प्राप्त तत्वों की पूर्ति के लिए उर्वरकों की मात्रा निकालें।

(ब) उर्वरक की मात्रा संक्षिप्त सूत्र से निर्धारित की जा सकती है—

$$\text{उ. मा.} = \frac{\text{मि. कु.} \times \text{मि. प्र.}}{\text{उ. प्र.}}$$

जिसमें—

उ. मा =उर्वरक की मात्रा जिनसे मिश्रण तैयार करना है।

मि. कु.=मिश्रण की कुल मात्रा।

मि. प्र.=मिश्रण में जो उर्वरक तत्व का प्रतिशत या अनुपात होना चाहिए।

उ. प्र. = प्रतिशत तत्व की मात्रा जो उर्वरक में उपस्थित है।

भराव की मात्रा—कुल उर्वरकों की मात्रा के अनुसार निकालें।

अतः—अमोनियम सल्फेट की मात्रा $= \frac{\text{मि. कु.} \times \text{मि. प्र.}}{\text{उ. प्र.}}$

$$= \frac{1000 \times 4}{20}$$

= 200 किग्रा.

सुपर फास्फेट (द्विगुण) की मात्रा $= \frac{1000 \times 10}{30}$

=333.3 किग्रा.

पोटेशियम सल्फेट की मात्रा $= \frac{1000 \times 4}{50}$

=80 किग्रा.

कुल खादों की मात्रा—200 किग्रा. अमोनियम सल्फेट + 333.3 किग्रा. सुपर फास्फेट + 80 किग्रा. पोटेशियम सल्फेट

=613·3 किग्रा.

भराव=386·7 किग्रा.

1,000·0 किग्रा. (एक टन)

एक मीट्रिक टन में फास्फोरिक एसिड की मात्रा—

∴ 100 किग्रा. मिश्रण में 8 किग्रा. फास्फोरिक ग्रम्ल चाहिए।

∴ 1000 किग्रा. ,, $\frac{8 \times 1000}{100}$ किग्रा.

फास्फोरिक ग्रम्ल = 80 किग्रा.

एक मीट्रिक टन में पोटाश की मात्रा—

∵ 100 किग्रा. मिश्रण में 8 किग्रा. पोटाश चाहिए।

∴ 1000 किग्रा. ,, $\frac{8 \times 10000}{100}$ किग्रा.

पोटाश=80 किग्रा.

2. विभिन्न खादों की मात्रा ज्ञात की जावेगी।

ग्रतः (ग्र) सोडियम नाइट्रेट की मात्रा=$\frac{100 \times 40}{15}$ किग्रा.

=266·5 किग्रा.

(ब) सुपर फास्फेट (एकल) की मात्रा=$\frac{100 \times 80}{15}$ किग्रा.

=533.3 किग्रा.

(स) म्यूरेट ग्रॉफ पोटास की मात्रा=$\frac{100 \times 80}{60}$ किग्रा.

=133.3 किग्रा.

कुल खाद की मात्रा=सोडियम नाइट्रेट—266·5+सुपर फास्फेट—533.3+म्यूरेट ग्रॉफ पोटाश 133.3 किग्रा.

=943.1 किग्रा.

पूरक (Filler)=$\frac{56.9 \text{ किग्रा.}}{1000.0 \text{ किग्रा.}}$ ग्रर्थात् एक टन

(7) उदाहरण—एक मीटर टन 4—10—4 ग्रनुपात वाली खाद बनाने के लिए निम्न उर्वरकों की कितनी मात्रा चाहिए—

ग्रमोनियम सल्फेट—20% N

सुपर फास्फेट डबल—30% P_2OS

पोटेशियम सल्फेट 50% K_2O

हल—1. (अ) एक मीट्रिक टन में अनुपात के अनुसार दी जाने वाली नाइट्रोजन, फास्फोरिक अम्ल तथा पोटाश की मात्रा की गणना करें।

2. गणना से प्राप्त तत्वों की पूर्ति के लिए उर्वरकों की मात्रा निकालें।

(ब) उर्वरक की मात्रा महिप्त सूत्र से निर्धारित की जा सकती है—

$$\text{उ. मा.} = \frac{\text{मि. कु.} \times \text{मि. प्र.}}{\text{उ. प्र.}}$$

जिसमें—

उ. मा.=उर्वरक की मात्रा जिनसे मिश्रण तैयार करना है।

मि. कु.=मिश्रण की कुल मात्रा।

मि. प्र.=मिश्रण में जो उर्वरक तत्व का प्रतिशत या अनुपात होना चाहिए।

उ. प्र. = प्रतिशत तत्व की मात्रा जो उर्वरक में उपस्थित है।

भराव की मात्रा—कुल उर्वरकों की मात्रा के अनुसार निकालें।

अतः—अमोनियम सल्फेट की मात्रा $= \frac{\text{मि. कु.} \times \text{मि. प्र.}}{\text{उ. प्र.}}$

$$= \frac{1000 \times 4}{20}$$

= 200 किग्रा.

सुपर फास्फेट (द्विगुण) की मात्रा $= \frac{1000 \times 10}{30}$

=333.3 किग्रा.

पोटेशियम सल्फेट की मात्रा $= \frac{1000 \times 4}{50}$

=80 किग्रा.

कुल खादों की मात्रा—200 किग्रा. अमोनियम सल्फेट + 333.3 किग्रा. सुपर फास्फेट + 80 किग्रा. पोटेशियम सल्फेट

=613·3 किग्रा.

भराव=386·7 किग्रा.

1,000·0 किग्रा. (एक टन)

(8) उदाहरण—एक किसान 4—8—10 प्रतिशत अनुपात का एक टन उर्वरक मिश्रण चाहता है। उसके पास पोटेशियम सल्फेट 50% वाला अमोनियम सल्फेट—20% वाला तथा सुपर फास्फेट 16% वाला है तो उर्वरकों की मात्रा के साथ पूरक की मात्रा भी निकालिए।

हल—मिश्रण में 4% नाइट्रोजन, 8% फास्फोरस तथा 10% पोटाश देना है।

सूत्र से एक मीट्रिक टन में उर्वरकों की मात्रा ज्ञात कर सकते हैं—

$$\text{अमोनियम सल्फेट की मात्रा} = \frac{\text{मि. कु.} \times \text{मि. प्र.}}{\text{उ. प्र.}}$$

$$= \frac{1000 \times 4}{20}$$

$$= 200 \text{ किग्रा.}$$

$$\text{सुपर फास्फेट की मात्रा} = \frac{1000 \times 8}{16}$$

$$= 500 \text{ किग्रा.}$$

$$\text{पोटेशियम सल्फेट की मात्रा} = \frac{1000 \times 10}{50}$$

$$= 200 \text{ किग्रा.}$$

कुल उर्वरकों की मात्रा $= 200 + 500 + 200$

$= 900$ किग्रा.

पूरक पदार्थ $= 100$ किग्रा.

1000 किग्रा. (एक टन)

(9) उदाहरण—एक 4—10—8 अनुपात वाली खाद के एक मीट्रिक टन मिश्रण में निम्न सामग्री का प्रयोग करो किन्तु मिश्रण मे आधी नाइट्रोजन सोडियम नाइट्रेट तथा आधी तालाब की मिट्टी से देना है।

तालाब की मिट्टी—8% नाइट्रोजन, 3% फास्फोरिक अम्ल।

सोडियम नाइट्रेट—16% नाइट्रोजन।

सुपर फास्फेट—30% फास्फोरिक अम्ल।

पुटेशियम क्लोराइड—60% पोटाश।

हल—एक मीट्रिक टन में तत्वों की मात्रा—

नाइट्रोजन की मात्रा $= \dfrac{1000 \times 4}{100}$

$= 40$ किग्रा

फास्फोरिस ग्रम्ल की मात्रा $= \dfrac{1000 \times 10}{100}$

$= 100$ किग्रा.

पोटाश की मात्रा $= \dfrac{1000 \times 8}{100}$

$= 40$ किग्रा.

नाइट्रोजन की ग्राधी 20 किग्रा. मात्रा सोडियम नाइट्रेट तथा 20 किग्रा. तालाब की मिट्टी से देनी है।

ग्रतः सोडियम नाइट्रेट की मात्रा—

∴ 16 किग्रा. नाइट्रोजन 100 किग्रा. सोडियम नाइट्रेट से।

∴ 20 किग्रा. „ $\dfrac{100 \times 20}{16}$ किग्रा. „ „

सोडियम नाइट्रेट $= 125$ किग्रा.

तालाब की मिट्टी की मात्रा—

∴ 8 किग्रा. नाइट्रोजन है 100 किग्रा. तालाब की मिट्टी में

∴ 20 किग्रा. „ $\dfrac{100 \times 20}{16}$ „ „

तालाब की मिट्टी $= 250$ किग्रा.

तालाब की मिट्टी से प्राप्त फास्फोरस ग्रम्ल की मात्रा—

∴ 100 किग्रा. तालाब की मिट्टी से 3 किग्रा. फास्फोरिस ग्रम्ल मिलता है।

∴ 250 „ „ $\dfrac{3 \times 250}{100}$ किग्रा. „ „

$= 7{\cdot}5$ किग्रा.

ग्रतः सुपर फास्फेट से दिया जाने वाला फास्फोरस = कुल फास्फोरस — तालाब की मिट्टी से मिला फास्फोरस

$= 100 - 7{\cdot}5$

$= 92{\cdot}5$ किग्रा.

(8) उदाहरण—एक किसान 4—8—10 प्रतिशत अनुपात का एक टन उर्वरक मिश्रण चाहता है। उसके पास पोटेशियम सल्फेट 50% वाला अमोनियम सल्फेट—20% वाला तथा सुपर फास्फेट 16% वाला है तो उर्वरकों की मात्रा के साथ पूरक की मात्रा भी निकालिए।

हल—मिश्रण में 4% नाइट्रोजन, 8% फास्फोरस तथा 10% पोटाश देना है।

सूत्र से एक मीट्रिक टन में उर्वरकों की मात्रा ज्ञात कर सकते हैं—

अमोनियम सल्फेट की मात्रा $= \frac{\text{मि. कु.} \times \text{मि. प्र.}}{\text{उ. प्र.}}$

$= \frac{1000 \times 4}{20}$

$= 200$ किग्रा.

सुपर फास्फेट की मात्रा $= \frac{1000 \times 8}{16}$

$= 500$ किग्रा.

पोटेशियम सल्फेट की मात्रा $= \frac{1000 \times 10}{50}$

$= 200$ किग्रा.

कुल उर्वरकों की मात्रा $= 200 + 500 + 200$

$= 900$ किग्रा.

पूरक पदार्थ $= 100$ किग्रा.

1000 किग्रा. (एक टन)

(9) उदाहरण—एक 4—10—8 अनुपात वाली खाद के एक मीट्रिक टन मिश्रण में निम्न सामग्री का प्रयोग करो किन्तु मिश्रण में आधी नाइट्रोजन सोडियम नाइट्रेट तथा आधी तालाब की मिट्टी से देना है।

तालाब की मिट्टी—8% नाइट्रोजन, 3% फास्फोरिक अम्ल।

सोडियम नाइट्रेट—16% नाइट्रोजन।

सुपर फास्फेट—30% फास्फोरिक अम्ल।

पुटेशियम क्लोराइड—60% पोटाश।

हल—एक मीट्रिक टन में तत्वों की मात्रा—

$$\text{नाइट्रोजन की मात्रा} = \frac{1000 \times 4}{100}$$

$$= 40 \text{ किग्रा}$$

$$\text{फास्फोरिस अम्ल की मात्रा} = \frac{1000 \times 10}{100}$$

$$= 100 \text{ किग्रा.}$$

$$\text{पोटाश की मात्रा} = \frac{1000 \times 8}{100}$$

$$= 40 \text{ किग्रा.}$$

नाइट्रोजन की आधी 20 किग्रा. मात्रा सोडियम नाइट्रेट तथा 20 किग्रा. तालाब की मिट्टी से देनी है।

अतः सोडियम नाइट्रेट की मात्रा—

∴ 16 किग्रा. नाइट्रोजन 100 किग्रा. सोडियम नाइट्रेट से।

$$\therefore 20 \text{ किग्रा.} \quad " \quad \frac{100 \times 20}{16} \text{ किग्रा.} \quad " \quad "$$

सोडियम नाइट्रेट = 125 किग्रा.

तालाब की मिट्टी की मात्रा—

∴ 8 किग्रा. नाइट्रोजन है 100 किग्रा. तालाब की मिट्टी में

$$\therefore 20 \text{ किग्रा.} \quad " \quad \frac{100 \times 20}{16} \quad " \quad "$$

तालाब की मिट्टी = 250 किग्रा.

तालाब की मिट्टी से प्राप्त फास्फोरस अम्ल की मात्रा—

∴ 100 किग्रा. तालाब की मिट्टी से 3 किग्रा. फास्फोरिस अम्ल मिलता है।

$$\therefore 250 \; " \quad " \quad \frac{3 \times 250}{100} \text{ किग्रा.} \quad " \quad "$$

$$= 7 \cdot 5 \text{ किग्रा.}$$

अतः सुपर फास्फेट से दिया जाने वाला फास्फोरस = कुल फास्फोरस — तालाब की मिट्टी से मिला फास्फोरस

$$= 100 - 7 \cdot 5$$

$$= 92 \cdot 5 \text{ किग्रा.}$$

सुपर फास्फेट की मात्रा —

∴ 30 किग्रा. फास्फोरिक अम्ल मिलता है 100 किग्रा. सुपर फास्फेट में।

∴ 92·5 ,, ,, ,, $\frac{100 \times 92\cdot5}{30}$ किग्रा.

सुपर फास्फेट=308 किग्रा.

पोटेशियम क्लोराइड की मात्रा—

∴ 60 किग्रा. पोटाश 100 किग्रा. पोटेशियम से मिलता है।

∴ 40 किग्रा. ,, $\frac{100 \times 40}{60}$ किग्रा. ,,

=80 किग्रा.

कुल मिश्रण—तालाब की मिट्टी—250 किग्रा.
सोडियम नाइट्रेट—125 किग्रा.
सुपर फास्फेट —308 किग्रा.
पोटेशियम क्लोराइड— 80 किग्रा.
भराव—237 किग्रा.

1000 किग्रा. (एक टन)

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. एक किसान 60 किग्रा. नाइट्रोजन खेत में देना चाहता है; उसके पास अमोनियम सल्फेट 20%, यूरिया 46% तथा अमोनियम नाइट्रेट 26% है, तीनों से बराबर नाइट्रोजन की मात्रा देना चाहता है तो प्रत्येक उर्वरक की मात्रा ज्ञात करो।

2. एक हैक्टर मक्का की फसल में 80 किग्रा. नाइट्रोजन, 50 किग्रा. फास्फोरिक अम्ल तथा 50 किग्रा. पोटाश देनी है तो निम्न उर्वरकों की मात्रा बताओ—

   अमोनियम सल्फेट, सुपर फास्फेट सिंगल, म्यूरेट ऑफ पोटाश

3. 2 हेक्टर गेहूँ की फसल के लिए उर्वरको की मात्रा बताओ जबकि प्रति हेक्टर 100 किग्रा. नाइट्रोजन, 60 किग्रा. फास्फोरस तथा 50 किग्रा. पोटाश देना है। निम्न उर्वरक उपलब्ध हैं—

   यूरिया, सुपर फास्फेट त्रिगुण, पोटेशियम क्लोराइड।

4. एक हेक्टर गन्ना की फसल में 150 किग्रा. नाइट्रोजन, 60 किग्रा. फास्फोरिक अम्ल तथा 40 किग्रा. पोटाश देना है। किसान के पास यूरिया, डाइ-

अमोनियम फास्फेट तथा पोटेशियम सल्फेट उर्वरक हैं, इनकी मात्रा ज्ञात करिये।

5. एक कृषक 5–10–5 मिश्रण एक मैट्रिक टन तैयार करना चाहता है उसके पास निम्न उर्वरक हैं—
अमोनियम सल्फेट—20% नाइट्रोजन
सुपर फास्फेट—30% फास्फोरिक अम्ल
पोटेशियम सल्फेट—50% पोटाश
इनकी मात्रा ज्ञात करिये।

———

21. सिंचाई
(Irrigation)

आदिकाल से ही फसलों में सिंचाई की जाती रही है। सम्पूर्ण विश्व में लगभग 16·2 मिलियन हेक्टर भूमि में सिंचाई की जाती है। कुल भूमि का एक-चौथाई (26·7%) है। सर्वाधिक सिंचित क्षेत्र चीन, यू० एस० ए०, भारत तथा रूस में है। भारत में लगभग 25454 हजार हेक्टर क्षेत्र (लगभग 20% कृषि योग्य भूमि का) में सिंचाई व्यवस्था है।

भारत के पंजाब राज्य में सर्वाधिक 72% क्षेत्र की व्यवस्था है जबकि राजस्थान में 14% (117·3 हजार हेक्टर) क्षेत्र की ही सिंचाई व्यवस्था है। राज्य सरकार इस पंचवर्षीय योजना में माही बजाज परियोजना तथा राजस्थान नहर के निर्माण कार्य को पूरा करके राज्य के पश्चिमी शुष्क एवं असिंचित क्षेत्र में सिंचाई के लिए कृत-संकल्प है।

सिंचाई का महत्व—जल प्रकृति की ऐसी देन है जिसकी आवश्यकता प्रत्येक जीव को होती है। पौधों को भी जल की समुचित मात्रा की आवश्यकता होती है। पौधों का अधिकांश भाग जल से निर्मित होता है। इसका पौधो में 80-90% तक अंश होता है। बीज के अंकुरण से लेकर, वृद्धि, फलन और कटाई तक की प्रत्येक दशाओं में जल की आवश्यकता होती है।

जल हमें मुख्यतया वर्षा से प्राप्त होता है परन्तु वर्षा के अनियमित तथा अनिश्चित समय पर होने और असमान वितरण के फलस्वरूप केवल वर्षा के सहारे सफल फसल उत्पादन असम्भव है। अतः फसलो को जल कृत्रिम रूप से देना आवश्यक हो जाता है।

परिभाषा—'पौधों की वृद्धि के लिए भूमि को कृत्रिम ढंग से जल पहुँचाने को सिंचाई कहते हैं।'

'फसलों के सफल उत्पादन हेतु उनमें कृत्रिम रूप से यथोचित जल पहुँचाने को सिंचाई कहते हैं।'

'फसलों को सफलतापूर्वक उगाने के लिए कृत्रिम रूप से यथोचित जल देने को ही सिंचाई कहते है।'

सिंचाई की आवश्यकता—फसलों में सिंचाई की व्यवस्था निम्नलिखित कारणों से की जाती है—

1. **वर्षा का असमान वितरण**—वर्ष के अधिकांश भाग में वातावरण शुष्क होता है। वर्षा अधिकांश 2–3 माह में हो जाती है जो कहीं अधिक तो कहीं कम। देश के लगभग 60% भाग में काफी कम वर्षा होती है तथा राज्य के कुछ भागों में तो केवल 10–12 सेमी ही वर्षा होती है जिसका केवल सूक्ष्म अंग लगभग 6% ही उपयोग में आता है और शेष बहकर, रिसकर, वाष्पन द्वारा नष्ट हो जाता है जिससे फसलों में सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है।

2. **समय पर वर्षा होना**—वर्षा 15 जून से प्रारम्भ हो जाती है परन्तु कभी-कभी जुलाई तक जल नहीं बरसता है। इस प्रकार वर्षा सितम्बर–अक्टूबर के अंत तक होती रहती है परन्तु कभी सितम्बर के प्रारम्भ में ही समाप्त हो जाती है तो सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः ऐसे समय में फसलो को 'प्रकृति के हाथ जुआ' रहने से बचाने के लिए सिंचाई प्रबन्ध आवश्यक हो जाता है।

3. **मूल्यवान फसलें लगाना**—मूल्यवान फसलों के लिए वर्षा प्रकृति के साधन के कारण, इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है क्योंकि ऐसी फसलो को समय पर जल देना अति आवश्यक हो जाता है अन्यथा काफी हानि की सम्भावना होती है।

4. सिंचाई करने से फसलों को हानि पहुँचाने वाले कुछ कीड़े मकोड़े 'दीमक' आदि नष्ट किये जा सकते हैं।'

5. फसलों को पाले से बचाया जा सकता है।

6. सिंचाई के साधन उपलब्ध होने पर उत्पादन में वृद्धि होती है जो देश की खाद्यान्न समस्या के समाधान में सहायक है।

7. अधिक उपज प्राप्ति से कृषक की आय, स्तर में वृद्धि होती है।

इस प्रकार सिंचाई योजनाओं से ही भारतीय कृषि में पर्याप्त और आशातीत सुधार किया जा सकता है।

पौधों को जल की आवश्यकता—जल फसलों के सफल उत्पादन के लिए एक महत्त्वपूर्ण साधन है जिसकी पौधों के बीज अंकुरण से लेकर कटाई तक, पूरे जीवन काल में लगातार तथा पर्याप्त मात्रा में आवश्यकता होती है। जल की कमी से पौधो की वृद्धि तो दूर, अंकुरण ही नहीं हो सकता है। पौधो को जल की आवश्यकता निम्न कारणों से होती है—

1. जल पौधो का जीवन है, इनकी कोशिकाओं में विद्यमान जीव द्रव्य (Protoplasm) का जल आवश्यक भाग है। यह मात्रा 80–90% तक होती है।

2. जीव द्रव्य की अनेकों उपापचयी क्रियाएं (Matabolic activities) के सही संचालन के लिए जल की उचित मात्रा आवश्यक है।

3. जल एक अच्छा विलायक (Solvent) है जिससे भूमि को पोषक तत्व आदि घुलकर पौधों की जड़ों के माध्यम से तने और पत्तियों तक पहुँचता है। पौधे अन्य प्राणियों की भाँति ठोस दशा में भोजन चलकर प्राप्त नही कर पाते हैं।

4. पौधों की प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) क्रिया के लिए जल आवश्यक है। इस क्रिया में पौधों के हरे भाग पर्णहरित प्रकाश की उपस्थिति में *कार्बनडाई ऑक्साइड (CO_2) तथा जल (H_2O) के संयोग से कार्बोहाइड्रेट* ($C_6H_{12}O_6$) का निर्माण करते हैं तथा स्टार्च से शक्कर बनाने आदि की जलीयकरण (Hydrolysis) क्रिया में जल आवश्यक है।

5. पौधों की वृद्धि के लिए कोशिकाओं की स्फीति (Turgidity) आवश्यक है जिसके लिए जल की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध हो इससे पर्ण रन्ध्र (Stomata) आवश्यक गैस विनिमय के लिए खुले रहते हैं।

6. पौधों द्वारा भूमि से प्राप्त जल की काफी मात्रा (95%) वाष्पोत्सर्जन द्वारा वायुमण्डल मे चली जाती है जो पौधों को गर्मी के प्रभाव से बचाती है।

7. जल श्वसन क्रिया को प्रभावित करता है।

8. पौधो को कोशिका विभाजन तथा अन्य क्रियाओ के सुचारु रूप से संचालन के लिए जल महत्वपूर्ण है।

9. बीज के अंकुरण से लेकर वृद्धि, फूलने-फलने तथा कटाई तक की सभी दशाओं में जल की उचित मात्रा आवश्यक है।

10 भूमि में प्रयुक्त जीवांश खादें तथा उर्वरकों को घुलित अवस्था में लाने के लिए जल आवश्यक है।

11. भूमि में पाये जाने वाले लाभदायक जीवाणुओ की सहक्रिया जल के कारण बढ़ जाती है जो पौधों की वृद्धि में सहायक होती है।

सिंचाई के साधन
(Sources of Irrigation)

सिंचाई के मुख्य साधनों को निम्नलिखित दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—

(अ) *भूमि सतह का जल*—(1) नदी (2) नहरें (3) तालाब और बाँध (4) भील (5) झरने (6) गन्दे नाले।

(ब) भू गर्भ जल—(1) कुआ (2) नल कूप

नहरें (Canals)—सिंचाई के मुख्य साधन हैं जो पानी के उद्गम स्थान से सैकड़ों किलोमीटर दूर पर सिंचाई करती है। इनका निर्माण राज्य या केन्द्रीय

सरकार द्वारा किया जाता है। देश में लगभग एक लाख किलोमीटर (लगभग 60 हजार मील) लम्बी नहरों का जाल बिछा हुआ है जिनके द्वारा समस्त सिंचित क्षेत्र का भाग सींचा जाता है।

जल देने के आधार पर ये नहरें तीन प्रकार की होती हैं—[1]

1. बारहमासी नहरें (Everflowing Canals)—इनमें जल प्रायः वर्ष भर बहता रहता है इनसे जल आवश्यकतानुसार लिया जा सकता है। ये सिंचाई के लिए आवश्यक हैं।

2. बरसाती नहरें (Seasonal Canals)—इनमें जल वर्षा के बाद ही सिंचाई के लिए आता है। बरसात का जल जलाशयों में एकत्रित कर लिया जाता है। राज्य में इस प्रकार की कई नहरें हैं।

3. डाल नहरें (Lift Canals)—जल का धरातल भूतल से काफी कम होने पर नहरों में नदियों से पानी, बिजली से चालित पम्पों द्वारा दिया जाता है। आवश्यक होने पर इनको चालू कर दिया जाता है इन पर अधिक व्यय आता है। पर्वतीय भागों में इस प्रकार की नहरें अधिकता से हैं।

राजस्थान की चम्बल की नहरें, गगानगर, भरतपुर नहर, इन्दिरा गांधी नहर प्रमुख हैं जिनसे लगभग 14·50 लाख हेक्टर भूमि की सिंचाई की जाती है।

लाभ—1. अधिक मात्रा में जल आने से अधिक क्षेत्र की सिंचाई की जाती है।

2. सिंचाई कम समय में एवं शीघ्रता से की जाती है।

3 सघन कृषि कार्यक्रम अपना सकते हैं।

4. नहरों में बहने वाली सिल्ट फसलों में खाद के काम आती है।

हानि—1. इनके निर्माण में अत्यधिक व्यय होता है।

2. जल स्तर ऊँचा होने से भूमि खराब हो जाती है।

3. नहरों के निर्माण से काफी कृषि योग्य भूमि घिर जाती है।

4. सिंचाई में अधिक जल देने से भूमि व फसल पर बुरा प्रभाव पड़ता है

तालाब और बांध
(Tanks and Dams)

दक्षिण भारत के कुछ राज्य मद्रास, कर्नाटक, हैदराबाद, तमिलनाडु के अतिरिक्त राजस्थान में वर्षा के अतिरिक्त जल को बांध बनाकर बड़े तालाबों में इकट्ठा कर लेते हैं। यह प्राचीन प्रथा है। तालाब दो प्रकार के होते हैं—

(अ) छिछले तालाब—वर्षा के एकत्रित जल को रबी की फसलों के लिए खेत तैयारी में पलेवा देने या खरीफ की पिछेती फसलों को सिंचाई अक्टूबर-नवम्बर में करके तालाब को खाली कर देते हैं और रबी की फसलें बो दी जाती हैं।

(स) गहरे तालाब—ये अपेक्षाकृत गहरे होते हैं जिनके चारों ओर बांध बनाकर वर्षा के जल को एकत्र करते है तथा अतिरिक्त जल के निकास का प्रबन्ध होता है। छोटी-छोटी नालियां, गूलो से सिचाई का जल कुछ दूरी तक ले जाते हैं।

बांध—राज्यों में नदियों पर कई बांध बने हुए हैं जिनसे नहरें निकाल कर विस्तृत क्षेत्र की सिंचाई की जाती है और विद्युत उत्पादन किया जाता है।

राज्य में राणा प्रताप सागर, जवाहरसागर, कोटा बैराज, राजसमन्द, रामगढ बांध, मेजा बांध, गम्भीरी बांध, गुढा बांध, औराई बांध, योजनायें प्रमुख हैं अभी माही बजाज परियोजना तथा पांचना बांध योजनायें पूरी हुई हैं।

झील (Lakes)—प्रकृति द्वारा निर्मित एक प्रकार के विशाल जल-कोष को ही झील कहते हैं जो तालाबों से अधिक लम्बी और चौड़ी होती हैं। इनका जल निचली भूमि में सिंचाई के उपयोग में लाया जाता है। कुछ बड़ी झीलों से नहरें भी निकाली जाती हैं।

राज्य में कृत्रिम रूप से बनी कई झीलें हैं जिससे बड़े कृषि क्षेत्र की सिंचाई की जाती है जैसे—पिछोला झील।

झरना—पहाड़ी, इनकी घाटियों और तराई क्षेत्र में झरने पाए जाते हैं जिनके जल पूरे वर्ष बहता रहता है किन्तु कुछ झरने गर्मी में सूख जाते हैं। झरने का पानी नालियो द्वारा खेती तक ले जाया जाता है।

गन्दे नाले (Sewase)

बड़े शहरो के निकटवर्ती खेतो की शहर के गन्दे जल से सिंचाई की जाती है। नालियों में मनुष्यों का मल-मूत्र, कूड़ा-करकट बहता रहता है। इनमें पौधो के भोज्य पदार्थ के अलावा अनेक हानिकारक जीवाणु भी होते हैं जो स्वास्थ्य के लिए घातक हो सकते हैं। इस जल से शहर के समीपवर्ती भागो में बोई शाक-भाजी तथा अन्य फसलों की सिंचाई की जाती है।

बम्बई, दिल्ली आदि बड़े से शहर नगरों के गन्दे पानी को साफ करने की व्यवस्था है। पानी को हौजों में भरकर कूड़ा-करकट जमा करके साफ पानी को सिंचाई के लिए भेजते है। कूड़ा-करकट से जैविक खाद तैयार की जाती है।

कुएं (Wells)

प्राचीनकाल से ही कुओं से उ० प्र०, पंजाब, मद्रास, महाराष्ट्र, बिहार, राजस्थान आदि राज्यो के काफी क्षेत्र की सिंचाई की जाती है, इनसे पानी उठाने में काफी अधिक परिश्रम करना पड़ता है। ये कई प्रकार के होते हैं।

(अ) कच्चा कुआं (Shallow Wells) जो कुआं भूमि की केवल ऊपरी सतह को काटकर बनाया जाता है और उसकी पक्की कोठी नही बनाई जाती है, उथले या छिछले कुए कहते है। यह कुएं कम गहराई वाले क्षेत्रों में बनाए जाते हैं।

के अधिक टिकाऊ नहीं होते हैं और शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इनसे पानी ढेकुली या चरसा उठाते हैं।

(ब) पक्का कुआं (Masonary Wells)—ये कुएं जल की अभेद्य तह को काट कर बनाए जाते हैं। कुओं को पक्का बनाकर स्थाई कर दिया जाता है और काफी समय तक उपयोग में लाए जाते हैं। जल उठाने के लिए चरसा, रहट आदि काम में लाते हैं जिससे जल उठाने में अधिक श्रम एवं पूंजी लगती है। इनसे रबी की फसलें तथा शाक-भाजी में सिंचाई की जाती है।

(स) रिसने वाला कुआं (Percolated Well)—ये कुएं तालाब, बांध या नदी के आस-पास होते हैं जिनमें इनका जल निथर कर एकत्र हो जाता है। जल की सतह नदी या तालाब की सतह के साथ घटती-बढ़ती रहती है किन्तु तालाब के सूखने के 2–3 माह बाद भी सिंचाई का जल रहता है। ऐसे कुओं को निथरे जल का भण्डार कह सकते हैं।

(द) पाताल-तोड़ कुएं (Artisan Wells)—ऐसे कुओं से जल स्वतः ऊपर निकलता रहता है। इस प्रकार के कुएं उन स्थानों पर मिलते हैं जहां जल युक्त सतह एक बेसिन (तश्तरी) के आकार की होती है और जिनके दोनों ओर अभेद्य तहें होती हैं। इस तह के जल पर दाब अधिक रहता है। बेसिन के तले पर छेद करने पर जल बड़े वेग से बाहर निकलता है।
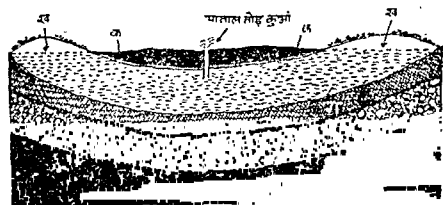
इस प्रकार के कुएं मद्रास, पाण्डीचेरी, उ० प्र० के तराई तथा जमना नदी के मैदानी भागों में मिलते हैं।

(य) नल-कूप (Tube-Wells)—भूमि की अधिक गहरी तहों से जल निकालने के लिए नल-कूप बनाए जाते हैं। ऐसे क्षेत्रों जहां भूमि के नीचे कड़ी परतें या चट्टानें आदि नहीं पाई जाती हैं।

सीमित क्षेत्र पर समयानुकूल सिंचाई का अच्छा साधन है। इसमें मशीन की सहायता से काफी गहराई तक बोरिंग करके सादे 5 से 22 सेमी. व्यास के पाइप 20–150 मीटर गहराई तक लगाये जाते हैं। जल रिसने वाली तहों में जालीदार तथा शेष तहों में सादे नल लगाए जाते हैं। जल को बिजली की मोटर या तेल के इंजिन से उठाया जाता है। ये एक दिन में 3 हेक्टर भूमि की आसानी से सिंचाई कर सकते हैं। देश में इनकी निरन्तर संख्या में वृद्धि हो रही है।

जल-उत्थापक यन्त्र (Water Lifts)

पृथ्वी के गर्भ से धरातल तक जल उठाने के लिए अनेक प्रकार के यन्त्रों को प्रयोग में लाया जाता है। कृषक द्वारा जल उठाने के लिए यन्त्रो के चुनाव में मुख्यतया दो बातों का ध्यान रखा जाता है—

1. कितनी गहराई से जल उठाना है, और
2. कितनी मात्रा में जल उठाना है।

इसके अतिरिक्त किसान की आर्थिक स्थिति भी महत्व रखती है। गहराई के अनुसार इन यन्त्रों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है—

(अ) कम गहराई तक काम आने वाले यन्त्र (Sallow Water Lifts)

(ब) अधिक गहराई तक काम आने वाले यन्त्र (Deep Water Lifts)

(अ) कम गहराई तक काम आने वाले यन्त्र—

(1) बेड़ी (Swig Basket)—इसे दुगला, धोका, परोहा नामों से पुकारते हैं। जल उठाने की यह रीति काफी पुरानी है। बेडी बाँस या टीन की बनी उथली चौड़े मुँह की टोकरी की भाँति होती है जिसके दोनो ओर दो-दो रस्सियाँ बंधी होती हैं। दो आदमी दोनों ओर रस्सी पकड़कर आमने-सामने खड़े होकर गहराई से जल उठाकर फेंकते हैं। जल की मात्रा बेडी के आकार तथा आदमियों की शक्ति पर निर्भर करती है।

चित्र—बेड़ी

कार्य-क्षमता—यह तालाब और नहरों की गूलों से 0·6 से 2·5 मीटर की गहराई तक जल उठाने के काम आती है। एक घण्टे में 3500 गैलन पानी उठाती है तथा एक हेक्टर फसल की 50–55 घण्टे में सिंचाई हो सकती है।

चित्र—इजिप्शियन स्क्रू

(2) इजिप्शियन स्क्रू (Egyptian Screw)—यह ढोल के आकार का लकड़ी की पट्टियों का बना स्क्रू जैसा यन्त्र होता है जिसका व्यास 40-50 सेमी. तथा लम्बाई 1 2 से 1 5 मीटर होती है। अन्दर खोखले भाग में लकड़ी के पतले-पतले टुकड़े पेंच के रूप मे लगाए जाते हैं। बीच में एक लोहे की छड़ होती है जिसके बाहरी सिरे पर हत्था लगा होता है इसे जल की सतह से 30-40° का कोण बनाए हुए रखते हैं। ढोल का निचला सिरा जल में डूबा होता है। हत्था घुमाने पर जल भीतरी सिरे मे होता हुआ बाहर निकलता है।

कार्य-क्षमता इसे बारी-बारी से 4 आदमी चलाते रहते हैं। यह ·6 से ·45 मीटर की गहराई तक अच्छा कार्य करता है। एक घण्टे में 6500 गैलन जल उठाया जाता है। इस प्रकार एक हेक्टर की सिंचाई 30 घण्टे में की जा सकती है।

(3) ढेंकुली (Dhenkuli)—पोखरों, तालाबों, नालों, उथले कुएँ, नदी, नालों के किनारे कच्चा कुआँ बनाकर जल उठाने में इस यन्त्र का उपयोग किया जाता है। एक लम्बी बल्ली के सिरे पर एक रस्सी से ढोल बांध देते हैं तथा दूसरे बाहरी सिरा एक खम्भे के सहारे लटकता है जिसके सिरे पर पत्थर आदि वजनी चीज लटका देते हैं।

कार्य-क्षमता—इसे चलाने के लिए एक आदमी की आवश्यकता होती है जो डोल की रस्सी को पकड़कर कुएँ में डुबोता है। डोल भरने पर रस्सी को ऊपर उठा देता है जिससे दूसरे सिरे पर बँधे भार के कारण डोल ऊपर आ जाती है जहाँ इसे खाली करके क्रिया दोहराते रहते हैं।

यह 3 मीटर की गहराई तक का जल उठाने में प्रयुक्त होता है। एक घण्टे मे 350–500 गैलन पानी उठता है। इस प्रकार एक हेक्टर फसल की सिंचाई 375 घण्टे में हो पाती है।

चित्र - ढेंगुली
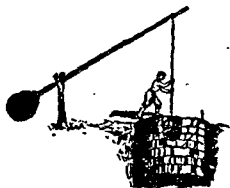
(4) बल्देव बाल्टी (Baldev Balti)—इसमें दो परनाले जैसी बाल्टियाँ लगी होती हैं जो दो रसियों से गरारी पर चलती हैं। बाल्टियाँ इस प्रकार लगाई जाती हैं कि एक बाल्टी भरकर ऊपर आ जावे तो दूसरी भरने के लिए नीचे जाती है। यह क्रम लगातार चलता रहता है।
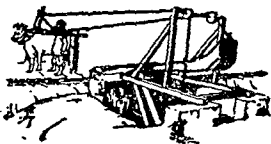
चित्र—बल्देव बाल्टी

कार्य-क्षमता—इसे चलाने के लिए एक जोड़ी बैल तथा एक आदमी की आवश्यकता होती है। यह तालाब, झील, गूलों से 1 से 1·5 मीटर की गहराई तक जल उठाता है। एक घण्टे में 3000 गैलन पानी उठाकर एक हेक्टर सफल को 60-65 घण्टे में सींचा जा सकता है।

(5) चेन पम्प (Chain Pump)—इस यन्त्र में लोहे के एक पहिए के ऊपर एक जंजीर में छोटे-छोटे लोहे के तवों की माला लगी होती है। जो लोहे के पाइप में से गुजरती है। पाइप ·4 से ·9 मीटर पानी में डूबा रहता है। तवों का व पाइप से थोड़ा कम होने से तवों के ऊपर उठने से जलउ ऊपर उठने लगता है।

ये दो प्रकार के (1) सिंगल चेन पम्प (2) डबल चेन पम्प होते हैं। सिंगल चेन पम्प में एक पहिए पर तत्वों की माला घुमाई जाती है जबकि डबल चेन पम्प में दो मालायें होती हैं।

कार्य-क्षमता—सिंगल चेन पम्प 3 से 5 मीटर गहराई का जल उठाने में अच्छा है। इसे चलाने में दो आदमी की आवश्यकता होती है। एक घण्टे में 4500 गैलन पानी उठाकर एक हेक्टर को 40-50 घण्टे में सींचा जा सकता है।

डबल चेन पम्प को बैलों द्वारा चलाया जाता है। एक घण्टे में 6500 गैलन पानी उठाकर एक हेक्टर फसल की 30 घण्टे में सिंचाई करता है।
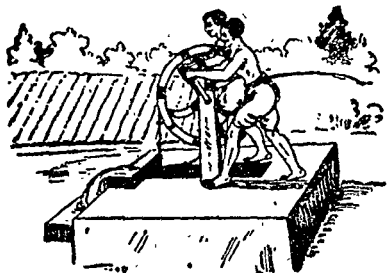
चित्र—सिंगल व डबल चेन पम्प

(6) चर्खी (Charkhi)—यह तालाब, कुओं, नदी आदि से जल उठाने का साधारण यन्त्र है। जल स्रोत के बाहर दो खंभे गाड़ देते हैं जिनमें धुरी पर एक-एक घिरनी लगी होती है। घिरनी पर रस्सी द्वारा दो बाल्टियाँ इस प्रकार बंधी रहती हैं कि रस्सी खींचने पर एक बाल्टी जल से भर कर ऊपर आती है और दूसरी पानी में भरने नीचे पहुँच जाती है।

कार्य-क्षमता—यह 4·50-6·50 मीटर तक की गहराई से आसानी से जल उठा सकती है। एक समय में एक आदमी की आवश्यकता होती है। एक घण्टे में 500 गैलन जल उठाकर एक हेक्टर की सिंचाई लगभग 375 घण्टे में की जा सकती है।
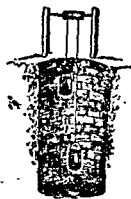
चित्र—चर्खी

(ब) अधिक गहराई से जल उठाने वाले यन्त्र—
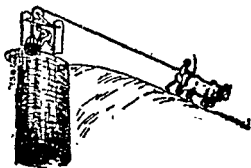
चित्र--चरसा

1. चरसा—इसे मोर या पुर भी कहते हैं। यह जल उठाने के यन्त्रों में से सबसे प्राचीन है। चरसा चमड़े का बना एक बड़ा सा थैला होता है जो मोटे रस्से से बाँधकर गरारी के ऊपर होता हुआ बैलों से खींचा जाता है। वह दो प्रकार का होता है—

(i) **ढोल की आकृति वाला**—इसे चलाने में एक जोड़ी बैल तथा दो आदमी की आवश्यकता होती है। एक आदमी बैलों को तथा दूसरा चरसा को सम्भालता है।

(ii) **सूँड़दार चरसा**—इस चरसे मे ढोल के निचले भाग में सूँड़ जैसी आकृति लगी होती है जिसमें बधी रस्सी एक गरारी के ऊपर गुजरती है। इस रस्सी से चरसा कुयें के ऊपर आते ही स्वतः खाली हो जाता है। इसे चलाने में एक आदमी तथा एक जोड़ी बैल की आवश्यकता है।

कार्य-क्षमता—यह 10-18 मीटर की गहराई तक जल उठाते हैं। बड़े कुयें में दो चरसे एक साथ काम में लाए जा सकते हैं। गहराई कम होने पर जल अधिक निकलता है। साधारण तौर पर एक घण्टे में 1600 गैलन जल उठाकर एक हेक्टर को 120-160 घण्टे में सींचा जा सकता है।

2. रहट (Persian wheel)—रहट में एक चक्र पर लोहे की छोटी-छोटी बाल्टियों की माला लगी होती है। यह चक्र एक दण्ड द्वारा चलाया जाता है जो खूँटीदार पहियों की सहायता से बैलों द्वारा चालाया जाता है। बाल्टियो की संख्या कुएँ की गहराई के साथ बढ़ा दी जाती है पर आकार छोटा कर देते हैं।

कार्य-क्षमता—यह 10-12 मीटर (35-40 फीट) गहरे कुओं में अच्छा काम करता है। इसे चलाने में एक आदमी तथा एक जोड़ी बैल की आवश्यकता

होती है। कहीं-कहीं ऊँट का प्रयोग करते हैं। एक घण्टे में 2500 गैलन जल उठा-कर 75 घण्टे में एक हेक्टर की फसल को सींचता है।

चित्र—रहट
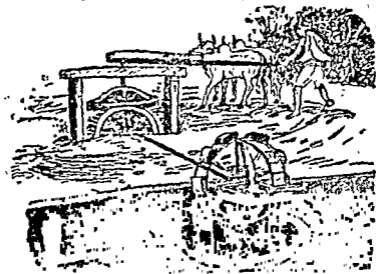
3. सेन्ट्रीफ्यूगल पम्प (Centrifugal Pump)—तालाब, झील, नहर तथा गहरे नल-कूप से जल उठाने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं।

पम्प में लोहे की केसिंग के अन्दर धातु का पंखा होता है जो तीव्र गति से घूमता है। पम्प जल की सतह के समीप एक प्लेटफार्म पर स्थिर किया जाता है। इसमें दो प्रकार के नल लगे होते हैं—

1. चूषक नल (Suction Pipe)—यह पम्प को नीचे जल से मिलता है।

2. प्रसाव नल (Delivery Pipe)—चूषक नल द्वारा उठाये पानी को बाहर फेंकता है।

सेण्ट्रीफ्यूजल पम्प के इंजिन तेल या बिजली की शक्ति से चलाए जाते हैं। जहाँ कोयला सस्ता है वहाँ भाप के इंजिन भी काम में लाए जाते हैं।

कार्य-क्षमता—पम्प चलाने के लिए केसिंग के समीप लगी कीप के द्वारा जल भर देते हैं फिर पम्प चालू कर देते हैं। सेण्ट्रीफ्यूज शक्ति के द्वारा जल को बाहर फेंकता है तो इससे कुछ स्थान वायु रहित हो जाता है तो इस रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए नीचे का जल ऊपर उठता है जो चूषक नल से होता हुआ प्रसाव नल से बाहर फेंक दिया जाता है। पम्प चलने पर जल का प्रभाव जारी रहता है।

साधारण पम्प 5-7 मीटर (15-20 फीट) गहराई तक जल सुगमता से उठा सकते हैं। एक पम्प जिसका नलों का व्यास 10 व 15 सेमी. है तो वह एक घण्टे में 150 गैलन प्रति मिनट (9000 गैलन प्रति घण्टा) निकलता है तो एक-एक

दिन में ·4 हेक्टर भूमि सींचती है परन्तु नल का व्यास 15 व 12·5 सेमी. होने पर 350 गैलन पानी प्रति मिनिट मिलने पर एक दिन में लगभग एक हेक्टर भूमि की सिंचाई हो सकती है। इसमें अधिक अश्व-शक्ति के पम्प की आवश्यकता होगी।

अधिक गहराई से जल उठाने के लिए टरबाइन या स्क्रू किस्म के पम्प प्रयुक्त होते हैं।

चित्र—पम्प→
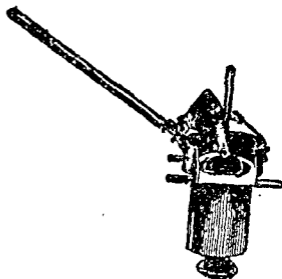
विभिन्न उत्थापक यन्त्रों की कार्य-क्षमता

क्र० सं०	उत्थापक यन्त्र	जल उठाने की गहराई (मीटर में)	जल का निकास प्रति घंटा (गैलन मे)	हेक्टर सींचने का समय (घण्टों में)	क्षेत्रफल जो नियंत्रित किया जा सकता है (हेक्टर में)
1	बेंढी	·6–2·5	3500	50–55	3·0
2	इजिप्शियन स्क्रू	·6–·75	6500	30	6·0
3	ढेंकुली	3–5	350–500	375	0 5
4	बल्देव बाल्टी	1–1·5	3000	60–65	2·5
5	चेन पम्प-सिंगल	3–5	4500	40–45	4·0
6	चेन पम्प-डबल	3"–5	6500	30	5·0
7	चर्खी	4·5–6·5	500	375	0·5
8	चरसा	10–18	1600	100–120	2·0
9	रहट	10–12	2500	75	1·5
10	नलकूप	·20–200	10-20हजार	12	20·0

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सिंचाई की परिभाषा देते हुए इसके महत्व का वर्णन कीजिए।
2. फसलों को जल की क्यों आवश्यकता होती है ? यह कैसे पूरी होती है ?
3. देश में सिंचाई के मुख्य साधनों का वर्णन कीजिए।
4. जल-उत्थापक यन्त्रों की क्यों आवश्यकता होती है ? राज्य में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न यन्त्रों की सूची, उनकी कार्य-क्षमता सहित बतायें ?
5. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—

   (1) नल-कूप तथा पाताल तोड़ कुए

   (2) रहट

   (3) डाल नहरें (Lift Canal)

---

22. सिंचाई की विधियाँ एवं जल की नाप
(Methods of Irrigation and Measurement of Irrigation Water)

सिंचाई की विधि—स्रोत से खेत तक जल पहुँच जाने के बाद इसे खेत में वितरण करने की विधि को सिंचाई की विधि कहते हैं।

सिंचाई की विधियाँ निम्नलिखित हैं—

(1) सतह की सिंचाई
(2) सतह के नीचे की सिंचाई
(3) सतह के ऊपर की सिंचाई
(4) टपकेदार सिंचाई।

(1) सतह की सिंचाई (Surface Irrigation)—इन विधियों में जल खेत की सतह पर से ही भूमि के समस्त क्षेत्र पर आंशिक रूप में वितरित किया जाता है। निम्नलिखित विधियाँ अपनाई जाती हैं—

1. प्रवाह द्वारा
   (अ) जल प्लावन
   (ब) क्यारियों द्वारा
2. नालियों या कूण्डों द्वारा
3. थाला विधि
4. वलय विधि
5. समोच्च विधि।

1. प्रवाह सिंचाई (Flooding)—इस विधि से जल को नाली से पूरे खेत में खोल दिया जाता है और स्वतन्त्रतापूर्वक बहने दिया जाता है जिससे जल पूरे खेत में समान रूप से फैल जाय। यह विधि धान, जूट में प्रयोग की जाती है। चरागाह में सिंचाई के लिए उपयुक्त है।

गुण—

1. सिंचाई करने में आसानी होती है।
2. नालियाँ व क्यारियाँ बनाने का व्यय बच जाता है।
3. फसल को पूर्णतया जल मिल जाता है।
4. जल में खड़ी रहने वाली फसलें धान के लिए उपयुक्त हैं।

दोष—

1. अधिक मात्रा में जल की आवश्यकता होने से यह त्रुटिपूर्ण विधि है।
2. खेत में जल का असमान वितरण होता है।
3. खेत में अधिक जल लग जाने से इसका मिट्टी तथा फसल पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
4. अधिक नमी न सहन करने वाली फसलों के लिए यह विधि अनुपयुक्त है।
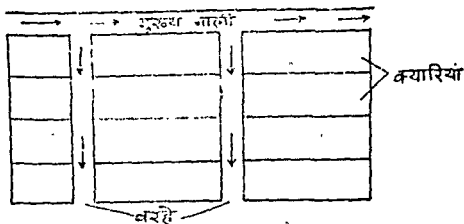
प्रवाह विधि द्वारा सिंचाई विरल कृषि, समतल भूमि श्रमिकों की कमी और सिंचाई के जल का बाहुल्य होने पर की जाती है। यह दो प्रकार से की जाती है—

(अ) जल प्लावन (Flooding)—खुले खेत में बिना क्यारी बनाए जल दिया जाता है। बोआई से पूर्व खेत तैयार करने (पलेवा) व धान में की जाती है। खेतो में हल्का ढाल होने पर सिंचाई की नालियाँ बनाकर खेत को मेंडो द्वारा बाँट देते हैं।

(ब) **क्यारियां बनाकर** (Bed or Border Method)—इस विधि से खेत में 15–30 सेमी. ऊँची मेंड़े बनाकर क्यारियाँ और सिंचाई की नालियाँ बना लेते हैं जिससे जल का अच्छी तरह उपयोग हो सके। प्रत्येक क्यारी को खोदकर पानी दिया जाता है, इसे अवरोध विधि भी कहते है।

मेंड़े बनाने के लिए फावड़ा, मिट्टी पलटने वाला हल, रिजमेकर का प्रयोग किया जाता है। क्यारियो का आकार भूमि की किस्म, ढाल, फसल और सिंचाई के साधन पर निर्भर करता है। मटियार भूमि व क्यारी का आकार बड़ा तथा बलुआर दोमट में छोटा रखते हैं। ढालू खेत आकार में छोटा कर देते हैं। नहरी क्षेत्र की क्यारियाँ चरसे आदि सिंचाई से बड़ी होती हैं।

गुण—

1. सिंचाई के जल की बचत होती है।
2. जल सम्पूर्ण खेत में समान रूप में वितरित हो जाता है।
3. छिटकाव या पंक्तियों में बोई फसलों के लिए उत्तम विधि है।
4. कम जल में अधिक क्षेत्र सींचे जा सकते हैं।
5. सिंचाई में कम व्यय होता है।

दोष—

1. क्यारियों एवं थरहे बनाने में अधिक व्यय होता है।
2. क्यारियों एवं थरहे मे अधिक क्षेत्र घिर जाता है।
3. इनकी मेंड़ें निराई-गुड़ाई और फसलों की यांत्रिक कटाई में बाधा पैदा करती हैं।

2. नालियों या कूण्ड द्वारा सिंचाई (Furrow or Trench System)

इस विधि में पूरे खेतों में नाली व कूण्ड बनाकर सिंचाई की जाती है। नालियाँ 45–90 सेमी. दूरी पर 30–40 सेमी. गहरी बनाई जाती हैं। नालियों की मिट्टी मेंड़ बनाने में प्रयोग होती है। नालियों की दूरी इस प्रकार रखते हैं कि मेंड़ और उनकी सतह अच्छी तरह तर हो सके किन्तु मेंड़ की चोटी न भीगे।

यह विधि हरी तथा अधिक जल चाहने वाली फसलें, गन्ना, आलू, शकरकन्द, चुकन्दर, सब्जियों आदि में अपनाई जाती है।

नालियों की लम्बाई व गहराई भूमि की किस्म, ढाल तथा सिंचाई की गहराई पर निर्भर करती है।
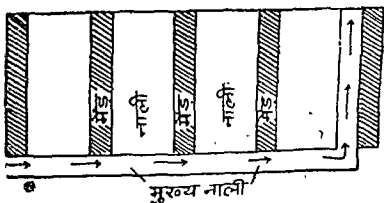
गुण—

1. जल की निश्चित मात्रा से अधिक क्षेत्रफल की सिंचाई की जाती है।
2. वाष्प द्वारा जल की हानि कम होती है।

3. खेत की ऊपरी सतह की मिट्टी कड़ी नहीं होती है।

दोष —

1. नालियों तथा मेंड़ पद्धति में बोई फसलों में ही यह विधि काम में आती है।

2. प्रत्येक नाली में एक समान जल देना कठिन होता है।

3. थाला विधि (Basin System) —इस विधि को कुण्डी या द्रोणी विधि भी कहते हैं। यह विधि कभी-कभी जल चाहने वाले वृक्ष—अमरूद, अनार आदि में उपयोगी है। बलुआर भूमि में यह विधि उचित है।
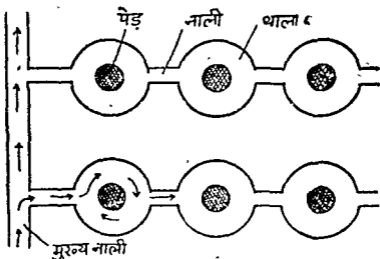
प्रत्येक वृक्ष के नीचे उथली गोलाकार, आयताकार, वर्गाकार थाले बनाये जाते हैं। थाले की मिट्टी वृक्ष की जड़ के पास लगाने में जड़ जल के सम्पर्क में नहीं आती है और इससे होने वाली हानि से बच जाती है।

गुण —

1. जल कम खर्च होता है।

2. अधिक उपज मिलती है।

3. जल सीधा मूल-प्रदेश को मिलता है।

दोष —

1. पहले-पहल थाले बनाने मे अधिक व्यय होता है।

2. इनकी देखभाल अधिक करनी पड़ती है।

4. वलय विधि (Ring Method)—इस विधि मे तने के चारो ओर से गोलार्द्ध में मिट्टी निकालकर, तने के पास चढ़ा देते हैं जिससे जल तने के पास न रहने से पौधों का जल से सीधा सम्पर्क नहीं हो पाता है और पौधे सुरक्षित रहते हैं। जल वृक्ष से कुछ दूर तक गोल घेरे में एकत्र रहता है। जैसे-जैसे पौधे बढ़

जाते हैं। वैसे ही घेरे के आकार में वृद्धि की जाती है। वृक्षों की दो पंक्तियों के बीच एक नाली होती है जिससे हर वृक्ष के घेरे का सम्बन्ध रहता है। गलन रोग से प्रभावित होने वाले फल वृक्ष · अनार, आम, पपीते आदि से उपयोगी है।
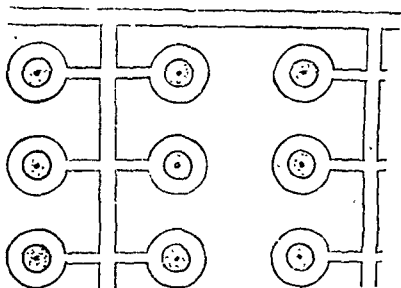
गुण —1. सिचाई के जल की बचत होती है।
2. जल पौधों को हानि नहीं पहुँचाता है।
3. जल सीधा मूल-प्रदेश को मिलता है।

दोष – 1. वलय बनाने में अधिक व्यय करना पड़ता है।
2. इनकी देखभाल अधिक करनी पड़ती है।

5 समोच्च विधि—पहाड़ी क्षेत्र में ढालू खेतों को समोच्च के अनुसार छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटकर सिंचाई की जाती है क्योंकि वहाँ खेत समतल नहीं होते हैं खेत का ऊपर टुकड़ा भर जाता है तो पानी नीचे को जाता है और क्रम चलता रहता है।

(2) सतह के नीचे सिंचाई (Sub Surface or Underground Method)

(i) प्राकृतिक (ii) कृत्रिम

(i) प्राकृतिक—पेड़ के मूल प्रदेश के नीचे की भूमि में लगभग दो मीटर की गहराई पर कड़ी परत होती है जल पटल (Water Level) ऊँचा हो जिससे जल स्थिर या धीरे: धीरे से नीचे न जा सके। इस विधि में अनेक गहरी खाइयाँ इस

कड़ी तह तक खोदकर जल से भर देते हैं जो निस्पंदन द्वारा मूल-प्रदेश मे पहुँचता रहता है और भूमि नम बनी रहती है।

इस विधि का प्रयोग पर्याप्त सावधानी से करना चाहिए अन्यथा जल और लवणों की अधिकता से पौधों को हानि हो सकती है।

(ii) कृत्रिम—इसमें छेददार नल भूमि में 30 सेमी. गहराई पर 1-1·5 मीटर की दूरी पर समानान्तर बिछाकर मिट्टी से ढक दिये जाते हैं। ऊपरी धरातल पर एक मुख्य स्रोत से अन्य सारे नालों को निश्चित दाब से जल प्राप्त होता है जो पूरे खेत की मिट्टी को छिद्र से निकलकर नम कर देता है।

गुण —1. जल कम लगता है और सीधा जड़ों को प्राप्त होता है जिससे पौधों की वृद्धि ठीक होती है।

2. वाष्पीकरण द्वारा जल नष्ट होने से बचता है।

3. अपेक्षाकृत अधिक भूमि सफल के लिए प्राप्त होती है।

दोष – 1. नल आदि डालने में अधिक व्यय होता है।

2. रिसाव-क्रिया द्वारा भूमि के क्षारीय होने का भय रहता है।

3. इनका प्रयोग सीमित क्षेत्र में सम्भव है जहाँ भूमि की अधोमृदा में अभेद्य तह हों।

(3) सतह के ऊपर से सिंचाई (Aerial or Overhead Irrigation)

सतह या धरातल के ऊपर की सिंचाई कृत्रिम वर्षा का ही एक रूप है। यह विधि उन सभी क्षेत्रों में सम्भव है जहाँ सिंचाई की आवश्यकता मध्यम हो। ऊँची-नीची एवं शीघ्र नमी सोखने वाली भूमियों में यह विधि अधिक उपयुक्त है।

सीमित क्षेत्रों तथा पौधघरों मे हजारा, बाल्टी, घड़ा आदि का प्रयोग किया जाता है और केवल धरातल की ही सिंचाई की जाती है।

बौछारी सिंचाई (Sprinkling Irrigation)—विस्तृत क्षेत्र में सिंचाई करने के लिए नलों को पंक्तियों में कुछ ऊँचाई पर समानान्तर लगाते है और अधिक दबाव पर जल प्रवाहित करते हैं तो फव्वारे के रूप में जल नलों से निकलकर सिंचाई करता है। कहीं कहीं नलों पर जगह-जगह स्थाई या घूमने वाली टोंटियां लगी होती है। आंतरिक दाब के कारण नलों से जल छोटी-छोटी बूंदों मे बरसता है जिससे भूमि नम हो जाती है।

बौछारी सिरे के नोंजल से तेज पानी निकलने पर यह घूमता है और चारों ओर जल का छिड़काव करता है।

गुण - 1. जल का वितरण सारी भूमि में एक-सा होता है।

2. सभी प्रकार की भूमियों में प्रयोग कर सकते हैं।

3. जल की हानि कम होती है।
4. आवश्यकतानुसार जब चाहे सिंचाई कर सकते हैं।
5. घुलनशील उर्वरक या अन्य दवाइयाँ सिंचाई के साथ दी जा सकती हैं।

दोष—1. नल लगवाने में अत्यधिक व्यय करना पड़ता है।
2. खर्चीली विधि होने से मूल्यवान फसलों की सिंचाई में ही उपयुक्त है।
3. तेज हवा में फौहारे समान रूप से जल वितरित नहीं कर पाते हैं।
4. साधारण कृषक इसे प्रयोग नहीं कर सकते हैं।

फौहारी सिंचाई
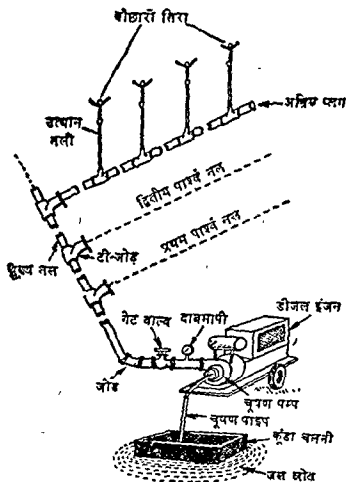
(4) टपकेदार सिंचाई (Dripor Trickle Irrigation)

इस विधि में जल पौधे के मूल-प्रदेश में बूँद-बूँद के रूप में पहुँचाया जाता

है। जल की अत्यधिक कमी वाले शुष्क क्षेत्रों में प्रयोग की जाती है। जल को प्लास्टिक के पतले नलों द्वारा दिया जाता है। इसको भूमि तल पर इस प्रकार बिछाते हैं कि इनके छिद्रों से पौधों का मूल-प्रदेश नम बना रहे और अंतःस्रवण, वाष्पन आदि से जल की हानि न्यूनतम होती है।

इस विधि से शाकों की फसलों के अलावा अंगूर, पपीता, केला, अमरूद व अन्य फल वृक्ष बचत के साथ सींचे जा सकते हैं। इसमें जल के साथ उर्वरक आदि प्रयोग किया जा सकते हैं।

गुण—1. जल तथा श्रम की बचत होती है।
2. उर्वरक की अल्प मात्रा दी जा सकती है।
3. उत्पादन में वृद्धि।

दोष—1. नलों तथा उपकरणों पर अधिक व्यय होता है।
2. अपेक्षाकृत स्वच्छ जल आवश्यक है।
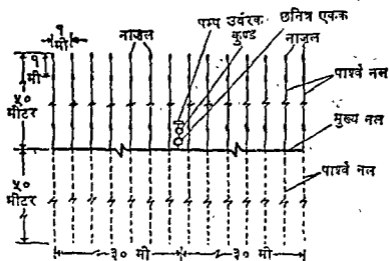
सिंचाई करना —

भूमि में प्राप्य जल की कमी पूर्ति के लिए सिंचाई आवश्यक है। शस्योत्पादन में जल एक प्रमुख साधन है जिस पर पूँजी अधिक व्यय होती है। अतः जल के सर्वोत्तम उपयोग के लिए आवश्यक है कि प्रति इकाई जल के प्रयोग से अधिकाधिक लाभ हो। सिंचाई के जल के समुचित उपभोग के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—

(अ) सिंचाई का समय
(ब) सिंचाई की मात्रा
(स) सिंचाई की विधि

सिंचाई का समय—मृदा से जल का इतना ह्रास हो जावे कि प्राप्य जल की कमी के कारण पौधों की वृद्धि और उत्पादन घटने की संभावना है तो सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से सिंचाई की अवस्था का ज्ञान निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है—

(क) पौधों के बाह्य गुणों को देखकर—1. पत्तियों का रंग परिवर्तित होकर गहरा हरा हो जाता है।

2. पत्तियों का संकुचित होना

3. पत्तियों का दोपहर में मुरझाना।

(ख) मृदा की दशा एवं गुणों द्वारा—मृदा की ससंजकता (चिपकनापन Cohesiveness) तथा सुघट्यता (Plasticity) इसमें उपस्थित नमी की मात्रा को प्रकट करती है।

(ग) मृदा में प्राप्य जल की मात्रा के आधार पर—यह निम्न विधियों से ज्ञात किया जाता है—

1 मिट्टी को सुखाकर भार लेकर जल की मात्रा ज्ञात करना।

2. पृष्ठतनावमापी (Tensiometer) द्वारा आर्द्रता नापना।

3. साइसीमीटर द्वारा आर्द्रता नापना।

4. न्यूट्रान विकिरण के द्वारा आर्द्रता नापना।

5. विद्युत अवरोध विधि (जिप्सम ब्लॉक) द्वारा।

फसल की उपज पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना सिंचाई के समय को ज्ञात करने के लिये - खेत के किसी एक छोटे भाग (1 या 2 वर्ग मीटर) की मिट्टी बोने से पूर्व मूल प्रदेश की गहराई तक निकालकर आधी बालू मिलाकर भरकर पूरे खेत में फसल की बोआई कर देते हैं। इस भाग की फसल पहले मुरझाने लगती है तो यही सिंचाई के उपयुक्त समय का संकेत है। यथासंभव पौधों की क्रांतिक अवस्था में जल पूर्ति आवश्यक है। यह बलुई भूमि के अतिरिक्त सभी भूमि में सरल तथा व्यावहारिक है।

(घ) पौधों की क्रांतिक अवस्था (Critical Growth Stage)—किसी भी उपकरण की आवश्यकता न होने से यह विधि सरल है। इसमें पौधों की अवस्थाओं को पहचानने की आवश्यकता होती है जिन पर जल की कमी होने पर वृद्धि रुक जाती है। फिर भी फसलों की वृद्धि में कुछ ऐसी अवस्थाएँ होती हैं जिन पर भूमि में समुचित जल विद्यमान होना आवश्यक है अन्यथा उपज में काफी कमी हो जाती है। विभिन्न फसलों में क्रांतिक अवस्थाएँ भिन्न हैं। इन्हीं अवस्थाओं पर सिंचाई करें।

2. सिंचाई की मात्रा—सिंचाई के जल के समुचित प्रयोग के लिए उतना ही जल उपयोग किया जावे जितना आवश्यक हो। सिंचाई के समय जल को नालियों

सारणी

प्रमुख फसलों में सिंचाई के लिए क्रांतिक अवस्थाएँ

फसल	पहली सिंचाई	दूसरी सिंचाई	तीसरी सिंचाई	चौथी सिंचाई	पांचवीं सिंचाई	टिप्पणी
मक्का	अंकुरण के तुरन्त बाद	घुटने तक की ऊंचाई होने पर	नरमंजरी निकलने से थोड़ा पहले	रेशमी बाल या स्त्रीकेसर निकलने से थोड़ा पहले	परागण के समय	परागण के समय नमी में कमी होने पर परागण नहीं होता और दाने नहीं बनते।
ज्वार	पौध की देर वाली अवस्था (35 दिन)	फूलने के पहले (45 दिन)	फूलते समय	—	—	चारे के लिए उगाई गई फसल में हर कटाई के बाद सिंचाई आवश्यक है।
मूंग, उड़द	—	फूलने से पहले	फूलने के समय	—	—	बसंत ऋतु में लगभग प्रत्येक 8 या 10 दिन बाद सिंचाई आवश्यक है।
मूंगफली	—		फूल लगते समय	ज़मीन पर खूंटिया पड़ने पर	—	—
कपास	शाखाएँ बनने पर	फूलने से पहले	पहले फूल आने के समय	दूसरे फूल और डोडे लगते समय	डोडों के बढ़ने के समय	
गेहूँ	कल्ले निकलना शुरू होने पर	कल्लों की अधिकतम संख्या हो जाने पर	पौधों की लम्बाई में वृद्धि होने पर	पौधों में फूल आने पर	दाने में दूध पड़ने की अवस्था पर	पहली अवस्था सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।
जौ	कल्ले निकलने के समय	फूलने से पहले	—	—	—	सिंचित जौ मदिरा बनाने के लिए अधिक उपयुक्त होता है।
मटर-चना	—	फूलने से पहले	—	फली बढ़ने पर		—
आलू	कल्ले फूटने के तुरन्त बाद	भूस्तारी बनने के समय	आलुओं के बढ़ते समय भूमि नम रखने के लिए, लगभग 10 दिन के अन्तर पर		—	आलू के खेत को नम रखना चाहिए, गीला नहीं

द्वारा भेजने पर कुछ जल इधर-उधर बहने (Runoff), अंतः स्रवण (Percolalter) तथा वाष्पीकरण के कारण नष्ट हो जाता है। अतः यह प्रयास किया जावे कि जल पौधों के मूल प्रदेश की मिट्टी में अधिक से अधिक एकत्रित रहे जिससे पौधे इसे उपयोग करके अधिक उपज दे सकें।

भूमि में प्राप्य जल की मात्रा जल-ह्रास की मात्रा को माप सकने वाले उपकरणों के प्रयोग से या मौसम की शुष्कता के आधार पर वाष्पीकरण और वाष्पोत्सर्जन का अनुमान लगाकर मूल मृदा पृष्ठ में प्राप्य जल की कमी को फसल का जल-मांग के अनुसार ज्ञात करते हैं। नाली में पानी के बहाव को नापकर आवश्यक जल की मात्रा खेत में छोड़ी जा सकती है।

उपलब्ध जल की मात्रा के आधार पर फसल में अधिक गहरी सिंचाई के स्थान पर जल्दी-जल्दी हल्की सिंचाइयाँ लाभप्रद रहती हैं। जल को पौधों की सर्वाधिक आवश्यकता की अवस्था पर सिंचाई अवश्य करें, जैसे गेहूँ में क्राउन जड़, जोइंटिंग और फूल आने के समय अवश्य सिंचाई करें।

भूमि की किस्म, उपलब्ध खाद्य तत्व, फसल की किस्म, मौसम, सिंचाई जल की उपलब्धता के आधार पर सिंचाई की संख्या एवं मात्रा निश्चित की जाती है।

3. सिंचाई की विधि—सिंचाई के पूर्ण उपयोग के लिए उपयुक्त सिंचाई की विधि का चयन आवश्यक है जिसके लिये निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं—

(i) भूमि को समतल करना—सिंचित खेती के लिए भूमि का समतल होना आवश्यक है जिससे जल समान रूप में पूरे खेत में पहुँच सके। समतल के थोड़ा ढाल देने पर जल-प्रवाह में सुविधा रहती है। भूमि को समतल करने में ऊपरी मिट्टी की सतह हट सकती है तो समुचित मात्रा में खादें प्रयोग करें।

(ii) सिंचाई के जल की वितरण पद्धति—जल स्रोत से जल को फार्म के विभिन्न क्षेत्रों में ले जाने के लिये नालियाँ ऐसी बनानी चाहिये जिनसे जल का अंतः श्रवण तथा रिसाव के द्वारा ह्रास कम से कम हो, साथ ही भूमि का अपरदन भी न हो। रास्ते के मध्य नालियां पाइप डालकर बनाई जायें जिससे आने-जाने में असुविधा न हो। कच्ची नालियों को साफ करके ही जल छोड़ा जाये। सुविधा होने पर नालियाँ चिकनी मिट्टी, ईंट और सीमेन्ट, कंकरीट से बनाकर या प्लास्टिक या सीमेण्ट के पाइप डालकर उपयोग में लाई जा सकती है।

(iii) विधि का चुनाव—किसी क्षेत्र के लिए सिंचाई की विधि का चुनाव निम्नलिखित बातों पर निर्भर है—

(क) भूमि की विशेषता—भूमि का तल, जल-स्तर की गहराई, लवणों की मात्रा तथा मृदा-संरचना आदि का ज्ञान हो।

(ख) फसलें—फसलों की जल की मांग कितनी तथा किस विधि से बोई गई हैं। इसके आधार पर विधि का चयन करते हैं।

फसलें जल की पूर्ति ·9 से 1 मीटर की गहराई से करती हैं। गहरी जड़ वाली फसलें निचले पृष्ठों से जल लेती हैं अतः सिंचाई के समय 1·8 मीटर की गहराई तक की नमी की पूर्ति करें। भूमिगत फसलों की मेड़ों के गीली हो जाने पर हानि होने की आशंका रहती है, जबकि ऊँचे व सीधे उगे पौधों को हानि नहीं होती है।

(ग) जल-बहाव की दर—प्रचुर मात्रा में जल होने पर जल प्लावन किया जा सकता है जबकि सीमित मात्रा में जल होने पर कूड़ों में सिंचाई करनी पड़ेगी जिससे मूल-प्रदेश में लवण एकत्र न हों।

(घ) मौसम—रबी के मौसम में फसलों की सिंचाई 10–15 दिन, ग्रीष्म में 4–5 दिन के अन्तर पर तथा वर्षाकाल में वर्षा न होने पर सिंचाई करते हैं। पाले की संभावना होने पर सिंचाई करनी पड़ती है।

शस्यों की जल-मांग
(Water Requirement of Crops)

फसल के एक पौण्ड शुष्क पदार्थ (जड़ पदार्थ के अतिरिक्त) पैदा करने के लिए जितने पौण्ड जल की आवश्यकता होती है, उसे उस फसल की जल-मांग कहते हैं। यह जल उत्स्वेदन क्रिया से नष्ट हो जाता है। इससे इसे 'उत्स्वेदन अनुपात' भी कहते हैं।

शुष्क पदार्थ, पौधे से 212° फे० ताप पर जल निकालने के बाद बचा पदार्थ है।

यह जल की वह मात्रा है जो एक फसल को निश्चित अवधि में उगाने के लिए आवश्यक होती है। इसके वाष्पीकरण, उत्स्वेदन तथा रसायन रूप में प्रयोग के अतिरिक्त वह जल भी शामिल है जो रिसने, बहने तथा भूमि की तैयारी में प्रयुक्त होता है।

विभिन्न फसलों की जल की मांग भिन्न-भिन्न होती है। यह जल कब और कितना दिया जाये जो भूमि की किस्म, वायुमण्डल की दशा, वर्षा की मात्रा तथा वितरण, वातावरण का ताप और हवा की गति एवं फसलों की किस्मों पर निर्भर करती है।

उत्स्वेदन अनुपात—पौधों की जल की मांग को उत्स्वेदन अनुपात से प्रकट करते हैं। फसलों की तैयार में कुल जल कितना पत्तियों द्वारा उड़ जाता है उपज वृद्धि के साथ अनुपात कम हो जाता है।

$$\text{उत्स्वेदन अनुपात} = \frac{\text{पौधों द्वारा उत्स्वेदन में प्रयुक्त जल की मात्रा}}{\text{उत्पन्न शुष्क पदार्थ की मात्रा}}$$

पहिले जल की मांग उत्स्वेदन अनुपात में मापी जाती थी परन्तु पौधों को इनके अलावा वाष्पीकरण द्वारा नष्ट होने वाले जल की भी आवश्यकता होती है अन्यथा इसके अभाव में उत्स्वेदन तथा अन्य क्रियायें प्रभावित होती हैं। अतः पौधों की जल की मांग में वाष्पीकरण तथा उत्स्वेदन दोनों क्रियायें आवश्यक अंग हैं।

जल की मांग को प्रभावित करने वाले कारक—

(1) **मृदा**—मृदा के गहरी और उपजाऊ होने पर वाष्पन कम होता है क्योंकि उपजाऊ भूमि में उपज पैदा करने में कम जल की आवश्यकता होती है। बलुई मृदा में अपेक्षाकृत अधिक जल देना पड़ता है। भूमि का ढाल भी जल की मांग को प्रभावित करता है।

(2) **खाद तत्व**—भूमि में खाद तत्वों को देने पर जल की आवश्यकता होती है क्योंकि खाद एक प्रकार से अवरोध पर्त का काम करती है तथा घोल की सान्द्रता बढ़ जाने से वाष्पोत्सर्जन द्वारा कम पानी उड़ाया जाता है।

(3) **फसल**—फसल की किस्म के अनुसार जल की मांग बदलती रहती है। बड़े तने, लम्बी और चौड़ी पत्ती वाली फसलें—गन्ना, ज्वार, बाजरा आदि की जल मांग अधिक होगी, जबकि छोटे तने, पतली और छोटी पत्ती वाली फसलों की जल मांग कम होगी तथा फसलों में जल की कमी को सहन करने की क्षमता अधिक होगी जो (i) जड़ों के अधिक फैलाव तथा (ii) जल शोषण शक्ति के कारण है।

(4) **कृषि क्रियायें**—कृषि क्रियाओं से मृदा में अवरोध पर्त बन जाती है जिससे वाष्पन नहीं होता है और कम जल की आवश्यकता होती है। बलुई तथा मटियार भूमि में निराई-गुड़ाई करने से 36–63% जल की रक्षा हो जाती है।

(5) **मौसम**—मौसम के विभिन्न तत्वों का जल की मांग पर प्रभाव पड़ता है।

(6) **वर्षा**—वर्षा की मात्रा और इसके वितरण का फसल की जल मांग पर काफी प्रभाव पड़ता है। कम वर्षा वाले प्रदेश में शुष्क मौसम के कारण अधिक जल की आवश्यकता होती है।

(7) **ताप एवं आर्द्रता**—अधिक ताप में उत्स्वेदन की गति अधिक होती है जिससे जल की अधिक आवश्यकता होती है। यह क्रिया दिन में अधिक होती है क्योंकि रात में पर्ण-रंध्र (Stomata) बन्द हो जाते हैं। वातावरण में नमी अधिक होने पर वाष्पोत्सर्जन कम होने से जल की कम आवश्यकता होती है।

(8) वायु का वेग एवं अवधि—वायु के अधिक समय तक तेजी से बहने पर अधिक जल की आवश्यकता होती है ।

सिंचाई के जल की हानि —

फसलों की जल मांग की पूर्ति के लिए जल विभिन्न साधनों से खेत तक पहुँचाया जाता है जो कई कारणों से नष्ट होता रहता है ।

(1) अपसरण (Seepage)—सिंचाई की मुख्य नाली में सदैव ही जल भरे रहने से आसपास की मिट्टी जल को शोषित करके नम हो जाती है जिससे खेत में इकट्ठा जल रसकर निचली तहों में चला जाता है । अधिक मात्रा में फसल को जल देने पर अपसरण की संभावना बढ़ती है ।

कच्ची नालियों के स्थान पर पक्की नालियाँ बना देने से अपसरण कम किया जा सकता है । कच्ची नालियों की आवश्यक मरम्मत करके जल छोड़ा जावे । जीवांश खादों के प्रयोग, कृषि क्रियाओं के समय पर करने से मृदा-संरचना ठीक रहती है जिससे जल की हानि अपेक्षाकृत कम होती है ।

(2) वाष्पीकरण (Evaporation)—सिंचाई की नालियों के लम्बी होने से अधिक जल वाष्प बनकर उड़ जाता है । खेत में रुका पानी सूर्य की गर्मी से वाष्प बनकर नष्ट हो जाता है ।

सिंचाई के निकटतम साधनों से जल लिया जावे तथा खेत में सिंचाई के समय उचित मात्रा में जल दिया जावे । सिंचाई के बाद अवरोध पर्त बना देने से वाष्पीकरण कम होता है ।

(3) खरपतवारों द्वारा—फसलों में उगे खरपतवार जल को अपने उपयोग में लेते हैं जिससे फसल को कम जल मिलता है ।

खरपतवारों की निराई-गुडाई करके निकालकर खाद में प्रयोग किया जा सकता है ।

(4) धरातल से अपधावन (Run Off)—सिंचाई तथा वर्षा का जल धरातल से बह जाना अपधावन कहलाता है । इस प्रकार नष्ट हुये जल की मात्रा भूमितल के ढाल पर निर्भर करती है ।

वर्षा का लगभग 35% जल बहकर समुद्र में चला जाता है । भूमि को समतल तथा कृषि क्रियायें समय पर करके इस जल को फसलों के उपयोग में ला सकते हैं । अतिरिक्त जल को तालाब या बांध बनाकर एकत्रित किया जा सकता है ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सिंचाई की सम्पूर्ण विधियों को कितने भागों में वर्गीकृत करते हैं ? सतह की सिंचाई की प्रचलित विधियों के गुण एवं दोष बताइये ।
2. शुष्क क्षेत्रों में सिंचाई की उपयुक्त विधि बताइये तथा इसके उपयोग की कितनी संभावनायें हैं ?

3. सिंचाई की सभी विधियों का सचित्र वर्णन इनके गुण-दोष बताते हुए करिये ?

4. पौधों में सिंचाई की आवश्यकता का ज्ञान किस प्रकार करोगे ?

5. शस्यों की जल की माँग से क्या तात्पर्य है ? जल-माँग को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करिये ।

6. निम्न में आप किस विधि से सिंचाई करोगे—

   (i) आलू
   (ii) गेहूँ
   (iii) धान
   (iv) कपास
   (v) अमरूद, आम, पपीते के उद्यान
   (vi) टमाटर की पौध घर
   (vii) घास का मैदान

---

23. सिंचाई के जल की नाप

(Measurement of Irrigation Water)

सिंचाई के जल की मात्रा की नाप

सिंचाई के लिए जल का सुचारु रूप से प्रयोग के लिए यह आवश्यक है कि जल की मात्रा की नाप रखी जाए। सिंचाई जल की मात्रा (गहराई) भूमि, फसल एवं विभिन्न अवयवों के आधार पर निश्चित की जाती है।

सिंचाई के नाप की कई मात्रक या इकाइयाँ (Units) हैं जो समय-समय पर प्रयोग की जाती हैं। इन इकाइयों को दो भागों में बाँटते हैं—

(1) वे जो शांत या एकत्र स्थान पर एक स्थिर जल का आयतन नापती हैं। जैसे—गैलन, लीटर, सेण्टीमीटर, प्रति हेक्टर, घनफुट एकड़ इंच, एकड़ फुट, हेक्टर सेमी।

(2) वे जो जल के बहाव की गति को समय के हिसाब न जाती है। जैसे गैलन प्रतिमिनट, लीटर प्रति सैकिण्ड, घन फुट प्रति सैकिण्ड, इंच प्रति घंटा, एकड़ फुट प्रतिदिन।

जल नापने की ब्रिटिश पद्धति

क्यूसेक (Cusec)—यह दो शब्दों क्यूबिक फीट और प्रति सैकिण्ड का छोटा सम्मिलित रूप है। एक घनफुट प्रति सैकिण्ड की दर से बहते जल की मात्रा को क्यूसेक कहते हैं। यह जल-बहाव की इकाई है।

1 घन फुट = 6·25 गैलन या 28·3 लीटर

1 गैलन जल—4·53 लीटर

1 गैलन जल की तौल—10 पौण्ड या 4·53 कि. ग्रा.

एक क्यूसेक—6·25 पौण्ड

एक क्यूसेक प्रति मिनट — 6·25 × 60 गैलन प्रति मिनिट

—375 गैलन या 3750 पौंउण्ड प्रति मिनट

एक क्यूसेक प्रति मिनिट—28·3 × 60 लीटर या कि. ग्रा. प्रति मिनट

—1698 लीटर या कि. ग्रा. प्रति मिनिट

इस प्रकार एक क्यूसेक जल लगातार एक घण्टे बहे तो जल का आयतन— 375 × 60 = 22500 गैलन या 225000 पाउण्ड होगी। मीटरी प्रणाली में यह 1698 × 60 = 101880 लीटर या कि. ग्रा. होगी।

एकड़ इन्च (Acre Inch)— जल की वह मात्रा जो एक एकड़ भूमि के सम्पूर्ण क्षेत्र पर एक इंच ऊंची रहे ।

एकड़ इंच=43560 वर्ग फुट $\times 1/12$
=3630 घन फुट
=3630 $\times$ 6·25 गैलन
=22687·5 गैलन
=226875 पाउण्ड या 100 टन लगभग
=103136·5 लीटर या कि. ग्रा.

एकड़ फुट—स्थिर जल की वह मात्रा जो एकड़ के सम्पूर्ण क्षेत्र पर एक फुट ऊंची हो । यह भी खेत के जल की गहराई नापने की इकाई है ।

एकड़ फुट=43560 घनफुट या 12 एकड़ इंच ।

जल दाब तथा ऊँचाई का संबंध

जल का दाब प्रत्येक तल पर तल के लम्बवत् कार्य करता है । किसी भी तल पर डाले हुए बल को जल-दाब कहते हैं ।

एक बर्तन जिसके अन्दर का नाप $1'' \times 1'' \times 1''$ है और इसमें जल भरा है उसके एक वर्ग इंच पर 0·434 पॉउण्ड दाब पड़ता है ।

1 घन फुट जल की तौल—62.5 पाउण्ड

1 वर्ग इंच पर एक का दाब— $\frac{62.5}{12 \times 12}$ =0·434 पॉउण्ड

यदि जल की ऊँचाई 4 फुट उठाई जाये तो दाब भी उसी अनुपात में बढ़ेगा । दाब प्रति वर्ग इंच –0·434 $\times$ ऊँचाई इंच में

या ऊँचाई (H) = 2·304 $\times$ दाब (P)

जल प्रवाह का नाप

प्रवाह का कारण—जल प्रवाह गुरुत्वाकर्षण एवं उसके दाब के कारण तथा दाब में किसी कारण अंतर के कारण होता है ।

(1) खुली नाली में जल प्रवाह—इसमें जल-प्रवाह ढाल के कारण होता है । जब ऊपर से नीचे की ओर ढाल मे लगातार जल बहता रहता है । एक वस्तु घर्षण रहित ढालू तल पर लुढकती है । इसी सिद्धांत पर जल की गति मालूम करते हैं जिससे जल को लुढकती वस्तु मान लेते हैं ।

वस्तु का ढालू तल पर लुढकना
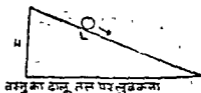
यदि, D=जल का प्रसाव घन फुट प्रति सैकण्ड
A=नाली के वर्टिकल सेक्शन का क्षेत्रफल वर्ग फुट
V=जल की गति फुट प्रति सैकिण्ड

अतः $D = A \times V$

गति जानने के लिए नहर में किसी निश्चित दूरी को लेकर कार्क के छोड़ने व पहुँचने का समय नोट कर लेते हैं। जो चाल कॉर्क की होगी वही जल की समझी जायेगी।
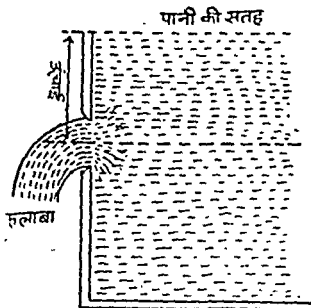
कुलाबा (Orifice)—खेत में नहर का जल जाने के लिए तल से कुछ नीचे आवश्यकतानुसार विभिन्न नाप के लोहे या सीमेण्ट के नल लगा देते हैं, जिन्हें कुलाबा कहते हैं जिससे निकला जल नालियों द्वारा खेत में पहुँचता है।

(2) कुलाबे से जल प्रसाव—ऊँचाई से जल गिरने पर उसका धीरे-धीरे वेग बढ़ता है। जल का वेग पृथ्वी के आकर्षण के कारण प्रति सैकण्ड में जितना बढ़ता है उस वेग वृद्धि को गुरुत्वाकर्षण से तैयार हुआ त्वरण (Acceleration due to gravity) कहते हैं जिसको निश्चित अक्षर 'g' से प्रकट करते हैं। 'g' का मान 981 सेमी या 32·3 फुट प्रति सैकिण्ड होता है।

यदि जल 'h' ऊंचाई से गिरता है तो उनकी चाल (Velocity) $\sqrt{2gh}$ फुट प्रति सैकिण्ड हो जाती है।

अतः $= D = A \times V$

$= A\sqrt{2gh}$

$D =$ जल प्रसाव घनफुट प्रति सैकण्ड

$A =$ कुलाबे के मुँह का क्षेत्रफल

$V =$ जल की जल फुट प्रति सै.

h=कुलाबे के छेद के मध्य से जल की ऊँचाई फुट में

जल की सतह में आपस में घर्षण , होने से उसके बहाव में कमी आती है। कुलाबे का जल पाइप में होकर बाहर आता है जिससे गति में बाधा आती है। अतः उक्त सूत्र में कुछ संशोधन किया गया है।

$D = c \times A\sqrt{2gh}$

जबकि—c=गुणांक (Co-efficient)—यह कुलाबे की स्थिति व नल की लम्बाई पर निर्भर करता है जिसका मान 0·6 और 0·8 होता है। नल की लंबाई के साथ कुछ घर्षण बढ़ता है तो जल प्रसाव में कुछ कमी आ जाती है जो वास्तविक चाल का लगभग 3/5 भाग होता है।

उदाहरण—एक कुलाबे से, जिसके नल का व्यास 4″ है और जल की ऊंचाई 2·5′ है, कितने जल का प्रसाव होगा।

हल—कुलाबे से जल का निकास$=C \times A\sqrt{2gh}$

$A \pi r^2$

$= \pi(2/12)^2$ और $c = \cdot 6$

$$= \cdot 6 \times \frac{22}{7} \times \frac{4}{144}\sqrt{2 \times 32\ 2 \times \frac{5}{2}}$$

$= \cdot 665$ घन फुट प्रति सैकण्ड

2. उदाहरण—कुलाबे का व्यास 6 इंच तथा जल की ऊँचाई 4 फुट है जिससे प्रति घंटा कितना जल प्रमाव होगा ? इस कुलाबे से 10 घंटे में कितने क्षेत्र को सींचा जा सकता है, जबकि प्रति एकड़ 3 इंच जल लगाया जावे।

हल—एक एकड़ के लिये जल की आवश्यकता$=4840 \times 9 \times \frac{3}{12}$ घन फुट

$= 10890$ घन फुट

कुलाबे से जल का प्रसाव$=c \times \sqrt{2gh}$ $\quad A = \pi r^2 \pi\left(\frac{3}{12}\right)^2$

$$= \cdot 6 \times \frac{22}{7} \times \frac{9}{144}\sqrt{2 + 32{\cdot}2 \times 4}$$

$$= \frac{6}{10} \times \frac{22}{7} \times \frac{9}{144} \times 16{\cdot}05$$

$=1{\cdot}89$ घन फीट प्रति सैं.

घन फुट प्रति घण्टा $= 1.89 \times 60 \times 60$

$= 6804$ घन फुट

10 घण्टे में जल प्रसाव $= 6804 \times 10$

$= 68040$ घन फुट प्रति घण्टा

. 10890 घन फुट जल 1 एकड़ में चाहते हैं।

$\therefore$ 1 घन फुट जल $\frac{1}{10890}$ एकड़

$\therefore$ 68040 घन फुट जल $\frac{1 \times 68040}{10890}$ एकड़ $= 6.25$ एकड़ लगभग

3. 90 डिग्री पर 'V' (V-Notch) द्वारा जल प्रसाव—ट्यूबवैल या अन्य जल उठाने के बड़े यंत्रों की जल क्षमता को लोहे के 'V' दांता लगाकर नापते हैं। यह सांचा या दांता जल बहने वाली नली में लगाकर नापते हैं जिससे 90° पर कटान होता है। इसके जल निकास को निम्न सूत्र से ज्ञात करते हैं—

$D = 2.49 \times H$ 5/2

H = सांचे की शीर्ष से जल सतह की ऊंचाई फुट में

उदाहरण–50° पर बने 'V' आकार के सांचे से कितना जल प्रसाव होगा यदि सांचे के शीर्ष से जल की ऊंचाई 12" है।
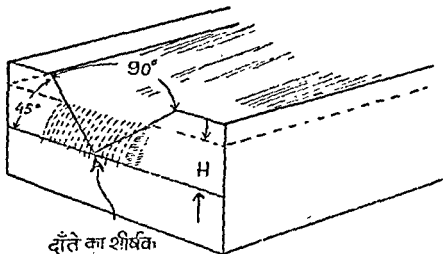
चित्र : 90° पर 'V' दांता

हल — जल प्रसाव $= 2{\cdot}49 \times H\ 5/2$

$$= 2{\cdot}49\sqrt{1\times1\times1\times1\times1}$$

$= 2{\cdot}49 \times 1$ घनफुट प्रति सैकण्ड

(एक घनफुट $= 6{\cdot}25$ गैलन)

$$= \frac{249}{100} \times \frac{25}{4} \times 60 \times 60$$

$= 56025$ गैलन प्रति घंटा

जल नापने की मीटरी पद्धति

इस प्रणाली में स्थिर जल को लीटर, घन मीटर, हेक्टर, से०मी०, हेक्टर मीटर में नापते हैं। बहते हुए जल को लीटर प्रति सैकण्ड, लीटर प्रति घंटा, क्यूमेक, हेक्टर से. मी. प्रति घंटा या दिन में नापते हैं।

लीटर (Litre)—1000 घन सेमी. जल का आयतन। घन डेसी मीटर या $\frac{1}{1000}$ घनमीटर है।

घनमीटर—1 मीटर लम्बा, 1 मीटर चौड़ा तथा 1 मीटर गहरे जल का आयतन जो 1000 लीटर के बराबर होता है।

हेक्टर सेण्टीमीटर—जल की वह मात्रा जो एक हेक्टर क्षेत्र में पूरे क्षेत्रफल पर 1 से मी. ऊँची रहे। यह खेतों में जल की गहराई नापने की इकाई है।

एक हेक्टर $= 100 \times 100 = 10000$. वर्ग मीटर

एक हेक्टर से.मी. $= 10000 \times \frac{1}{100}$ घनमीटर

$= 100$ घनमीटर

$= 100 \times 1000$ लीटर

$= 1,00,000$ लीटर

हेक्टर मीटर—जल की वह मात्रा जो एक हेक्टर भूमि के क्षेत्र पर एक मीटर ऊँचाई तक भरने को चाहिये।

हेक्टर मीटर $= 1,00,000 \times 100$ लीटर

$= 1,00,00,000$ लीटर

लीटर प्रति सैकण्ड—जल की वह मात्रा जो किसी निश्चित बिन्दु से एक लीटर प्रति सैकण्ड की गति से लगातार बह रही है। यह किसी पम्प, नल या नाली के प्रसाव की इकाई है।

क्यूमेक--एक मीटर चौड़ी और इतनी ही गहरी नाली में एक मीटर प्रति सैकण्ड या एक घन मीटर प्रति सैकण्ड की गति से बहने वाले जल की मात्रा है।

एक क्यूमेक = 1000 लीटर प्रति सैकण्ड

= 1000 किग्रा या 1 मीट्रिक टन

एक क्यूमेक प्रति मिनट = 1000 × 60 लीटर

= 60000 लीटर या कि.ग्रा. प्रति मिनट या

= 600 क्विण्टल या 60 मीट्रिक टन

उदाहरण—एक ट्यूबवैल 16000 लीटर प्रति घंटे की दर से जल प्रसाव कर रहा है तो एक हेक्टर गेहूँ की सिंचाई में कितना पानी लगेगा जबकि खेत में 5 हेक्टर सेमी. सिंचाई की जावे और 10% जल नाली से नष्ट हो जाता है।

हल— एक हेक्टर गेहूँ की फसल मे जल की आवश्यकता = 5 × 100000 लीटर

= 5,00,000 लीटर

ट्यूबवैल से एक घंटे में 16000 लीटर पानी निकलकर 10% जल नाली से नष्ट होता है।

अतः खेत एक जल पहुँचाने की मात्रा $= \frac{16000 \times 90}{100} = 15400$ लीटर

∵ 15400 लीटर पानी एक घण्टे में पहुँचता है।

∴ 1 „ „ $\frac{1}{15400}$ घंटे मे पहुँचता है।

∴ 50,0000 „ „ $\frac{50,0000}{15400}$ घंटे

= 32·4 घण्टे

नाली से जल प्रसाव—प्रसाव (D) = क्षेत्रफल (A) × गति (V)

प्र = प्रसाव गति घनमीटर प्रति सैकण्ड

क्षे = नाली या नल का अन्तरकाटीय क्षे.फ. वर्गमीटर में

ग = बहाव की गति प्रति सैकण्ड

उदाहरण—एक वर्गाकार 35 से.मी चौड़ी नाली से 25 सेमी. ऊँचाई तक जल बह रहा है पानी गति 2 मीटर प्रति सैकण्ड है तो पानी का प्रसाव ज्ञात करो।

हल— प्रसाव = क्षे × ग

$$क्षे = \frac{35}{100} \times \frac{25}{100}$$

ग = 2 मीटर प्रति सैकण्ड

$$अतः\ प्र = \frac{35}{100} \times \frac{25}{100} \times 2$$

$$= \frac{7}{40}$$

= 0·145 घनमीटर प्रति सैकण्ड

कुलाबे से जल प्रसाव—

$$प्र = गु \times क्षे \times \sqrt{2 \times गुरु \times ऊं}$$

$$= C \times A \times \sqrt{2gh}$$

C = गुणांक जिसका मान 0·61 या 0·6

A = कुलाबे के मुँह का क्षे.फ. (πr^2) वर्गमीटर में

g = गुरुत्वाकर्षण शक्ति (9·81 मीटर प्रति सै.)

h = पानी की ऊँचाई (मीटर) जो कुलाबे के मध्य से जल की ऊपरी सतह तक नापी जाती है।

उदाहरण—एक 10 से. मी. व्यास के कुलाबे से जल प्रसाव ज्ञात करो। जबकि कुलाबे के ऊपर नाली की ऊँचाई 15 से.मी. है। यह भी ज्ञात करो कि 50 हेक्टर भूमि सींचने में कितना समय लगेगा जबकि 8 से मी. गहरी सिंचाई करती है।

हल— $$प्रसाव = गु \times क्षे \times \sqrt{2 गुरु \times ऊं}$$

$$= 0·6 \times \frac{22}{7} \times \frac{5}{100} \times \frac{5}{100} \times \sqrt{2 \times 9·8 \times 1·5}$$

$$= ·6 \times \frac{22}{7} \times \frac{5}{100} \times \frac{5}{100} \times 5·42$$

$$=\frac{1788 \cdot 60}{7000}=0 \cdot 025$$ घनमीटर प्रति सैकण्ड

या $0 \cdot 025 \times 60 \times 60=90$ घनमीटर प्रति घण्टा

एक हेक्टर से०मी० $=100$ घन मीटर

8 हेक्टर से.मी. $=800$ घनमीटर

∵ एक हेक्टर के लिए 800 घनमीटर जल चाहिए

∴ ,, ,, 50×800 घनमीटर

$=40,000$ घनमीटर

∵ कुलाबे से 90 घनमीटर पानी 1 घण्टे में निकलता है।

∴ ,, 1 ,, $\frac{1}{90}$ घण्टे

∴ ,, 40000 ,, $\frac{40000 \times 1}{90}$ घण्टे में निकलेगा

$=444 \cdot 4$ घण्टे

'V' कटान (v-Notch) से जल का प्रसाव—

सूत्र—प्रसाव $=0 \cdot 0138 \times$ ऊ. 5/2

$=0 \cdot 0138 \times h\ 5/2$

या $=0 \cdot 0138 \times H^2 \sqrt{H}$

D = जल का प्रसाव लीटर 1 सैकण्ड

H = 'V' कटाव में पानी की ऊँचाई से मी.

उदाहरण—एक $90°$ पर बने 'V' Nokh से कितना जल प्रसाव होगा। यदि शीर्ष की ऊँचाई 10 से.मी. हो।

हल—

प्र $=0 \cdot 0138 \times$ ऊ$^2 \sqrt{\text{ऊ}}$

$=0 \cdot 0138 \times 10^2 \times \sqrt{10}$

$=0 \cdot 0138 \times 10 \times 10 \times \sqrt{10}$

$=0 \cdot 0138 \times 100 \sqrt{10}$

$=1 \cdot 38 \times 3 \cdot 16$ या $4 \cdot 3608$ लीटर प्रति घण्टा

एक घण्टे में प्रसाव $=4 \cdot 3608 \times 60 \times 60$ लीटर प्रति सैकण्ड

$=15698 \cdot 8$ लीटर प्रति घण्टा

या $15 \cdot 698$ घनमीटर एक घण्टा

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जल-माप की इकाइयों के कितने भेद है ? प्रत्येक के किन्ही तीन-तीन उदाहरण दीजिए।

2. बहते हुए जल की मात्रा ज्ञात करने में कौन से उपकरण प्रयुक्त होते हैं ? निम्न में से कौन सा सूत्र प्रयोग करेंगे। खुली नाली 90° का v दांता।

3. कलावा किसे कहते हैं, एक कलावे के मुख का व्यास 10 से.मी. है और जल की ऊंचाई 1 मीटर है, कितना जल प्रसाव होगा।

4. 98 पर बने v दांते से जल प्रसाव कितने लीटर प्रति सैकिण्ड होगा जब कि नीचे के शीर्ष से जल की सतह की ऊंचाई 16 से.मी. है।

5. निम्न से क्या तात्पर्य है—
क्यूसेक, क्यूमेक, एकड़ इंच, एकड़ फुट।

24. मृदा एवं जल संरक्षण

(Soil and Water conservation)

मानव के लिए भूमि का महत्व है। यह उसे भोजन के लिए अन्न, कन्द, मूल, फल, पहिनने के लिए वस्त्र, विविध उपयोग के लिए लकड़ी तथा अनेक दुर्लभ खनिज प्रदान करती है। भूमि के उपयोग के बिना मानव का काम नहीं चल सकता है।

मृदा, जिसका हम उपयोग कर रहे हैं, का निर्माण क्षेत्र अनेक वर्षों का प्रतिफल है। अत: आवश्यकता है कि भूमि का उपयोग इस प्रकार किया जावे कि वह खराब न होने पाये और इसकी उर्वरा शक्ति कम न हो। फिर भी देखा गया है कि भूमि से पहिले की अपेक्षा उपज कम प्राप्त होती है और उत्पादन कम होता जा रहा है। इसके मुख्य दो कारण हैं—

1. भूमि की उर्वरता का ह्रास होना,
2. भूमि अपरदान या क्षरण

दोनों कारणों की रोकथाम, 'भूमि-संरक्षण' कहलाती है जिससे भूमि से मानव की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहे तथा उर्वरा शक्ति में विशेष कमी न आने पाये।

डा. एच. एच. बैनेट के अनुसार, "भूमि का ऐसा नियोजित उपयोग जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति का ह्रास न्यूनतम या बिल्कुल न हो, भूमि-संरक्षण कहलाता है।"

भूमि के विभिन्न अपरदान शक्तियों द्वारा बहने तथा करने से बचाने और उसकी उर्वरा शक्ति को बढ़ाने को, भूमि-संरक्षण कहते हैं।

भूमि की उर्वरता का ह्रास
(Soil Exbaustion)

भूमि में एक ही वर्ष में लगातार कई फसलें मृदा-प्रबन्ध को ध्यान में न रखते हुए ली जाती है तो भूमि की उर्वरता में कमी आती है तथा उत्पादन कम प्राप्त होता है। इसके अलावा अग्र लिखित कारणों से उर्वरता में कमी होती है—

(i) फसलों द्वारा भोज्य तत्वों का लेना,
(ii) जल-निकास द्वारा भोज्य तत्वों में कमी,
(iii) अच्छा फसल-चक्र न अपनाना,
(iv) भूमि से तत्वों का रिसना :

इनसे भूमि की उर्वरता में काफी कमी आ जाती है। इसके लिए समुचित खाद का प्रयोग तथा फसल-चक्र अपनाना चाहिए।

भूमि-अपरदन
(Soil Erosion)

भौतिक रूप से मृदा-कणों का अपने स्थान से हटने या दूसरे स्थान पर पहुँचने की क्रिया को, मृदा-अपरदन (भू-क्षरण) कहते हैं। यह एक अनवरत विनाशकारी क्रिया है जिससे भूमि का एक बहुत बड़ा क्षेत्रफल जल या तेज वायु से कटकर खेती के लिए अनुपयुक्त होता जा रहा है। अनुमान है कि प्रतिवर्ष कृषि योग्य भूमि से लगभग 600 करोड़ टन मिट्टी बह जाती है। इस मिट्टी में पोषक तत्वों की मात्रा अधिक होती है जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति का ह्रास होता है।

मृदा-अपरदन—दो प्रकार से होता है—

(1) प्राकृतिक-अपरदन (Natural Erosion)—प्राकृतिक स्थिति में भूमि वनस्पति से ढँकी रहती है। ये वनस्पतियाँ मृदा कवच का कार्य करती हैं जिससे भूमि में वायु तथा जल द्वारा कटाव की क्रिया बहुत मन्द गति से होती है।

वनस्पतियों से ढँकी भूमि में प्राकृतिक रूप से जल तथा वायु द्वारा किये अपरदन को, प्राकृतिक अपरदन कहा जाता है। यह अपरदन मृदा निर्माण तथा भूमि विनाश क्रियाओं को समीकृत रखता है जिससे विशेष हानि नहीं होती है।

(2) त्वरित अपरदन (Accelerated Erosion)—भूमि के कवच के नष्ट हो जाने पर भूमि नंगी हो जाती है तो वर्षा की बूँदें मृदा के ऊपरी कणों को घोलकर बहा ले जाती हैं तथा वायु के साथ उड़ने लगती है। इस प्रकार के अपरदन को 'त्वरित अपरदन' कहते हैं।

मृदा अपरदन दो शक्तियों के द्वारा होता है—जिनको उन्हीं के नामों से पुकारा जाता है—

(क) पवनीय अपरदन
(ख) जलीय अपरदन

(क) पवनीय अपरदन (Wind Erosion)—तेज वायु अपने साथ भूमि की ऊपरी सतह से मिट्टी के कणों को उड़ा ले जाती है। इस प्रकार आँधी और बवण्डर द्वारा करोड़ों टन उपजाऊ मिट्टी एक स्थान पर पहुँच जाती है। वायु द्वारा भू-अपरदन क्रिया को वायु द्वारा कटाव या पवनीय अपरदन कहते हैं।

देश के अधिकांश भागों में वर्ष के तीन महीनों में पछुवा हवायें चलती हैं,

इससे खेत खाली और शुष्क रहते हैं जिससे तेज हवायें मिट्टी को धूल के रूप में उड़ा कर दूर छोड़ देती हैं जिससे उपजाऊ मिट्टी भी ढक जाती है। शुष्क भागों में वायु के द्वारा भू-अपरदन अधिक होता है।

पवनीय अपरदन को प्रभावित करने वाले कारक

1. सूखा (Drought)—भूमि के सूखे होने पर वायु द्वारा मिट्टी अधिक मात्रा में उड़ती है।

2. भूमि की किस्म—बलुई मिट्टी की जल धारण क्षमता चिकनी मिट्टी से कम होती है और कण अलग-अलग रहते हैं जिससे बलुई मिट्टी में चिकनी से अधिक वायु से अपरदन होता है।

3. जैव-पदार्थ—भूमि में जैव-पदार्थों की कमी होने पर मिट्टी नमी का संरक्षण अधिक समय तक नहीं कर पाती है और कण आपस में बंधे नहीं रहते हैं जिससे वायु ऐसे कणों को शीघ्र उड़ा ले जाती है।

4. पशुओं द्वारा चराई—मृदा के वानस्पतिक कवच को पशुओं द्वारा चरे जाने से भूमि खुल जाती है जिससे मिट्टी के कण वायु द्वारा उड़ा लिए जाते हैं।

5. अत्यधिक जुताई—भू-परिष्करण की क्रियाओं को कई बार करने पर मिट्टी के कण काफी बारीक और भुरभुरे हो जाते हैं। ऐसी मिट्टी शीघ्रता से उड़कर नष्ट हो जाती है।

6. वायु की गति—जिन क्षेत्रों में तेज हवायें, आंधियां चलती रहती हैं वहां हवा मिट्टी के कण एक स्थान से दूसरे स्थान को उड़ाकर ले जाती है।

(ब) जलीय अपरदन (Water Erosion)—वनस्पति रहित नंगी भूमि पर जब वर्षा के जल की बूंदें गिरती हैं तो वह भूमि के कणों को घोलकर ढाल की ओर बहा ले जाती हैं। यही जल छोटी-बड़ी नालियों, नालों तथा नदियों द्वारा खेत की उपजाऊ मिट्टी को काफी दूर तक बहा ले जाती है जिससे भूमि में गहरी दरारें पड़ जाती हैं। इस प्रकार जल द्वारा भूमि के कटने-बहने की क्रिया को जलीय-अपरदन कहते हैं।

जलीय अपरदन के रूप—जल द्वारा कटाव चार प्रकार से होता है—

1. बौछार भू-क्षरण (Splash Erosion)—वर्षा के जल की बूंदें तेजी से भूमि पर गिरकर भूमि के कणों को अलग-अलग कर देती हैं और ये कण इधर-उधर छिटक जाते हैं तथा जल की धारा के साथ बह जाते हैं।

2. परत-भू-क्षरण (Sheet Erosion)—वर्षा का जल समतल भूमि की एक बराबर मिट्टी की पतली तह को अपने साथ बहा ले जाती है, इसे भूमि का समतल कटाव या परत-भू-क्षरण कहते हैं। भूमि की उर्वर ऊपरी तह बह जाने से उपज में कमी आ जाती है।

3. रिल भू-क्षरण (Rill Erosion)—खेतों के समतल न होने पर उनमें कुछ ढाल होता है तो वर्षा का जल ढाल की ओर बहने लगता है जिससे खेत के

छोटी-छोटी नालियाँ बन जाती हैं । इन्हीं पतली छोटी-नालियों से जल खेत को निचले भाग में पहुँच जाता है । इन नालियों को क्षुद्र सरिता या रिल कहते हैं ।

चित्र—

4. **अवनालिका भू-क्षरण (Gulley Erosion)**—भूमि में ढाल अधिक होने पर वर्षा जल तेजी से बहकर रिल कटाव द्वारा बनी नालियां धीरे-धीरे गहरी, चौड़ी हो जाती है जिससे धरातल की मिट्टी कटने-बहने के बाद जलधारा अधोभूमि को भी काट डालती है । इसको नालीदार कटाव या अवनालिका भू-क्षरण कहते हैं ।

जलीय मृदा-अपरदन को प्रभावित करने वाले कारक—

1. **भूमि का ढाल**—भूमि के ढालू होने पर जल तेजी से बहकर ऊपरी सतह को काटकर बहा ले जाती है क्योंकि भूमि में जल को सोखने का समय कम मिलता है । भूमि के 2% ढाल पर लगभग 20 टन उपजाऊ मिट्टी प्रति हेक्टर कट जाती है । ढाल के अधिक लम्बा होने पर भूमि अधिक कटती है ।

2. **मिट्टी की किस्म**—बलुई मिट्टी के कण आपस में बंधे न होने से कटाव चिकनी मिट्टी की अपेक्षा अधिक होता है । भूमि में जीवांश अधिक होने पर इसकी जल-धारण क्षमता बढ़ जाती है तथा कटाव भी कम होता है ।

3. **वनस्पति**—वनस्पति से आच्छादित भूमि पर जल की बूंदों का वेग वनस्पति पर पड़ता है जिससे भूमि पर सीधा प्रभाव कम पड़ता है । वनस्पतियों तथा पेड़ों की जड़ें मिट्टी के कणों को आपस में बाँधे रखती हैं और जल को अधिक सोखने में सहायता करती है इससे कटाव कम होता है ।

4. **वर्षा**—वर्षा की प्रचण्डता, अवधि और आवृत्ति का सीधा सम्बन्ध भूमि से है । वर्षा के धीरे-धीरे होने पर मिट्टी को जल सोखने में समय मिल जाता है जिससे कटाव कम होता ह परन्तु तेज वर्षा होने पर भूमि द्वारा जल शोषित न

होकर ऊपरी तल की मिट्टी को काटता हुआ बहा ले जाता है। वर्षा ऋतु में अपरदन अन्य ऋतुओं की अपेक्षा अधिक होता है क्योंकि भूमि में नमी के अधिक होने से जल शोषण भी कम होता है।

5. पशुओं की चराई—अधिक पशुओं के चरने पर सारी घास को चर जाते हैं जिससे भूमि नंगी हो जाती है तथा उनके खुर मिट्टी की ऊपरी सतह को ढीला कर देते हैं जिसमें वर्षा का जल भूमि को तेजी से काटकर बहा ले जाता है।

6. ढाल पर जुताई—भूमि के ढाल की दिशा में जुताई करने पर हल की कूण्ड की नाली बन जाती है और इसी से जल तेजी से बहकर अपरदन करता है। ढाल के विपरीत जुताई तथा अन्य कृषि क्रियायें करने से कटाव-बहाव में कमी होती है क्योंकि कूण्ड की दीवाल जल को ढाल की ओर बहने में बाधा डालती है।

7. फसल चक्र—वर्षा काल में फसल चक्र में काफी घनी तथा फैलने वाली मूंग, उर्द, फसलों के बोने पर क्षरण कम होता है जबकि दूर-दूर मक्का आदि बोने पर अपरदन अधिक होगा।

अपरदन से हानियां

1. मिट्टी की हानि—वायु तथा जल द्वारा भूमि की ऊपरी सतह उड़कर या बहकर नष्ट हो जाती है। यह प्रमुख हानि है क्योंकि अवशिष्ट भूमि के उर्वर न होने से उत्पादन कम हो जाता है।

2. उर्वरता में कमी—वायु- मृदा कणों को उड़ाकर दूर ले जाती है तथा जल भूमि काफी गहराई तक की मिट्टी को काटकर बहा ले जाती है। यह क्रिया नदी के किनारे स्पष्ट देखी जा सकती है जिससे मिट्टी अनुपयोगी हो जाती है।

3. जल की हानि—शुष्क तेज वायु मृदा नमी को वाष्पीकृत कर देती है। वर्षा का जल भूमि द्वारा शोषित न होकर बहकर नष्ट हो जाता है। इसे भूमि में शोषित होने तथा एकत्रित करने पर फसलों के उपयोग में लाया जा सकता है।

4. कृषि कार्यों में कठिनता—अवनालिका खेतों को बेडौल, ढालू टुकड़ों में बांट देती है। इनके अधिक गहरे खार बन जाने पर उसे पार करना कठिन हो जाता है। इन टुकड़ों को समतल कर जोतने तथा बोने में कठिनाई होती है।

5. जल-धारण क्षमता में कमी—जल द्वारा बही मिट्टी नदी, नालों, तालाबों तथा बांधों आदि के तलों में बैठ जाती है जिससे उनका धरातल ऊँचा हो जाता है और इनकी जल-धारण क्षमता भी कम हो जाती है तथा बाढ़ें भी आ जाती हैं।

6. उत्पादन में कमी—भूमि की ऊपरी उपजाऊ तह के उड़ने या बहने से बची मिट्टी उपजाऊ नहीं होती है जिसमें फसलों से उपज कम मिलती है। तेज बारिश से बाढ़ की स्थिति पैदा हो जाती है तो फसलें, पशु, जन-धन की हानि होती है।

भूमि-संरक्षण
(Soil Conservation)

मृदा कटाव का जल प्रमुख साधन है अतः कटाव की रोकथाम के उपाय अपनाये जावें जिससे भूमि अधिक जल शोषित करके सतह को कम काटे। यही 'भूमि-संरक्षण' का मुख्य सिद्धांत है। भूमि अपरदन की रोकथाम की विधियों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(अ) कर्षण विधियां

(ब) यांत्रिक विधियां

(स) वानस्पतिक विधियां

(अ) कर्षण विधियां (Cultural Practices)—मृदा अपरदन रोकने के निम्नलिखित उपाय प्रमुख हैं—

1. फसल चक्र—फसलें मृदा अपरदन को रोकने में सहायक होती हैं। मक्का, ज्वार, तम्बाकू आदि फसलों को दूर पंक्ति मे बोते हैं जो खेत में फैलती नहीं हैं बल्कि सीधी खड़ी रहती हैं जिससे ये फसलें मिट्टी को बौछार से नहीं बचा पाती हैं और मिट्टी कटती रहती हैं। इससे इनको अपरदन मे सहायक फसलें (Erosion Permitting Crops) कहते हैं, जिससे ऐसी फसलें न बोयें। मूंग, उर्द, लोबिया, मूंगफली आदि फसलों को बोने पर ये फैलकर भूमि को ढक लेती हैं। जिससे वर्षा के जल की बूंदें मिट्टी पर नही पड़ती हैं, इनको अपरदन रोकने वाली फसलें (Erosion Resisting Crops) कहते हैं, ऐसी फसलों को फसल-चक्र मे स्थान देना चाहिए।

2. फसलों को पट्टियों में बोना (Strip Cropping)—भूमि को ढाल के अनुसार खेत को पट्टियों में बाँटकर फसलों को बोया जाता है। ऊँची खड़ी फसल (ज्वार, बाजरा) की पट्टी के बाद मूंग, मूंगफली, लोबिया आदि भूमि पर फैलने वाली फसल की पट्टी बोई जाए। ये फसलें शीघ्र बढ़कर जमीन पर फैल जाती हैं और उर्वरा शक्ति को बनाए रखती हैं। अपरदन रोकने वाली फसल की पट्टी की चौड़ाई अपेक्षाकृत अधिक रखी जाती है। ढाल के अनुरूप पट्टियों की चौड़ाई कम अधिक की जा सकती है। दोनों प्रकार की फसलों की पट्टियों को चौड़ाई में 1 : 5 या 1 : 3 तक रखा जाता है।

3. कण्टूर पर खेती करना (Contour Cultivation)—समान ऊँचाई की भूमि पर बनी हुई रेखा को कण्टूर कहते हैं। कण्टूर ढाल के विपरीत दिशा में बनाए जाते हैं। कण्टूर की पारस्परिक दूरी कम या अधिक हो सकती है। ढालू भूमि पर कण्टूर बन जाने से जल रुक-रुककर आगे बढ़ता है और जल भूमि मे शोषित होकर बाहर कम बहता है जिससे कटाव कम होता है। इन कण्टूरों पर खेती की जाती है।

4. जुताई—भूमि के ढाल के विपरीत दिशा में जुताई करने पर कूण्ड बहते पानी को रोकती है जिससे खेत का जल और उपजाऊ मिट्टी कम बहती है। ग्रीष्म-कालीन गहरी जुताई से भूमि की जल-शोषण तथा धारण क्षमता बढ़ जाती है।

5. जैविक खादों का प्रयोग—अनुपजाऊ भूमि में जल कम शोषित होने से कटाव होता है। इन खेतों में गोबर की खाद, सनई की हरी खाद प्रयोग करें जिससे भूमि की जल शोषण शक्ति बढ़ जाती है। प्रत्येक फसल में खाद तथा उर्वरक निर्धारित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए क्योंकि जीवांश न होने पर उर्वरकों का भूमि पर कुप्रभाव भी देखा गया है।

6. फसलों की बोआई—फसल को सदैव ढाल के विपरीत बोने पर अपरदन कम होता है क्योंकि बोआई का कूण्ड जल के बहाव को रोकता है।

7. मिश्रित शस्य (Mixed-Cropping)—फसलों को मिलाकर बोने से मृदा अपरदन रोकने में सहायता मिलती है। भू-क्षरण को प्रोत्साहन करने वाली फसलों के साथ क्षरण रोकने वाली फसलों को मिलाकर बोना चाहिए। जैसे—मक्का + मूंग।

8. अवरोधक पर्त बनाना—खेतों में घास-फूस तथा पोधों के डण्ठलों से ढकने पर मृदा अपरदन रोका जा सकता है। इसके अतिरिक्त धान की भूसी, बुरादा आदि का प्रयोग किया जा सकता है।

(ब) यांत्रिक विधियां (Mechanical Methods)—यान्त्रिकी विधि में भूमि के ढाल के बीच में कुछ बाधा डालकर छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट देते हैं जिससे जल रुककर धीमी गति से बहता है और काफी मात्रा में शोषित कर लिया जाता है। अपरदन रोकने में ये विधियाँ अपनाई जाती हैं—

1. जल-निकास का प्रबन्ध—भूमि के कटाव को रोकने के लिए फालतू जल की निकासी का उचित प्रबन्ध किया जाना अत्यन्त आवश्यक है जिसमें खेती की फसल डूबने से बचे तथा मिट्टी का कटाव न हो। इसके लिए भूमि की किस्म तथा ढाल के अनुरूप पक्की ईंटों, सीमेंट से जल-निकास मार्ग बनाये जाते हैं जो ड्रिप स्पिलवे, चूट स्पिलवे प्रकार के हो सकते हैं।

2. मेड़बन्दी—जिन खेतों का ढाल 3 मीटर प्रति किलोमीटर से कम होता है वहाँ मेड़बन्दी की जाती है। समतल खेतों को मजबूत बनाने में मिट्टी तथा जल खेत में ही रुक जाता है और अपरदन कम होता है।

3. भूमि-समतल करना- भूमि को ढाल के अनुसार टुकड़ों में बाँटकर मेड़-बन्दी करके समतल कर देना चाहिए जिससे जल की गति कम होने से भूमि में शोषित हो जाता है।

4. कण्टूर बांध—जिस भूमि पर ढाल 3 मीटर से 64 मीटर प्रति किलो-मीटर होता है वहाँ यह बांध अधिक लाभदायक रहते हैं। इनकी चौड़ाई तथा ऊँचाई खेत के ढाल, मिट्टी की किस्म, जल की मात्रा पर निर्भर करती है। इन बाँधों से

थोड़ा जल रोककर शेष जल को सुरक्षित मार्ग से बाहर निकाल दिया जाता है। ये बांध खेत के अन्दर समान ऊंचाई वाले भाग पर बनाए जाते हैं जिससे जल का दाब पूरे बांध पर एक-सा पड़ता है और बांध नहीं टूटता है।

5. सीढ़ीदार खेत (Bench Terracing) – जहां भूमि का ढाल अपेक्षाकृत काफी अधिक 72 से 155 मीटर प्रति किलोमीटर होता है वहां मेड़ और बांध सफल नहीं होते हैं। खेत सीढ़ीदार या चबूतरे की भांति बनाए जाते हैं। इनको समतल करके सीढ़ी की निचली ओर एक छोटी मेड़ बना देते हैं जिसमें जल सीढ़ी को न काट सके। इन पर फसलें भी बोई जाती हैं।

चित्र —

(स) वानस्पतिक विधियां (Vegetation)—जहां पर भूमि अधिक ढालू होती है वहां पर पशुओं की चराई तथा पेड़-पौधों की कटाई पूर्णतया बन्द कर देनी चाहिए तथा निम्न विधियां अपनायें—

1. वृक्षारोपण—भू तथा जल संरक्षण के लिए यह अचूक प्रभावी विधि है। ये झरनों, सरिता और नदी को नियन्त्रण करते हैं; जहां से पेड़ काटे गए हैं वहां नये पेड़ लगाए जायें। सभी नदी-नालों के तट, पहाड़ियों, खण्डहरी भूमि पर बड़ी संख्या में पेड़ लगाये जायें और चराई बिल्कुल ही बन्द कर दी जावे। वृक्षारोपण तथा वायुरोधी पट्टियां वायु अपरदन को भी रोकने में सहायक होती हैं।

2. घास लगाना—ढालू तथा बेकार भूमि पर शीघ्र फैलने वाली घासें, दूब, अंजना, सावां, नेपियर, लेमन तथा पैरा घास लगानी चाहिए जो शीघ्र फैलकर भूमि को अच्छी तरह ढक लेती है जिससे यह जल के बहाव को रोककर भूमि की रक्षा करती हैं। इन घास के मैदानों मे पशुओं को न चराकर इनकी घासें काटकर पशुओं को खिलानी चाहिए। किसी भी दशा मे ढालू भूमि को वनस्पति रहित न रखें।

वनस्पतियां मृदा अपरदन को इस प्रकार रोकती है—

(1) पेड़-पौधे तथा वनस्पतियां वर्षा की चोट स्वयं सहकर मृदा को कटने से बचाती है।

(2) इनकी जड़ें मिट्टी को बांधे रखती है जिससे कटाव नहीं होता है।

(3) जड़ें तथा इनकी पत्तियों आदि के गिरने से जल रुक-रुककर बहता है और भूमि जल अधिक शोषित करने से अपरदन के लिए जल कम मिलता है।

(4) जड़ें तथा भूमि पर गिरी पत्तियाँ आदि सड़-गलकर भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाते हैं।

(5) वनस्पतियों के सड़-गलकर भूमि में मिलने से मृदा संरचना ठीक हो जाती है और रन्ध्राकाश अधिक हो जाते हैं जिससे मिट्टी की जल शोषण तथा धारण क्षमता बढ़ जाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भू-अपरदन किसे कहते हैं, जल से मृदा के कटकर बहने को रोकने के क्या उपाय करोगे ?
2. प्रतिवर्ष उर्वर मृदा (Fertile Soil) का अत्यधिक ह्रास होता है, मृदा के इस प्रकार नष्ट होने के कारण, स्थिति तथा रोकने के उपाय बताइए।
3. जलीय अपरदन क्या है ? इसे प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करिये।
4. 'भूमि-संरक्षण व्यवस्था' पर संक्षेप में अपने विचार लिखिए।
5. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—
    (अ) सीढ़ीदार खेत (Terracing)
    (ब) पट्टियों से फसलें बोना (Strip Cropping)
    (स) वृक्षारोपण (Afforestation)
    (द) जल-निकास प्रबन्ध (Outlet of Water)

— —— —

25. जल निकास
(Drainage)

जिस प्रकार पौधो की वृद्धि जल की कमी से कम होती है उसी भांति अत्यधिक तथा अनावश्यक जल की मात्रा पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। खेत में अनावश्यक जल के एकत्रित होने से मिट्टी के रन्ध्राकाश भर जाते हैं या सतह पर भी एकत्रित हो जाता है जिससे वायु संचार में बाधा पहुँचती है और पौधो की वृद्धि सम्बन्धी सामान्य क्रियाओं के रुकने से वे नष्ट भी हो जाते है। अतः सफल कृषि के लिए इस फालतू जल को बाहर निकालना आवश्यक हो जाता है।

परिभाषा—'खेत के धरातल अथवा अधोसतह से आवश्यकता से अधिक जल को बाहर निकालना ही, जल निकास कहलाता है।'

'पानी को पृथ्वी की सतह पर या सतह के नीचे भरने से रोकना या पृथ्वी के ऊपर व अन्दर भरे फालतू जल को हटाना, जल निकास कहलाता है।'

'फसल की उपज बढ़ाने हेतु भूमि की सतह अथवा अधोसतह से फालतू पानी को कृत्रिम रूप से बाहर निकालना ही, जल निकास कहलाता है।'

जल-निकास की समस्या—निम्नलिखित परिस्थितियों में खेतो मे जल एकत्र हो जाता है—

(1) **कड़ी मटियार भूमि**—इस प्रकार की भूमि में जल नीचे कठिनाई से जाता है।

(2) **कड़ी सतह का होना**—अधो भूमि मे कड़ी तह या कंकड़ों आदि की तह होने वाली भूमि जल से ओत-प्रोत हो जाती है।

(3) **ऊँचा जल-स्तर**—जल स्रोत का धरातल या भूमि सतह से ऊँची होने पर जल रिसकर जल-स्तर को ऊँचा कर देते हैं।

(4) **असमतल भूमि**—खेतों के समतल न होने से जल निचले भागो में भर जाता है।

(5) **अति-वृष्टि**—लगातार काफी समय तक वर्षा होने से खेतों में जल भर जाता है, कभी-कभी बाढ़ की स्थिति आ जाती है।

(6) खेतों का छिछला होना—खेतों के तल के निचले होने पर आस-पास का जल भर जाता है क्योंकि इसके निकलने का रास्ता नहीं होता है।

(7) लवणीय भूमि सुधार—लवणीय भूमियों से हानिकारक लवणों को खेत से हटाने के लिए जल निकास की आवश्यकता है।

अतिरिक्त जल से हानियाँ—भूमि में फालतू जल के निकास की समुचित व्यवस्था न होने पर निम्नलिखित हानियाँ होती हैं—

(1) वायु-संचार में बाधा—भूमि के रन्ध्राकाशों में उपस्थित वायु को हटाकर उनका स्थान जल ले लेता है जिससे वायु-संचार में बाधा उत्पन्न हो जाती है।

(2) भूमि-ताप में गिरावट—आवश्यकता से अधिक जल के भूमि रन्ध्राकाशों में भरने से भूमि के ताप में कमी आ जाती है जिससे बीजों का अंकुरण तथा मृदा-जीवाणुओं की क्रियाशीलता मन्द हो जाती है।

(3) हानिकारक लवणों का एकत्र होना—जल-निकास न होने पर जड़ों के आस-पास लवणों का अंश एकत्रित हो जाता है जिससे जड़ों को हानि होती है तथा भूमि के ऊपर या लवणीय बनने का भय रहता है।

(4) जड़ों का उथला होना—भूमि में वायु की कमी से फसलों की जड़ें भूमि में गहराई तक न जाकर ऊपर ही रह जाती हैं। उथली जड़ें कमजोर होती हैं जिससे वे तेज वायु के चलने पर गिर जाती हैं।

(5) भूमि का दलदली होना—भूमि में अधिक समय तक पानी भरे रहने से इसकी भौतिक दशा बिगड़ जाती है और भूमि दलदली हो जाती है जिससे सिर्फ जंगली घासें ही उगती हैं।

(6) फसलों पर रोगों व कीटों का प्रकोप—अत्यधिक नमी होने से पौधों की पत्तियाँ पीली पड़ कर वानस्पतिक वृद्धि कम हो जाती है। पौधों के कमजोर होने पर उनमें बीमारियों तथा कीटों से आक्रमण को रोकने की शक्ति में कमी आ जाती है। इनके प्रकोप से उपज में काफी कमी आ जाती है।

(7) कर्षण-क्रियाओं में असुविधा—अधिक समय तक जल भरे रहने पर भूमि में कृषि यन्त्रों के उपयोग के लिए आवश्यक ओट नहीं आ पाती है। मटियार भूमि में नमी रहने पर जुताई करने पर कीचड़ तथा सूख जाने पर ढेले पड़ जाते हैं। इससे जुताई और गुड़ाई आदि में असुविधा रहती है।

जल-निकास से लाभ—जल-निकास द्वारा आवश्यक जल बाहर निकल जाने से निम्नलिखित लाभ होते हैं—

(1) मृदा-संरचना में सुधार—अतिरिक्त जल के हटाने से मिट्टी में जल की उचित मात्रा रह जाती है जिससे खेत की जुताई एवं अन्य कृषि कार्यों के शीघ्र यथासमय पर करने से भूमि की संरचना में सुधार होता है।

(2) उपलब्ध जल की मात्रा में वृद्धि—पौधों के लिए उपयोगी केशिकीय

जल की मात्रा में वृद्धि है। भूमि से अतिरिक्त जल के निकास से रन्ध्राकाश में उचित मात्रा में वायु एवं जल रहता है।

(3) नीचा भूमि जल-स्तर—भूमि के अन्दर का जल-स्तर नीचे चला जाता है जिससे पौधों की जड़ें काफी गहराई तक चली जाती हैं और जल की कमी होने पर नहीं मुरझाते हैं।

(4) उचित वायु-संचार – अच्छे जल-निकास वाली भूमियों में वायु का संचार अच्छा रहता है जिससे जड़ों को पर्याप्त ऑक्सीजन मिलने के साथ उपलब्ध भोज्य पदार्थों की अधिक मात्रा प्राप्त होती है।

(5) मृदा-ताप में सुधार – जल-निकास के कारण वाष्पन क्रिया ठीक होती है जिससे भूमि ताप ठीक रहता है और बीजों का अंकुरण शीघ्र अच्छा होता है।

(6) जीवाणुओं की सक्रियता—भूमि में जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होने के साथ इनकी क्रियाशीलता बढ़ जाती है जो फसलों की वृद्धि में सहायक होती है।

(7) भू-संरक्षण—जल-निकास की नलियों से नियोजित ढंग से जल निकलने से भूमि में कटाव कम होते हैं।

(8) भूमि में सुधार—उचित जल-निकास से हानिप्रद लवण काफी मात्रा में बह जाते हैं तथा निचली तहों मे चले जाते हैं जिससे भूमि क्षारीय या अम्लीय होने से बच जाती है।

(9) उपज में वृद्धि - भूमि की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशाओं मे सुधार होने तथा समय पर सभी कृषि कार्य होने से उपज मे वृद्धि होती है क्योंकि पौधों के बीजों के अंकुरण से लेकर कटने तक की सभी स्थितियाँ अनुकूल मिलती हैं।

(10) बीमारियों की रोकथाम भूमि में जल न भरने से पौधों के रोग फैलाने वाले जीवाणु तथा कीटों की वृद्धि कम होती है। मलेरिया का प्रकोप भी कम होता है जिससे पशु, पौधे तथा कृषक सभी स्वस्थ रहते हैं।

जल निकास का प्रबन्ध

जल-निकास के प्रबन्ध में भूमि से अनावश्यक जल के लिए मार्ग का प्रबन्ध करना होता है जो क्षेत्र विशेष भूमि, किस्म, भूमि का ढाल, जल-स्तर, भूमि पर उगी फसलें, अधो मृदा आदि पर निर्भर करता है। जल निकास के मुख्यतः दो ढंग प्रयोग किए जाते हैं -

अ—पृष्ठीय जल-निकास।
ब—भूमिगत जल-निकास।

(अ) पृष्ठीय जल-निकास (Surface Drainage)—प्रायः देश मे यही विधि प्रयोग की जाती है। इसमे प्रारम्भिक व्यय कम होने से सरलता से अपनाई जा सकती है।

भूमि मे निश्चित आकार की खुली नालियां बनाई जाती हैं। नालियों का ढाल मिट्टी की किस्म के अनुसार रखते हैं। नालियों के दोनो किनारे ढालू रखते

हैं। कड़ी चिकनी मिट्टी में बलुई मिट्टी की अपेक्षा कम ढाल रखते हैं। मुख्य निकास वाली 2 मीटर चौड़ी और सहायक नालियाँ 1 मीटर चौड़ी तथा गहराई आवश्यकतानुसार 0·3 से 1 मीटर तक रखी जाती हैं।

यथासम्भव नाली सीधी बनाने से कटाव कम होता है। नालियों की मिट्टी को किनारों पर कुछ दूरी तक रखने से वर्षा के पानी से कटाव कम होता है।
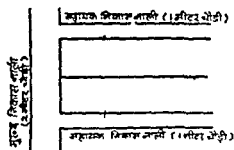
खुली नालियों से जल निकास

पृष्ठीय नालियों द्वारा जल निकास की मुख्य विधियाँ निम्नलिखित हैं—

1. **अस्थाई नालियाँ**— खेत में आवश्यकतानुसार थोड़ी दूर पर 10-15 से. मी. गहरी नालियाँ बनाकर मुख्य नाली से जोड़ देते हैं। जुताई के समय ये नष्ट हो जाती हैं।

2. **कट आउट नालियाँ**—जिन स्थानों पर नहरें हैं वहाँ जल निकास मिलकर निस्पंदन (Seewage) से नहर का जल आस-पास के क्षेत्रों में एकत्रित हो जाता है। यह स्थिति तालाबों एवं बांधों से भी आ जाती है। वहाँ पर नहर, और खेत के बीच में 1·0–1·5 से मी. चौड़ी व 0·3–1·0 से. मी. गहरी नाली खोद देते हैं जिसका सम्बन्ध नालों आदि से कर देते हैं। इस प्रकार रिसा पानी इन नालियों से बह कर बाहर निकल जाता है।

3. **स्थाई नालियाँ**—जल-निकास के समस्याग्रस्त क्षेत्रों में स्थाई जल निकास प्रबन्ध करना पड़ता है। वहाँ पर क्षेत्र के निचले स्थान पर स्थायी मुख्य नाली एवं इसकी सहायक नालियाँ बनाई जाती हैं। मुख्य नाली को नाला या नदी से जोड़ दिया जाता है। ये निम्न प्रकार से बनाई जा सकती हैं—

(i) **रेण्डन नालियाँ** (Randon Drains)—इन नालियों का कोई क्रम नहीं होता है।

(ii) **समानांतर नालियाँ** (Parelled Drains)—इन नालियों को एक दूसरे के समान्तर बनाते हैं।

(iii) **बेडिंग नालियाँ** (Beding Drains)—इन नलियों को पृष्ठीय ढाल के अनुसार बनाते हैं।

(iv) **क्रॉस स्लोप डिच प्रणाली** (Cross Slope Drains)—इन नालियों को ढाल के विपरीत दिशा में बनाते हैं।

पृष्ठीय जल-निकास के दोष—1. खेत के बीच नालियाँ आने से कृषि कार्यों में बाधा होती है।

2. नालियों के स्थाई न होने से मरम्मत कार्य में अधिक व्यय करना पड़ता है।

3. फसल योग्य भूमि का क्षेत्र कम हो जाता है।

4. खरपतवारों तथा घासों के बीज खेतों में पहुँच जाते हैं।

(ब) भूमि-गत जल-निकास (Underground Drainage)—पाश्चात्य देशों में इनका प्रयोग अधिक किया जाता है। इसमें सम्पूर्ण क्षेत्र पर खेती की जा सकती है क्योंकि नालियों के भूमि के अन्दर होने से जुताई, बोआई आदि सतह पर की जा सकती है। यह विधि स्थाई होने से मरम्मत आदि का व्यय नहीं करना होता है। मूल-प्रदेश को जल रहित करने के लिए ये नालियाँ बनाई जाती हैं—

भूमि-गत जल-निकास की नालियाँ कई प्रकार से बनाई जाती हैं—

(i) टाइल नालियाँ (Tiles Drains)—चिकनी मिट्टी या कंक्रीट के 30-45 से. मी. लम्बे व 7-12 से. मी. व्यास के छिद्रयुक्त टाइल्स उचित गहराई पर दबा दिए जाते है। दो टाइलों के बीच में 2-3 मिमी. अन्तर रखते हैं जिनसे होकर पानी प्रवेश करता है। सहायक नालियों की पारस्परिक दूरी 5.50 से 9.00 मीटर तक रखते हैं।

(ii) सरन्ध्र पाइप नालियां (Pipe Drains)—इसमे 10 से. मी. व्यास के छिद्र युक्त लोहे या सीमेंट के पाइप सहायक नालियो में दबाते हैं जिनका सम्बन्ध मुख्य नाली से कर देते हैं।

(iii) पत्थर या ईंटों की नालियां (Stone or Brick Drains)—सहायक नालियाँ ईंटो या पत्थरों से बनाकर उन्हे मुख्य नाली से जोड़ देते हैं।

(iv) रबिल नालियां (Rubble Drains)—कुछ स्थानो पर पत्थर और बानों के टुकड़े या पत्तियों का प्रयोग कर जल निकास की रबिल नाली बनाते हैं।

(v) मोल नालियां (Mole Drains) - यूरोप में उचित दूरी पर एक विशेष प्रकार के ट्रैक्टर चालित 'मोल-हल' से भूमि के अन्दर अण्डाकार नालियाँ बनाते हैं इनको भूमि में 45-75 से मी. की गहराई पर 8-10 से. मी. व्यास की नालियाँ बनाई जाती हैं जो अत्यधिक चिकनी मिट्टी में उपयुक्त है।

इन सभी प्रकार की सहायक नालियाँ बनाते समय 30 मीटर की दूरी पर 2·5 से. मी. ढाल देते हैं। इनमे पानी रिस-रिसकर एकत्रित होकर मुख्य निकास नाली में पहुँच जाता है।

जल निकास हेतु नाली व्यवस्था —

निम्नलिखित विधियाँ अपनाई जाती हैं—

1. समान्तर प्रणाली (Parellel System)—यह विधि समतल, एक आकार और समान रिसाव वाली मिट्टी मे अपनाई जाती है।

2. हेरिंगबोन प्रणाली (Herringbone System)—यह विधि वहाँ उपयुक्त है जहाँ पर मुख्य जल निकास नाली निचले तल पर होती है। मुख्य जल निकास नाली बीच में सहायक नालियां इसके लम्बवत् या निश्चित कणों पर बनाई जाती हैं।
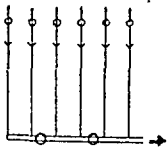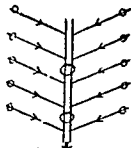
(1) समान्तर प्रणाली (2) हेरिंगबोन प्रणाली
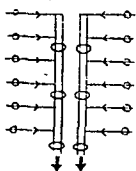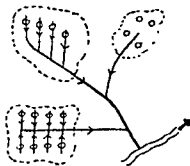
(3) डबलमेन प्रणाली (4) रेण्डम प्रणाली

3. डबलमेन प्रणाली (Double Main System)—यह हेरिंगबोन प्रणाली का रूपान्तर है। इसमें ढाल के दोनों ओर दो मुख्य नालियाँ बनाने से प्राकृतिक ढाल की ओर बहने वाने की गति में बाधा होती है और ये सहायक नालियों का काम करती हैं।

4. रेण्डम प्रणाली (Random System)—यह विधि अनियमित ढाल वाले खेतों में अपनाते हैं जहाँ अनेक गड्ढे होते हैं जिनमें ढाल और आकार आदि के अनुसार विभिन्न प्रकार की नालियाँ बनाते है।

भौम जल स्तर ऊँचे वाले स्थानों में जल नीचे नहीं जा पाता है जहाँ जल को किसी यन्त्र (इंजन) आदि की सहायता से प्राकृतिक जल-प्रवाह या खुली नाली में डाल कर निकाला जाता है। कभी-कभी सिंचाई की नाली से भी निकाला जाता है।

पाइप बिछाना – मिट्टी की किस्म के अनुसार भूमि में सर्वप्रथम 1-1·5 मीटर गहराई पर नाली खोदकर 7-12 से. मी. व्यास के पाइप या खपड़े बिछा दिए जाते हैं। सहायक नाली खेत के ढाल के समानान्तर 10-30 मीटर रखते हैं। नाली में ढाल प्रति 30 मीटर पर 5-10 से. मी. रखते हैं। दो पाइप तथा टाइल्स के बीच थोड़ी सांस रखते है जिससे लगभग 95% अतिरिक्त जल इन्हीं से नाली में जाता है। पाइप बिछाने के बाद नाली मिट्टी में भरकर समतल कर दी जाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जल निकास से क्या तात्पर्य है, इसकी आवश्यकता किन परिस्थितियों में होती है ?
2. जल निकास के प्रभाव में मृदा तथा फसलो पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
3. जल निकास के प्रबन्ध के विभिन्न ढंगों का सचित्र वर्णन कीजिए तथा इनके गुण व दोषों को बताइए।
4. जल निकास की उपयोगिता तथा इसके प्रबन्ध पर अपने विचार प्रकट करिये।

26. खरपतवार नियन्त्रण
(Weeds Control)

खरपतवार
(Weeds)

कृषि उत्पादन में खरपतवारों का नियन्त्रण अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इनके द्वारा उत्पादन में कमी होने के साथ उत्पादन व्यय में वृद्धि और अनाज की किस्म खराब हो जाती है। यह कमी 50-60 प्रतिशत हो जाती है। सिंचित क्षेत्रों तथा वर्षा-काल में फसल उत्पादन में भारी कमी होती है। अतः इनको नहीं करना आवश्यक है।

परिभाषा—'खरपतवार एक ऐसा पौधा है जो लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक क्षमता रखता है?'—पीटर

'खरपतवार एक ऐसा पौधा है जो ऐसे स्थान पर उगता है, जहाँ उसकी आवश्यकता नही होती है।'—बील

अतः खरपतवारों से अभिप्राय अवांछित स्थानों पर उगे निम्नकोटि के दुःखद पौधों से है जो फसलों में बाधा पहुँचाते हैं तथा मानव के कार्यों को प्रभावित करते हैं।

खरपतवारों से हानियां—1. ये फसलों के पोषक तत्व, नमी, स्थान, प्रकाश वायु आदि के लिए स्पर्धा करते हैं जिससे फसल की वृद्धि रुक जाती है और उपज कम हो जाती है।

2. घास-पातों में जल स्पर्धा फसल से अधिक होने से ये जल का बड़ा भाग हड़प लेते हैं जिससे उपज में काफी कमी आ जाती है। इनसे गेहूँ की फसल मे प्रतिवर्ष लगभग 26·6 करोड़ रुपये की हानि का अनुमान लगाया जाता है।

3. ये कृषि-कार्यों में अवरोध पैदा करते हैं जिससे श्रम व उपकरणों के खर्च में वृद्धि होती है।

4. अनाज से इनके बीज मिल जाने से उपज की गुणता तथा मात्रा कम हो जाती है जिससे मूल्य कम मिलता है।

5. ये सिंचाई तथा जल-व्यवस्था में बाधा पैदा करते हैं जिससे पानी रुक जाता है और इनके बीज खेतों में पहुँच जाते हैं।

6. ये हानिकारक कीट तथा पीड़क रोगों को आश्रय देते हैं जिससे फसलों में हानि होती है।

7. खरपतवार कृषि और उद्योगों को हानि पहुँचाने के अलावा वनों को भी हानि पहुँचाते हैं।

8. कुछ खरपतवार पशुओं तथा मनुष्यों के लिए विषैले होते हैं और कई रोग फैलाते हैं। विषैली राई, माचनो, विषैली सरमक मनुष्यों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पौधे एलर्जी प्रतिक्रिया पैदा करते हैं।

खरपतवारों का वर्गीकरण—इनका निम्नलिखित चार प्रकार से वर्गीकरण किया जाता है—

(क) जीवन वृत के आधार पर—अपने जीवन काल के आधार पर इनको तीन भागों में बाँटा जाता है—

1. एक वर्षीय – ये मुख्य फसल के साथ उगते हैं तथा उसके साथ ही जीवन वृत्त पूरा कर लेते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—

(अ) खरीफ या वर्षाकालीन खरपतवार—ये वर्षा में उगते हैं तथा वर्षा समाप्ति तक जीवन पूरा कर लेते हैं। जैसे—सांवा, जंगली गोभी, चौलाई, बाँदरा, मकोय, सहसुआ, पथरचटा, हजार दाना आदि।

(ब) रबी या शरद् ऋतु के खरपतवार—ये सर्दी के मौसम में उगते हैं तथा इसकी समाप्ति तक जीवन वृत पूरा कर लेते हैं। जैसे—बथुआ, खरतुआ, बन प्याजी, कृष्ण नील, सेंजी, अकरी, जंगली मदर, सत्यानाशी, मुनमुना आदि।

2. द्वि-वर्षीय—ये अपना जीवन वृत दो वर्ष में पूरा करते है अर्थात् प्रथम वर्ष में *वनस्पतिक वृद्धि तथा दूसरे वर्ष में बीज बनता है। जैसे—गाजर,* चिकोरी।

3. बहुवर्षीय – ये पौधे एक बार उगने पर कई वर्षों तक बने रहते हैं। इनकी वृद्धि तथा प्रवर्धन इनके वानस्पतिक भागों से होती है। इनको दो भागों में बाँटते हैं—

(अ) शाकीय खरपतवार ये प्रतिवर्ष पुष्पित होकर बीज बनाते हैं और फिर उग आते हैं। जैसे—दूब, काँस, वन हिरन खुरी आदि।

(ब) काष्ठीय खरपतवार—इस वर्ग में *झाड़ियां या* जंगली पेड़ पौधे आते *हैं। जैसे—झरबेरी, जवासा, लेण्टाना आदि।*

(ख) *वानस्पति वर्गीकरण*—बीज पत्रों के आधार पर इनको दो भागों में बाँटते हैं—

(अ) एक बीजपत्री—इनके बीजो मे एक बीज पत्र होता है। पत्तियाँ लम्बी, कम चौड़ी तथा मुलायम होती हैं। जैसे—घास कुल के सभी खरपतवार।

(ब) द्विबीजपत्री—इनके बीज में दो बीज पत्र होते हैं। पौधे कम लम्बे तथा पत्तियाँ अधिक होती हैं। जैसे—बथुआ, खरतुआ, सत्यानाशी, धतूरा, जंगली चौलाई आदि।

(ग) आवास के आधार पर वर्गीकरण—खरपतवारों को तीन भागों में बांटा जाता है—

1. कृषि क्षेत्रों के खरपतवार—इनका जीवन वृत कृषि भूमि पर गई फसलों की भांति होता है। जैसे—सावा, बथुआ, हिरनखुरी आदि।

2. रेगिस्तानी क्षेत्र के खरपतवार—ये रेतीली भूमि व असिंचित भागों में उगते है; जैसे—जवासा, कटीली, नागफनी, वायसुरी आदि।

3. जलीय क्षेत्र के खरपतवार—जो जलीय क्षेत्र में जैसे तालाबों, पोखरों, नदी, झील, दलदली और जल संतृप्त भूमियों में उगते हैं। जैसे—जल कुंभी, हाइड्रिला, वाटर लिली, फर्न आदि।

(घ) खरपतवारों की सापेक्ष स्थिति के अनुसार—

1. निक्षेप (पूर्ण) खरपतवारों—ये सदा फसलों के लिये हानिकारक है। इसमें एकवर्षीय, द्विवर्षीय सभी खरपतवार आते हैं।

2. सापेक्ष (सम्बन्धित) खरपतवार—ये खेत में फसलों के बीज के बोने पर उग आते हैं। जैसे—गेहूँ की फसल में जौ, सरसों आदि।

खेतों में खरपतवार होने का कारण—सामान्यतया अधिकांश खरपतवार बहुत दूर से नहीं आते हैं क्योंकि इनमें स्वयं गतिशीलता नही होती है किन्तु वायु, जल, खाद, यन्त्रों एवं प्राणियो की सहायता से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंच जाते हैं तथा वहीं बिखरकर फैल जाते हैं। बोने से पूर्व बीजों को साफ न करने से इनकी संख्या निर्बाध रूप से प्रतिवर्ष बढ़ती रहती है।

खरपतवारों की रोकथाम व बचाव
(Control and Eradication of Weeds)

खरपतवारों से बचाव के लिए किए गए उपायों को तीन भागों में बांटा जाता है—

(अ) खरपतवारों व्यवस्था या प्रतिरोधी उपाय

(ब) खरपतवार उन्मूलन

(स) खरपतवार नियन्त्रण

(अ) खरपतवार व्यवस्था (Preventie Measures)—

फसल उत्पादन में खरपतवार व्यवस्था शब्द उतना ही उपयुक्त है जितना यह कहा जाना कि 'उपचार के बजाय बचाव अधिक श्रेष्ठ हैं';

अतः खरपतवार नियन्त्रण की अपेक्षा ऐसी व्यवस्था की जावे कि खरपतवार कम उगें। इसके लिये निम्न बातो का ध्यान रखना चाहिये—

1. फसल पकने से पूर्व खरपतवारो के पौधों को उखाड़कर बाहर (रोगिंग) तथा नष्ट कर देना चाहिए जिससे इनके बीज फसल में न मिलें।

2. साफ तथा खरपतवार रहित बीजो का प्रयोग करें।

3. वर्षा ऋतु में फसलों को समय से बोना चाहिए जिससे फसल की वृद्धि अच्छी होगी तथा शरद्‌कालीन फसलों की बोआई देर से करने पर खरपतवारों का प्रकोप कम होता है।

4. फसल-खरपतवार प्रतियोगिता कम करने के लिए उचित शस्यावर्तन तथा किस्में अपनानी चाहिए।

5. खेत की तैयारी से पूर्व इनको उगने देना चाहिए तथा तैयारी के समय दबाकर नष्ट कर देना चाहिए।

6. सिंचाई व निकास की नालियों के किनारे उगे खरपतवारों को काम में आने से पूर्व काट कर नष्ट कर देना चाहिए।

7. जीवांश खादों (गोबर व कम्पोस्ट) के अच्छी तरह सड़ जाने पर, खरपतवारों की बीजों की अंकुरण शक्ति नष्ट हो जाती है, प्रयोग करना चाहिए।

8. फार्म में कृषि काम में आने वाले सभी यन्त्रों व मशीनो को उपयोग मे लाने से पूर्व और बाद मे साफ कर लेना चाहिए।

9. पशुओं को खरपतवारों के पौधे तथा बीज रहित चारा खिलाना चाहिए।

(ब) खरपतवारों का उन्मूलन (Eradication)

किसी भी क्षेत्र से खरपतवारों, उनके पौधों के अंग तथा बीजों को समूल या पूर्णतया नष्ट कर देना; "उन्मूलन" कहा जाता है। यह विधि बहुवर्षीय खरपतवारों के काम आती है। यह विधि असम्भव ही नहीं बल्कि खर्चीली है, अतः खरपतवार निरोधी उपाय तथा रोकथाम ही अपनाये जाते हैं।

(स) खरपतवार नियन्त्रण (Weed Control)

नियन्त्रण विधियों को चार विधियों में बांटा जाता है—

1. यांत्रिक विधियां
2. शस्य एवं कर्षण विधियां
3. जैविक विधियां
4. रसायनिक विधियां

यांत्रिक विधियां (Mechanical Methods)—इसके अन्तर्गत निम्न कार्य किये जाते हैं—

1. भू-परिष्करण (Tillage)—प्राचीन समय से कृषक इस विधि से खरपतवारों को नष्ट करता आ रहा है। खेतों की साधारण जुताई से अधिकांश खरपतवार मिट्टी में दबाकर नष्ट किये जा सकते हैं। प्रथम खरपतवारों के अंकुरण के बाद इनको जोत देने तथा फिर फसलों को बोने से खरपतवारों का प्रकोप कम हो जाता है।

गहरी जड़ वाले बहुवर्षीय खरपतवारों की भूमि सतह के नीचे काटने पर इनकी वृद्धि कम होती है। मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी व अधिक जुताई करनी चाहिए।

भू-परिष्करण की क्रियाओं की संख्या खरपतवारों की प्रसार विधि पर निर्भर करती है।

1. हाथ से उखाड़ना (Hand Pulling)—यह एकवर्षीय तथा द्विवर्षीय खरपतवारों को नष्ट करने की अच्छी विधि है। खरपतवारों को सिंचाई के बाद नम होने पर छोटी अवस्था में हाथ से उखाड़ना चाहिए। यह सीमित क्षेत्र में अच्छी विधि है।

3. निराई-गुड़ाई (Hoeing)—खरपतवारों को पहली सिंचाई के बाद ओट आने पर खुरपी, कुदाली, हो आदि के प्रयोग से बहुवर्षीय खरपतवारों को छोड़कर, सभी खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। इससे खरपतवारों के नष्ट होने के अलावा भूमि में नमी, वायु, प्रकाश का संरक्षण होता है और पौधों की वृद्धि अच्छी होती है।

4. खरपतवारों के वायवीय भाग (Aerial Parts) को बार-बार काटना (Mowing)—खेतों में फसलें न बोने पर, धरती बंजर, सड़क, नहरों के किनारे, लॉन, खेल के मैदानों के खरपतवार दरांती या मोवर (Mower) से काट कर दबा दिए जाते हैं। ये सड़-गलकर खाद बन जाते हैं।

5. खरपतवार ग्रसित क्षेत्रों को पानी से भरना (Flooding) - शुष्क क्षेत्रों में उगे खरपतवार क्षेत्र में पानी भरने पर विशेष और पर जवासा, वाय सुरी खरपतवार नष्ट हो जाते हैं क्योंकि वायु व प्रकाश मिलना बन्द हो जाता है। पहले यांत्रिक विधि काम में लाने के बाद थोड़ी जल की मात्रा में डुबोये जा सकते हैं। जल मृदु होना चाहिए।

6. खरपतवारों को जलाना (Burning)—खाली भूमियों में उगे खरपतवारों को आग लगाकर नष्ट कर सकते हैं। इससे बहुवर्षीय खरपतवारों के भूमिगत भाग नष्ट हो जाते हैं।

(2) शस्य एवं कर्षण विधियां (Cultural Methods)—इस विधि में कृषि ढंगों में परिवर्तन कर खरपतवार की वृद्धि रोकी जाती है। इस हेतु निम्न कार्य अपनाये जाते हैं—

1. उचित शस्यावर्तन का प्रयोग (Proper Crop Rotation)—यदि एक ही फसल उगाई जावें तो कई प्रकार के खरपतवार बहुत हो जाते हैं। अतः दो या तीन वर्षीय फसल चक्र अपनाना चाहिए।

2. फसल प्रतिस्पर्धा—यह सरल तथा आसानी से अपनाई जाने वाली विधि है। इसमें फसल का चुनाव महत्वपूर्ण है। तेजी से बढ़ने वाली घनी फसल खरपत-

वारों के प्रतिस्पर्धा में सफल रहती है। जैसे-ज्वार, बाजरा, रिजका, बरसीम, सनई आदि।

3. आच्छादन (Mulching)—यह खर्चीली विधि है जिसका भारत में प्रयोग नहीं होता है। आच्छादन एक काले कागज से किया जाता है जिसमें जल प्रवेश नहीं कर पाता है। कागज बिछाकर बीजों को पंक्ति में बो दिया जाता है।

4. खादों का प्रयोग—खेत में टाउन कम्पोस्ट के प्रयोग से कास की रोकथाम के प्रयोग सिद्ध हुये हैं। कच्ची गोबर की खाद से खरपतवार बढ़ते हैं। कुछ उर्वरक जैसे कैल्सियम साइनामाइड खरपतवारों को नष्ट करने में सहायक होते हैं।

5. फसलों के बोआई का समय—बोआई के निश्चित समय से पूर्व तथा देर से फसलें बोने से खरपतवारों का प्रकोप कम होता देखा गया है।

6. पौधों की पारस्परिक दूरी—पंक्ति तथा पौधों की आपस की दूरी कम करके फसल को सघन रूप में बोने पर प्रकाश के अभाव में खरपतवार की वृद्धि कम होती है।

7. बोने की दिशा—फसलों की पंक्तियाँ उत्तर-दक्षिण रखने पर खरपतवार अधिक समय तक छाया में रहते हैं जिससे इनकी वृद्धि कम हो जाती है।

8. प्रतिरोधी जातियां (Resistant Varsieties)—फसलों की कीट, रोग आदि प्रतिरोधी किस्मों के बोने पर इनकी वृद्धि अच्छी होती है और छाया उत्पन्न करते हैं जिससे खरपतवार दब जाते हैं।

(3) जैविक विधियां (Biological Methods)—

इसमें खरपतवारों के अनेक प्राकृतिक शत्रु जैसे—कीट व रोग के जीवाणुओं द्वारा तथा परजीवी वनस्पतियों के प्रयोग से नष्ट किया जाता है। इसकी रोकथाम के लिए आवश्यक है कि ऐसी कीट चुनें जिनके शत्रु न मिलते हों तथा फसलों को हानि व नष्ट कर सकें।

आस्ट्रेलिया में (1839–1925 तक) प्रिकली पियर खरपतवार से लाखों एकड़ भूमि बेकार हो गई जिससे कॉक्टोब्लास्टिस केक्टोरस नामक मोथ बीटर से नष्ट किया गया। भारत के मा. राजेन्द्र लोहिमी ने पहाड़ी क्षेत्रों में फैली लेण्टाना को क्रोसिडिएमा लेण्टाना से नियन्त्रित किया। इसके कुछ और उदाहरण हैं—

खरपतवार	कीट
1. कपास में जानसन घास	युवा कलहंस (Gease)
2. लेण्टाना	क्रोसिडिएमा लेण्टाना
3. जलीय खरपतवार	टीलापिया मोसाम्बिक
4. प्रिकली पियर या नागफनी	केक्टोब्लास्टिस केक्टोरस
5. कांस	सिलवर बालर फिश व बास्केट घास (बास्केट घास की जड़ों से निकले द्रव से कांस नष्ट हो जाता है।)

इस विधि की सफलता में प्रयोग किये जाने वाले फसल कीटों का अभाव, मिश्रित शस्योत्पादन, छोटे-छोटे तथा दूरी पर खेत तथा कृषक की अशिक्षा मुख्य बाधायें है।

(4) रासायनिक विधियां (Chemical Methods)—

रसायनों द्वारा खरपतवारों के नियन्त्रण का कार्य कई वर्षो से चला आ रहा है परन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के बाद 2, 4-डी की खोज के बाद इन रसायनों का सही उपयोग किया जा सका। विगत 25 वर्षों में लगभग 325 शाक नाशी रसायनों की खोज की जा चुकी है और ये उपयोग में लाये जा रहे हैं।

इन शाकनाशी को प्रयोग में लाई जाने वाली फसल को खरपतवार की किस्म तथा काम में लाई जाने वाली विधियों के आधार पर दो वर्गो मे बाँटा जाता है—

(क) वरणात्मक शाकनाशी

(ख) अवरणात्मक शाकनाशी

(क) वरणात्मक शाकनाशी (Selective Herbicides)—ये रसायन फसल पर किसी भी प्रकार के स्थाई प्रभाव डाले बिना इसमे उगे खरपतवारो को नष्ट कर देते हैं। जैसे गेहूँ की फसल से उगे चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारो को 2, 4-डी के छिड़काव से नष्ट कर सकते हैं। इसके तीन उपवर्ग हैं—

1. स्पर्श शाकनाशी (Contact Herbicides)—ये सम्पर्क मे आने वाले पौधों के भागों को ही नष्ट करते है, फसल को हानि नही पहुँचाते हैं। जैसे—प्रोपेमिल।

2. स्थानान्तरित शाकनाशी (Translocated Herbicides)—ये रसायन पत्तियों, तना व जड़ों में प्रवेश करके पूरे पौधे की कोशिकाओं की वृद्धि व विभाजन की गति को तीव्र कर देते हैं और वे नष्ट हो जाते है। जैसे—2, 4-डी, एम. सी पी ए., एम. सी पी. बी. आदि।

3. जड़ों द्वारा लिये जाने वाले शाकनाशी (Root application Herbicides)—ये खरपतवारों के निकलने से पूर्व ही उन्हे नष्ट करने के लिए भूमि में प्रयोग किये जाते हैं। ये दो प्रकार के होते है।

(i) बोआई से पूर्व दिये जाने वाले शाकनाशी (Preplanting Herbicides)—इस रसायनो को बोआई से पूर्व भूमि पर छिड़क कर भली-भांति मिला दिया जाता है। जैसे—एप्टाम, बरनाम, ट्रेफालान आदि।

(ii) अंकुरण से पूर्व दिये जाने वाले शाकनाशी (Pre-emergance Herbicides)—इन्हें बोआई के तुरन्त बाद, परन्तु अकुरण से पूर्व भूमि पर छिड़का जाता है। जैसे—टैफाजिन, सिमाजीन, एट्राजीन, लास्सो, कोटारान आदि।

(ख) अवरणात्मक शाकनाशी (Non Selective Herbicides)—ये रसायन अपने सम्पर्क में आने वाली सभी वनस्पतियों पर विशिष्ट प्रभाव दिखाते हैं। इनका

प्रयोग सड़कों, नहरों, रेल की पटरियों के किनारे पर बंजर भूमियों पर किया जाता है। इनके निम्न तीन उपवर्ग हैं –

1. स्पर्श शाकनाशी—ये रसायन सम्पर्क में आने वाले पौधों के उन भागों को कुछ ही घण्टों में नष्ट कर देता है। जैसे—पैराक्वेट या आर्सेनिकल्स।

2. स्थानान्तरित शाकनाशी—ये रसायन पौधों की जड़ों तथा तने द्वारा पौधे के सभी भागों में पहुँच कर उनको नष्ट कर देते हैं। जैसे—डालापन, एमोट्रील आदि।

3. जड़ों द्वारा लिये जाने वाले शाकनाशी (Soil Sterilents)—ये रसायन भूमि में दिये जाने पर खरपतवारों को भूमि से निकलने नहीं देते हैं। इस प्रकार से भूमि को निजर्मीकृत कर देते हैं। जैसे—ब्रोमोसिल, कार्बनडाइ सल्फाइड, क्लोरो पिकरीन आदि।

शाकनाशी का प्रयोग—

रसायन का चुनाव—शाकनाशियों के चयन में निम्न बातों का होना आवश्यक है—

1. यह सस्ता हो।
2. इसका वृहत क्षेत्र पर प्रभाव होना चाहिये।
3. फसलों के लिए हानिकारक न हो जिनमें इसे प्रयोग किया जा रहा है।
4. आसानी से प्रयोग किया जा सके तथा प्रयोगकर्त्ता को किसी भी प्रकार की क्षति न पहुँचावे।

रसायन की प्रयोग मात्रा – शाकनाशी रसायन की मात्रा, रसायन की किस्म, खरपतवार की किस्म व प्रकोप, फसल, खेत में प्रयोग विधि व समय तथा मौसम पर निर्भर करती है। शस्त्र वैज्ञानिको द्वारा विभिन्न परिस्थितियो में प्रस्तावित की गई मात्रा प्रयोग करनी चाहिये।

रसायनों के प्रयोग का समय - रसायनों का प्रयोग उचित समय पर करना चाहिये जिससे ये फसलों का हानि पहुँचाये बिना खरपतवारो को नष्ट कर दें। प्रत्येक रसायन के प्रयोग का समय भिन्न-भिन्न होता है। खरपतवारों के उगने के आधार पर रसायनों को निम्न समय पर खेत में दिये जाते हैं—

(i) फसल बोने से पूर्व प्रयोग—इनको फसलो के बोने से ठीक पहिले दिया जाता है; जैसे—सिमाजीन।

(ii) अंकुरण से पहले प्रयोग—ये फसलो तथा खरपतवारो के अंकुरण होने से पूर्व खेत में दिये जाते हैं। ये रसायन कम घुलनशील होने से जड़ों द्वारा शोषित किये जाते हैं। जैसे—सिमाजीन 2, 4 डी (सोडियम साल्ट)

(iii) अंकुरण के बाद प्रयोग - इसके अंकुरण के बाद खड़ी फसल में प्रयोग किये जाते हैं जैसे – स्टाम एफ 34, एट्राजीन, टेलापान, 2, 4-डी (एस्टर साल्ट)

रसायनों के रूप - शाकनाशी रसायन कई रूपों में उपलब्ध हैं जिनमें निम्नलिखित रूप प्रमुख है —

1. **द्रव**—यह मुख्य रूप से एक या दो रसायनों का समान रूप का मिश्रण होता है। जैसे—2, 4 डी (एमाइन साल्ट) सिल्वेक्स, 2, 4, 5 T. आदि।

2. **तैलयुक्त मिश्रण (Emulsion)**—शाकनाशी रसायन जो तेल में घुलनशील होते हैं, पानी में मिला देते हैं। जैसे—एम सी पी ए, सी डी ए ए आदि।

3. **धूल या चूर्ण (Dust)**—शाकनाशी रसायन शुष्क धूल के रूप मे होते हैं। जैसे—2, 4-डी।

4. **नमीयुक्त पाउडर (Viettalble Powder)**—ये गाढ़े घोल में ठोस के कण के रूप में होते हैं जो पानी व तेल आदि में घुलनशील नहीं होते है। जैसे सिमाजीन।

5. **दानों के रूप में (Granutes)**—ये दोने या छोटी-छोटी गोलियों के रूप में होते हैं।

रसायनों के प्रयोग की विधियां खरपतवार नाशक रसायन मृदा में पौधों के बाहरी वानस्पतिक अंगों के ऊपर धूल (Dust) या द्रव (Liquid) के रूप मे मुख्यतया प्रयोग किये जाते हैं। धूल को प्रयोग करने में, धूलन यन्त्र (Duster) तथा द्रव को छिड़काने में शीकरण यन्त्र (Sprayers) उपयोग में लाये जाते हैं जो हस्त, पाद तथा शक्ति चालित होते हैं।

1. **बिखेरना (Broadcasting)** ये रसायन जो धूल रूप में प्रयोग किये जाते हैं वे खेत मे दिये जाते हैं। इनको रेत आदि मे मिलाकर खेत में बिखेरकर समान रूप मे वितरित कर दिया जाता है।

2. **पट्टियों में देना (Band application)**—धूल या द्रव को फसल की पंक्तियों के बीच उगे खरपतवारों को नष्ट करने के लिये रसायन दिये जाते हैं।

3. **छिड़काव (Spray)**—द्रव अवस्था के रसायनो को पानी के साथ आयतन बढ़ाकर सम्पूर्ण क्षेत्र में वितरण, स्प्रेयर की सहायता से करते हैं।

प्रयोग के समय अपनाई जाने वाली सावधानियां

1. छिड़काव या धूलि का बिखेरना वायु के बन्द या मन्द होने पर करें।

2. छिड़काव वायु की दिशा की ओर करें जिससे द्रव व धूलि मुँह या शरीर पर न आये।

3. रसायन के प्रयोग मे पूर्व यन्त्र का समायोजन करने से समान वितरण होता है।

4. रसायनों के प्रयोग के समय पशुओं को दूर रखा जाय।

5. कीटनाशी या अन्य रसायन के प्रयोग मे काम आये यन्त्रों को शाकनाशी रसायनो मे प्रयोग न लावें।

6. छिड़काव तेज धूप व शुष्क मौसम में करें।
7. रसायनों का घोल कांच या एनामेल के बर्तन में बनायें।
8. शाकनाशी रसायनों के प्रयोग के समय मृदा में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।
9. रसायन प्रयोगकर्त्ता के शरीर के किसी भी भाग के सम्पर्क मे न आये।

प्रयोगकर्त्ता पर किसी भी प्रकार के प्रभाव के प्रकट होने पर आवश्यक चिकित्सा सुविधा प्राप्त करें।

प्रमुख शाकनाशी रसायन

क्रम संख्या	शाकनाशी का नाम	व्यापारिक ज्ञान	विशेषतायें
1	2, 4-डी	2, 4-डायक्लोरो फिनोक्सी एसिटिक एसिड	
	क्लाडेक्स 'जी' (अमाइन साल्ट)		हल्क भूरा द्रव व इमल्शन
	क्लाडेक्स 'सी' (इस्टर साल्ट)		हल्के पीले रङ्ग का द्रव
	क्ल.डेस 'ए' (सोडियम साल्ट)		सफेद चूर्ण, पानी मे घुलनशील
2	2, 4, 5-T	2, 4, 5-ट्राइक्लोरो-फिनोक्सी एसिटिक एसिड	सख्त तने वाले शाकनाशी के लिए
3	एट्राजीन	4-क्लोरो 6-इथाइलेमिनो 4-आइसो प्रोफाइलेमिन 1, 3, 5-ट्रायजिन	जल से अधिक घुलनशील, मृदा के लिए अधिक प्रभावी
4	सी एम यू (मानुरॉन)	3-पैराक्लोरोफिनाइल 1, 1-डाइमिथाइल यूरिया	अंकुरण से पूर्व, स्थानांतरित रसायन गन्ना, सन्तरे के बाग में उपयोगी
5	डालापान (5/3 पॉन)	2, 2-डाइक्लोरोपियो-निक एसिड	जड़ व वानस्पतिक भाग से चूषित, कांस में उपयोगी
6	एम सी पी ए (एग्रोक्सोन)	4 क्लोरो-2 मिथाइल फिनाक्सी एसिटिक एसिड	वरणात्मक, सम्पर्क शाकनाशी, जई व अलसी में उपयोगी

7	एम सी पी बी व 2, 4-D B (ट्रोपोटॉक्स)	4 क्लोरो 2-मिथाइल फिनाक्सी ब्यूटा[illegible] एसिड	चौड़ी पत्ती वाले शाक, दालों में उपयोगी
8	पी सी पी	पेण्टाक्लोरोफिनाल	सम्पर्क शाकनाशी, सोयाबीन में उपयोगी
9	सीमेजीन (टाफजिन 50w)	2 क्लोरो-4, 6 बिस (इथाएलेमिनो) 1, 3, 5-ट्राइजिन	वरणात्मक, स्थानांतरित शाकनाशी, मक्का, गन्ना, आलू के घास कुल व चौड़ी पत्ती के खरपतवारों में उपयोगी
10	स्टाम एफ-34	3, 4-डाइक्लोरो प्रोपइ-ओनेनिलिड	वरणात्मक, सम्पर्क शाकनाशी दलदली घासों तथा धान के शाकों में उपयोगी
11	टी सी ए	ट्राइक्लोरो एसिटिक एसिड	अंकुरण से पूर्व प्रयोग, एक व बहुवर्षीय घास कुल के खरपतवार, गन्ने में उपयोगी

प्रमुख फसलों के खरपतवार नियन्त्रण

फसल	खरपतवार	शाकनाशी	मात्रा प्रति हैक्टर क्रियाशील अवयव	प्रयोग विधि
1	सम्वई, डोरा मोथा जंगली रसभरी	स्टाम एफ-34	3 किग्रा. या 8·5 ली. या 3-4·25 लीटर +2% यूरिया घोल	पौधों में 2-3 पत्ती आने पर 650 लीटर पानी का घोल छिड़कें। प्रयोग से पूर्व खेत में भरा पानी निकालकर 2-5 दिन बाद पानी भर दें।
	चौड़ी पत्ती वाले	एम.सी.पी.ए. 2, 4-डी	2 किग्रा. 2 लीटर	रोपाई के 4 सप्ताह बाद 600 लीटर का घोल छिड़कें।

2. मक्का	चौड़ी तथा पतली पत्ती वाले सरपतवार	सिमाजीन (टिफाजीन 50%)	1·5 या 3 किग्रा.	बोग्राई के 3 दिन के अन्दर 800 ली. का घोल छिड़कें। वर्षा न होने पर सिंचाई करें।
	मोथा, एक वर्षीय सरपतवार	एट्राजीन (एट्राटाफ 50%)	1 या 5 किग्रा.	बोने के 15 दिन के अन्दर 700-800 ली. घोल छिड़कें।
3. ज्वार तथा बाजरा	चौड़ी पत्ती वाले	कोटारान 80%	1·5 किग्रा.	बोने के 3 दिन के अन्दर 800 ली. घोल छिड़कें।
	एकवर्षीय	एट्राजीन	1 या 2 किग्रा	बोने के 15 दिन के अन्दर 650 ली. घोल छिड़कें।
4. कपास	चौड़ी पत्ता वाले मौसमी सरपतवार	लासो ·0%	2 किग्रा.	बोने के तुरन्त बाद 1000 लीटर घोल छिड़कें।
		कोटारान 80%	0 7 किग्रा.	" "
5. गन्ना	चौड़ी पत्ती वाले	2, 4-डी. 80% सोडियम लवण तथा एट्राजीन 80%	1·5 किग्रा.	बोने के 10-20 दिन बाद 1000 ली का छिड़काव तथा मिट्टी चढ़ाने के 10-15 दिन दूसरा छिड़काव करें।
	मौसमी सरपतवार मोथा आदि	सिमाजीन या टरपाजीन 80%	2-3 किग्रा.	बोने के 20 दिन बाद 1000 लीटर घोल छिड़कें।
6. गेहूँ	चौड़ी पत्ती वाले सरपतवार	2, 4 डी 80% सोडियम लवण या	1 किग्रा. या 0·75 किग्रा. या 0·5 किग्रा.	पौधों के अंकुरण के 20-25 दिन बाद 1000 लीटर घोल छिड़कें।
		2,4-डी. 36% ईस्टर लवण		" "

		टॉकई-25	2 किग्रा.	बोआई के तुरन्त बाद 1000 लीटर घोल छिड़कें।
7. आलू	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार मोथा	एप्टाम	3·5 किग्रा.	बोने के एक दिन पूर्व 1000 लीटर घोल छिड़ककर मिट्टी में मिला दें।
	चौड़ी पत्ती वाले मौसमी खरपतवार	टॉक ई-25	2 किग्रा.	बोने के एक सप्ताह के बाद 1000 ली. घोल छिड़कें।
		स्टेम एफ-34	1 किग्रा	बोने के 4 सप्ताह के बाद 1000 ली. घोल छिड़कें।
8. मटर	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार	एम सी पी बी 40%	0·75-1 किग्रा.	बोने के 30-40 दिन बाद 400-500 ली. घोल छिड़कें।
9. अलसी	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार	2, 4-डी.72% एमाइन लवण या	0·375 मिली	,, ,,
		एम सी बी ए	0 5 किग्रा.	बोने के 3-4 सप्ताह बाद 500-600 ली. घोल छिड़कें।

प्रमुख विभिन्न मौसमी खरपतवार

क्षेत्रीय नाम	वानस्पतिक नाम	प्रकार	बीजपत्री
खरीफ की खरपतवार			
1. कंघी या काकई	एबूटिलोन इण्डीकम	वार्षिक	द्विबीजपत्री
2. चिटा लट-जीरा	एकायरेंथस एस्पेरा	,,	,,
3. कटेली चौलाई	एमरेन्थस स्पाइनोसस	,,	,,

क्रम / नाम	वैज्ञानिक नाम	जीवन काल	प्रकार
4. जंगली चोलाई	एमरेन्थस विरिडिस	वार्षिक	वार्षिक
5. सांठी या विष खपरा	बोएरहैविया डिफ्यूजा		"
6. सहसुआ	डायजेरा आर्वेसिस	"	"
7. बड़ी दुग्धी	यूफोर्बिया हिर्टा	"	"
8. छोटी दुग्धी	यूफोर्बिया थाइमेफिलोलिया	"	"
9. खिसारी	लाथिरस सटाइवा	"	"
10. हजार दाना	फायलेंथस निरुराई	"	"
11. बायसुरी	पिलुचिया लेंसियोलेटा	"	"
12. नूनियाँ	पार्चुलेका क्वार्डिफिडा	"	"
13. मकोय	सोलेनम नाइग्रम	"	"
14. गोखरू	ट्राबुलस टैरेस्ट्रिस	"	"
15. सांवा घास	इकाइनोक्लोआ कोलोनम	"	एक बीजपत्री
16. बिच्छू	जैन्थियम स्ट्रूमेरियम	"	"

रबी के खरपतवार

क्रम / नाम	वैज्ञानिक नाम	जीवन काल	प्रकार
17. कृष्ण नील	एनागैलिस आर्वेन्सिस	वार्षिक	द्विबीजपत्री
18. सत्यानाशी	आर्जीमोन मेक्सिकाना	"	"
19. वनप्याजी	आस्फोडेलस टेन्युफोलियस	"	"
20. बथुआ	चिनोपोडियम एल्बम	"	"
21. खरतुआ	चिनोपोडियम म्यूरेल	"	"
22. हिरणखुरी	कान्वोल्वुलस आर्वेन्सिस	"	"
23. गजरी	फ्यूमेरिया पार्वीफ्लोरा	"	"
24. मटरी	लैथाइरस एफैका	"	"
25. जंगली गोभी	लोनिया पिन्नेटीफोलिया	"	"
26. जंगली रिजका	मेडिकागो डेन्टीकुलाटा	"	"
27. सफेद सेंजी	मेलीलोटस एल्बा	"	"
28. पीली सेंजी	" इण्डिका	"	"
29. जंगली पालक	पार्चुलैका आलीरेसिया	"	"
30. चटरी	विसिया हिर्सुटा	"	"
31. अकरी	" सटाइवा	"	"

प्रमुख बहुवर्षीय खरपतवार

क्रम / नाम	वैज्ञानिक नाम	जीवन काल	प्रकार
32. जवांसा	एलहागी कैमेलोरम	बहुवर्षीय	द्विबीजपत्री
33. अमरबेल	कस्कुटा रिफ्लेक्स	"	"
34. दूब घास	साइनोडोन डेक्टीलोन	"	"
35. मोथा	साइप्रस रोटण्डस	"	"
36. कुस (कास)	इम्पेरेटा सिलिन्ड्रिका	"	"

37. कांस	सैकरम स्पॉण्टेनियम	बहुवर्षीय	द्विबीजपत्री
38 तिपतिया	डेस्मोडियम ट्राइफोलियम	,,	,,
39. जल कुम्भी	इचोर्निया क्रसिपस	,,	,,
40. लेण्टाना	लेण्टाना केमरा	,,	,,
41. स्ट्राइग	इस्ट्राइगा स्पीसिज	,,	,,
42. वन्य दास	सोघरम हैलिपेन्स	,,	एक बीजपत्री
43. ब्राह्मी	हाइड्रो कोटाइल स्त्री०	,,	,,
44. झावेरी	जिजिफस रोटण्डीफोलिया	,,	,,

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. खरपतवार क्या होता है, ये फसलों को किस प्रकार हानि पहुँचाते हैं ?
2. विभिन्न खरपतवार का वर्गीकरण करते हुए प्रत्येक के दो-दो उदाहरण दीजिए ।
3. खरपतवारों की रोकथाम की विभिन्न व्यवस्थाओं का संक्षेप में वर्णन करिए ।
4. शाकनाशी रसायनों का वर्गीकरण उदाहरण सहित करते हुए इनकी उपयोग विधि बताइए ।
5. किन्हीं 5 शाकनाशी के नाम एवं इनकी प्रयोग विधि बताइए तथा ये फसलो के किन खरपतवारों को नष्ट करेंगे ?
6. निम्न खरपतवारों को किस प्रकार नष्ट करेंगे—
   (क) कांस (ख) चौलाई
   (ग) बथुआ (घ) जगली गोभी
7. निम्न कीटनाशक को कब प्रयोग करते हैं—
   (i) 2, 4-डी का सोडियम लवण ।
   (ii) स्टाम एफ-34 ।
   (iii) सिमा जीन ।
   (iv) 2, 4-डी का इस्टर लवण ।

कृषि सम्बन्धी मीट्रिक इकाइयां परिवर्तन तालिका

क्षेत्रफल (Area)

1 हेक्टर = 10,000 वर्ग मीटर
= 2·47103 एकड़

1 एकड़ = 4000 वर्ग मीटर
= 4840 वर्ग गज
= 43560 वर्ग फुट

1 वर्ग मी. = 1·20 वर्ग गज
= 10,000 वर्ग सेमी.

1 वर्ग फुट = 144 वर्ग इन्च

1 वर्ग इन्च = 6·45 वर्ग सेमी.

1 वर्ग सेमी. = 100 वर्ग मिमी.
= 0·155 वर्ग इन्च

तौल (Weight)

1 मीट्रिक टन = 1000 किग्रा.
= 25.79 मन

1 क्विण्टल = 100 किग्रा.

1 किग्रा. = 1000 ग्राम
= 1·07169 सेर
= 2·20 पाउण्ड

1 औंस = 28·35 ग्राम

तापक्रम (Temperature)

तापक्रम °C = (तापक्रम °F − 32) × 5/9

तापक्रम °F = (तापक्रम °C × 915) + 32.

दूरी (Distance)

1 किलोमीटर = 1000 मीटर
= 0·62137 मील
= 3280 फुट

1 मीटर = 100 सेमी.
या 1·0936 गज
= 3·28 फुट

1 सेमी. = 10 मिमी.

1 मिमी. = 0·04 इन्च

1 इन्च = 2·54 सेमी.
या 25·4 मिमी.

1 फुट = 0·3048 मीटर

आयतन (Volume)

1 गैलन = 4·596 लीटर

1 लीटर = 1000 मिली.
= 0·29 गैलन
= या 1·76 पिण्ट

1 पिण्ट = 0.57 लीटर